Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28, अंक : 438, अक्तूबर, 1988

आत्मस्वीकृति विशेषांक : एक

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण छवि : काजल शर्मा
आवरण पारदर्शी : बसंत मिश्र
आवरण और अंक सज्जा :
हरिप्रकाश त्यागी

आत्मस्वीकृति खंड

9. दीवार पर टंगी तलवार :
सामरसेट मॉम

13. अंधेरी तूफानी रात में :
तुर्गनेव

16. मंटोरबाई :
राजेश जैन

19. छह लघुकथाएं

22. बड़े लोग :
जान ओ' हारा

लंबी कहानी

26. सरस्वती :
द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

अन्य कथा रचनाएं

43. अनुभूति :
संगीता सिंह

52. निर्णय :
हरिहर द्विवेदी

58. यहां वितस्ता बहती है
चंद्रकांता

धारावाही आयोजन

40. दास्ताने अलफ लैला...

48. रुपहली रातें :
दास्तोयेव्स्की

63. निर्मल वर्मा 'बाबावाद' के शिकार हैं :
डा. नामवर सिंह से उदयप्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत-2

70. प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : एक
दरवाजा

विशिष्ट आयोजन

46. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी

51. धारा के विरुद्ध :
राजेंद्र राव

54. प्रहसन :
महाराज कृष्ण काव

67. कथा दर्शन :
सुधीश पचौरी

68. अनजानी प्रेम कथाएं :
बाला दुबे

72. अन्ना की भूमिका :
प्रेमचंद

स्थायी स्तंभ

8. आपकी बात
57. नयी पौद
74. कृतियां

कापीराइट 1988, बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि. विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित. बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

ऐसा साल बैलो ने नहीं कहा था

जुलाई अंक के आवरण पर सारिका के एक दम नीचे, काफी बड़े अक्षरों में लिखा है—"नौबेल पुरस्कार विजेता कथाकार साल बैलो का कहना है : औरत जानवर है उस का स्थान पिंजरे में है." उसी उल्लेख के शीर्षक पर पृ. 44-45 पर एक लेख है जिस में साल बैलो का नाम बस एक ही दफा लिया जाता है. दूसरे गद्यांश में, और लिखा नहीं है कि उन्होंने वह वाक्य सुनाया. वह वाक्य शीर्षक के रूप में क्वोट्स में दिया जाता है और जाहिर है कि आप का इरादा यह है कि पाठक समझेगा कि तीनों साल बैलो, नार्मन मेलर और फिलिप राय ने उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल किया है. लेकिन लेख में यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विवियन गार्नर ने लिखा था कि नार्मन मेलर ही ने वह वाक्य ऑरसन वैल्स को सुनाया था, बहुत पहले.

इन सब बातों को पढ़कर मेरी नाराजगी हद से बाहर हो गयी है. नार्मन मेलर के पक्ष में नहीं हूं लेकिन अपनी संपादकीय जिम्मेदारी को फेंककर आप ने साल बैलो साहब की बहुत बेइज्जती की है.

पांच सालों से मेरे पढ़ाने, अनुवाद करने और शोध करने का एक ही मकसद रहता रहा है—कि अमरीकी और हिंदी उर्दू भाषी लेखकों के बीच परस्पर आदर दिया जाए.

□ **रॉबर्ट ए. हाक्स्टेड, कनाडा**

किशोर मन की अछूती भावनाएं

यों तो सारिका मेरी सबसे प्रिय पत्रिकाओं में से है फिर भी घुमक्कड़ी नौकरी होने के कारण उसकी कई किश्तें नहीं मिल पातीं. आज एकाएक ट्रेन की इंतजार करते मेरी निगाह बुकस्टाल में लगी अगस्त माह की सारिका पर पड़ी. 'किशोर प्रेम कथा अंक' पढ़कर मन में एक उत्सुकता जगी. 'किशोर प्रेम' पर सारिका के विचार जानने की. इसलिए कि सारिका से बहुत कुछ पाने की उम्मीद जो रहती है.

सारिका की पहली कहानी 'एक था लड़का एक थी लड़की' ही मन के अंतरंग को छू गयी. कथाकार ने दो निर्दोष मनों की मानसिकता को अद्भुत एवं सजीव मनोवैज्ञानिक परिवेश में उतार दिया है. कहानी की मौलिकता एवं मूक प्रेम मन में एक अजीब-सी टीस पैदा करती है. फिर 'पिया का नाम दिया', 'प्रेमावेश', 'कसक' आदि कहानियां एक ही बार में पढ़ डालीं. सारी की सारी कहानियां अपनी विशिष्टता लिए हैं और किशोर मन की अछूती भावनाओं को उजागर करती हैं. हमारी ओर से सभी कथा लेखकों को बधाई. नियमित स्तंभों का संकलन भी सराहनीय है. आवरण पृष्ठ की छवि स्वतः किशोर प्रेम की मूक अभिव्यक्ति है.

□ **पी.पी. श्रीवास्तव, बारुन (म.प्र.)**

पुरानी चोली ही भली

'सारिका' की कीमत जब से बढ़ी, तब से नियमित खरीद तो नहीं पाता, हां कृपालु मित्र (राकेश) से मांगकर पढ़ जरूर लेता हूं. इसी तरह किशोर प्रेम कथा अंक भी आद्योपांत पढ़ गया और हर बार की तरह अब की भी हुआ. जी उचटता रहा और 'शायद' बेहतर मिल जाए की 'मृगमरीचिका' को भोगता रहा. दो-तीन साल पहले की सारिका और अब की सारिका में अद्भुत परिवर्तन हुआ.

मेरी राय में, सारिका अब बड़े नामों के ग्लैमर में घटिया रचनाएं परोस रही है. अनुवाद भी रस नहीं देता. मेरी बस एक मिन्नत है, 'सारिका' को पुरानी चोली पहना दीजिए उसी में ज्यादा खूबसूरत लगेगी. हर अंक अलग शीर्षक (विशेषांक) की परंपरा भी समाप्त कीजिए. सारिका स्वयं में संपूर्ण है.

एक बात और. आपकी विशेषांक योजना का कुपरिणाम हिंदी के साहित्यकारों को झेलना पड़ा है. उनकी बड़ी उपेक्षा हुई है. हम हिंदी भाषी पाठक अपनी भाषा के कलमकारों की उपेक्षा नहीं करना चाहते. कभी-कभार विशेष आयोजनों में विदेशी साहित्य के अनुवार पढ़ना कबूल है लेकिन पूरे भोजन में विदेशी स्वाद वर्जित मानता हूं और स्वास्थ्य (मानसिक) के लिए अत्यंत हानिकारक भी.

□ **अकिंचन, कटिहार (बिहार)**

सारिका कथा पहेली

किन्हीं अपरिहार्य कारणों से हम सारिका कथा पहेली, अगस्त 88 के पुरस्कार विजेताओं और सर्वशुद्ध हल की घोषणा इस अंक में नहीं दे पा रहे हैं. इनकी घोषणा अब अगले अंक में की जायेगी और उसी के साथ हमेशा की तरह होगी एक नयी कथा पहेली.

यह सारिका वह सारिका

एक मित्र के सुझाव पर 'प्रहसन' पढ़ने के लिये 'सारिका' का अगस्त अंक ले आया. सारिका से मेरी यह भेंट लगभग एक वर्ष बाद हुई. सारिका ने अब तक कितने रंग बदले हैं. उड़ानें भरी हैं.

एक समय था जब सारिका का अर्थ कहानी होता था. मैं उन दिनों कहानियों के साथ व्यंग्य के लिये सारिका का पाठक था. इस अंक को देखते ही बहुत देर तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि ये सारिका पढ़ रहा हूं अथवा कोई अपराध कथाओं की पत्रिका? दो-चार बार आंखें मलीं. मुख पृष्ठ पलटा– संपादक, प्रकाशक सब वही, सारिका माननी पड़ी. यह भी एक संयोग ही है कि सारिका ने यह पवित्र कर्म करने का बीड़ा या हार स्वीकार करने का डंका इसी अंक से प्रारंभ किया है.

यह बात नहीं कि पत्रिका बिल्कुल बेकार हो गयी है. प्रहसन का श्रीगणेश दमदार है. कहानियां मध्यम श्रेणी की हैं. फिर भी जिंदगी से जुड़ी हैं. अन्य स्तंभों का भी अपना महत्व है किंतु जो मसाला है उससे लगता है कि सारिका में अन्य सामग्री के अतिरिक्त अब कहानिया भी छपती हैं.

कहानी तक सीमित रहकर भी आप पाठकों की संख्या बढ़ा सकते हैं. सत्यकथाओं के नाम पर जो अपराध कथायें प्रकाशित हो रही हैं वे सत्यकथायें किसी भी मूल्य पर नहीं हैं. इन अपराधकथाओं में धुले असत्य को आप शिवं एवं सुंदरम् की संज्ञा दें तो कोई आपका क्या कर सकता है.

□ **महेश सांख्यधर, बिजनौर (उ.प्र.)**

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें –

AID **एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन**
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ सामरसेट मॉम

दीवार पर टंगी तलवार

सज-संवरकर पार्टियों में जाने का बहुत शौक था मिसेज स्किनर को. आज की पार्टी में जाने के लिए उन्होंने एक आकर्षक पोशाक चुनी थी, काले रंग की. काले रंग की इसलिए कि उनके दामाद की मृत्यु को ज्यादा दिन नहीं हुए थे. पोशाक तो उन्हें ठीक लगी, लेकिन उन्होंने जब उसके साथ उस खास हैट को पहनना चाहा, जिस पर बोर्नियों के एक विशेष पक्षी के पंख लगे थे तो वे रुककर कुछ सोचने लगीं. उन्हें इस हैट में देखकर, उनसे ईर्ष्या करनेवाली औरतें उन्हें तीखी-कड़वी सुनाये बिना नहीं रहेंगी. सुनाती रहें! वे कुछ कहेंगी तो सुनेंगी भी. उनके पास भी मुंहतोड़ जवाबों की कमी नहीं है और वह भी शब्दों में तेजाब घोलने में किसी से कम नहीं हैं.

कितने चाव से लाया था उनका दामाद यह हैट उनके लिए.' यदि किसी ने हैट के बारे में उनसे कुछ कहा तो वे उसे बतायेंगी कि दामाद की गमी में उसका दिया हुआ हैट धारण कर वे उसके प्रति कृतज्ञता ही व्यक्त कर रही हैं.

मिसेज स्किनर जानती थीं कि हैट की सबसे पहले आलोचना करेंगी खुद उनकी छोटी बेटी कैथलीन जो अभी तक अविवाहित थी. लेकिन वे जानती थीं कि यह हैट कैथलीन को क्यों पसंद नहीं

> हत्या को आत्महत्या के रूप में स्वीकार लिया गया हो... और अपराधी फिर भी सच को कहे बगैर न रह सके तो...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है. इसलिए कि उसे मिसेज स्किनर का दामाद और अपना जी जा हैरल्ड भी पसंद नहीं था. दोनों की पटरी कभी नहीं बैठ पायी.

काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने आखिर हैट पहनने का निश्चय कर ही लिया. बाद में यू-डी-कलोन से भीगा एक रूमाल अपने हैंडबैग में रखा. अब वे हेवुड के बंगले में हो रही पार्टी में जाने के लिए तैयार थीं.

उन्होंने खिड़की से बाहर देखा. बड़ा खुशनुमा दिन था. किसी भी पार्टी के लिए आदर्श. बाहर बाग में उनकी पोती जोन फूलों से खेल रही थी. वह बहुत पीली और कमजोर थी और सदा अकेली और गंभीर रहना ही पसंद करती थी. बोर्नियो की जलवायु उसे माफिक नहीं आयी थी, शायद!

वे कैथलीन के पास गयीं जो पार्टी में होने वाली प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाली महिलाओं की सूची तैयार कर रही थी. उसके पास खड़ी थी, उनकी बड़ी बेटी मिलसेंट, जिसके पति की मृत्यु कुछ महीने पहले ही हुई थी. लेकिन उसने इस तथ्य को भुलाकर एक सजीली और भड़कीली पोशाक धारण कर रखी थी. जब उन्होंने उसे इस पोशाक के लिए टोका था तो उसने बड़ी उपेक्षा के साथ कहा था, "कब तक हैरल्ड के मरने का शोक मनाया जाता रहेगा?"

हैरल्ड की याद आते ही उन्होंने कमरे की दीवारों को देखा जिन पर मलयेशिया के लोगों के चित्र-विचित्र अस्त्र-शस्त्र टंगे थे. वे सब हैरल्ड ने शौक से जमा किये थे. उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इन अस्त्र-शस्त्रों के बीच हैरल्ड का एक फोटो टंगा था, जो आज नहीं है. उन्हें लगा, शायद मिलसेंट ने उसे उतारकर अपने कमरे में टांग लिया है. लेकिन कैथलीन से पूछा तो मालूम हुआ कि वह फोटो मिलसेंट के कमरे में नहीं है.

मिलसेंट का स्वभाव कभी उसकी समझ में नहीं आया. वह घुन्नी थी और अपन हर बात को औरों से छिपाना उसकी आदत में शुमार हो गया था. पति की, जे बोर्नियों में एक सरकारी अधिकारी था, मृत्यु के बाद जब से वह अपनी मां के पास रहने के लिए आयी थी, चुप ही रहती थी. कोई हमदर्दी दिखाये या उसकी आलोचना करे, वह चुप ही रहती थी. उसकी अटूट खामोशी से तंग आकर, उन्होंने अपने पति की बात मानकर, उससे बोलना ही बंद कर दिया था. उससे बोलना दीवार से सर फोड़ने के बराबर था.

पति की याद आते ही वह उसे दिखाई भी पड़ गये. इसे उन्होंने एक सुखद संयोग माना. उसके पति मिस्टर स्किनर पेशे से वकील थे. उन्हें पार्टियों में जाने का कोई शौक न था लेकिन आज शनिवार था और हेवुड उनका घनिष्ठ मित्र था, इसलिए वे जाने को तैयार हो गये. वे एक ईमानदार व्यक्ति होने के अलावा एक ईमानदार सॉलिसिटर भी थे.

मिस्टर और मिसेज स्किनर और कैथलीन पार्टी में जाने के लिए तैयार थे मगर मिलसेंट का कहीं पता न था. "मिलसेंट कहां गयी," मिसेज स्किनर ने पूछा.

"कोई जल्दी नहीं है. काफी वक्त है." मिस्टर स्किनर ने कहा.

कुछ मिनट बाद विधवा की मातमी पोशाक में मिलसेंट वहां आ गयी. इस पोशाक में वह अजीब-सी, अपरिचित-सी लग रही थी लेकिन उसे पहनने के लिए लाचार थी. परंपरा के अनुसार पति की मृत्यु के बाद एक साल तक उसे यही पोशाक पहननी पड़ेगी. भले ही वह इसमें अनाकर्षक क्यों न दिखायी पड़े. फिर आकर्षक दिखाई देने से लाभ भी क्या था? वह छत्तीस की थी और इतनी आयु की महिला, भले ही वह कितनी भी आकर्षक क्यों न हो, शादी के योग्य नहीं समझी जाती.

मिसेज स्किनर को उसके दूसरे विवाह के बारे में उतनी ही चिंता थी, जितनी कैथलीन के पहले विवाह की. कैथलीन 35 की होने वाली थी. मगर, दोनों ही बेटियां शादी के बारे में कभी नहीं सोचती थीं जैसे उन्हें कभी शादी करनी ही न हो. तभी मिलसेंट को मातमी कपड़ों में देखकर उन्हें कुछ याद आया और उन्होंने मिलसेंट के पास जाकर कहा, "अभी पार्टी में जाने में तो वक्त है. चलो, इतनी देर कुछ बातें ही कर लें, मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी थीं. आओ, उस कोने में बैठते हैं."

"क्या बात है?" मिलसेंट ने पूछा. कैथलीन और उसके पिता भी दोनों की बात बड़े ध्यान से सुनने लगे. मिलसेंट को बातें करते देखना एक नया अनुभव होगा.

"आज सुबह मेरी मुलाकात बोर्नियो के बड़े पादरी से हुई थी," मिसेज स्किनर ने कहा, "वे हैरल्ड को जानते थे." मिलसेंट ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायी. तभी कैथलीन ने आकर मिलसेंट से पूछा, "क्या हैरल्ड का फोटो तुमने उतारा था?" मिलसेंट चुप रही.

"तुम या तो चुप रहती हो या जब बोलती हो तो अधूरी ही बात बोलती हो. या झूठ बोलती हो," कैथलीन ने गुस्से से कहा.

मिलसेंट फिर भी चुप रही, लेकिन मिस्टर स्किनर ने कैथलीन को डांटा, "अपनी बहन से ऐसे पेश आया जाता है क्या?"

"मैं उससे ठीक ढंग से ही पेश आ रही हूं, डैडी! आप खुद मिलसेंट से पूछिये कि इसने हमसे झूठ क्यों बोला था कि हैरल्ड बीमारी की वजह से मरा था, जबकि बोर्नियो के बड़े पादरी का कहना है कि उसने आत्महत्या की थी."

सुनकर, मिलसेंट के अलावा सब सुन्न रह गये.

"बेचारा हैरल्ड!" मिसेज स्किनर सुबकने लगीं.

"हमारे खानदान में कभी ऐसी घटना नहीं घटी," मिस्टर स्किनर ने कहा.

"मैं ऐसी ही टिप्पणियों से बचना चाहती थी और इसीलिए अब तक खामोश थी." मिलसेंट ने वहां से जाते हुए कहा.

कैथलीन ने अपनी मां की ओर देखते हुए कहा, "मां, मैं तुम्हें और ज्यादा दुखी नहीं देखना चाहती. फिर भी यह बताये बिना नहीं रह सकती कि बड़े पादरी के कथनानुसार हैरल्ड को बहुत पीने की आदत भी थी."

"क्या अब कुछ और भी सुनना बाकी रह गया है?" कहकर मिसेज स्किनर अब जोर-जोर से रोने लगीं.

"सच्चाई को छिपाने का यही नतीजा होता है," मिस्टर स्किनर ने चिढ़कर कहा, "तरह-तरह की अफवाहें दुनिया में जन्म लेने लगती हैं."

कैथलीन ने घाव पर नमक छिड़कते हुए मिलसेंट से कहा, "बड़े पादरी ने यहां सबको बताया है कि हैरल्ड ने जब तलवार से अपना गला काटा तब वह नशे में धुत्त था. तुम्हें इस समाचार का खंडन करना होगा, मिलसेंट."

"बड़ी होकर जब जोन को ये बातें मालूम पड़ेंगी तो उस बेचारी को कैसा लगेगा?" कहकर मिसेज स्किनर फिर रोने लगीं.

"मगर सच क्या है, मुझे यह जानना है." मिस्टर स्किनर ने मिलसेंट से पूछा. "वह आपके सामने नहीं पीता था," मिलसेंट ने उत्तर दिया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्महत्या का बीज

मेरे पिता गोली से आत्महत्या करके मरे थे. उन्होंने विरासत में मेरे लिए पचार हजार डालर छोड़े थे. अपने उपन्यास, 'फार हूम द बैल टाल्स' में मैंने इस बारे में एक पैरा लिखा है. यह लिखने के लिए मुझे अपने पिता की आत्महत्यावाली बात का सामना करना पड़ता था. और यह सामना करने के लिए मुझे बीस साल लगे थे.

जो बात मुझे सबसे ज्यादा तंग करती थी, वह यह थी कि मैंने अपने पिता को एक पत्र लिखा था. वह पत्र उस दिन भी मेरे पिता की मेज पर बंद पड़ा हुआ था, जिस दिन उन्होंने खुद को गोली मारी थी. मेरा खयाल है कि अगर वे उस पत्र को खोलकर पढ़ लेते तो आत्महत्या न करते.

इस घटना के कई साल बाद एक दिन मुझे अपनी मां की ओर से एक पार्सल मिला. उसमें वह पिस्तौल थी, जिससे मेरे पिता ने आत्महत्या की थी. पार्सल के साथ मां का एक छोटा-सा पत्र भी था, जिसमें लिखा था : "इस पिस्तौल को शायद तुम अपने पास रखना चाहोगे." पिस्तौल मैंने अपने पास रख ली थी. तब मैं यह समझ नहीं पा रहा था कि वह किसी बात का अच्छा शकुन है या बुरा. □

□ अर्नेस्ट हेमिंग्वे

मिलसेंट कुछ देर चुप रही. उसका चेहरा पीला पड़ गया था. जब वह बोली तो लगा जैसे उसकी आवाज किसी सुरंग से आ रही है. उसने कहा, "सच बात जानकर आपकी परेशानी और बढ़ जायेगी, इसीलिए मैं अब तक चुप थी... सच तो यह है कि मैंने हैरल्ड को कभी नहीं चाहा. न वह मुझे चाहता था."

मिसेज स्किनर बीच में कुछ कहना चाहती थीं, मगर अपने पति की आंखों के इशारे से रुक गयीं. मिलसेंट ने आगे कहा, "मेरी आयु 27 वर्ष हो गयी थी और कोई ऐसा पुरुष मुझे नहीं दिखाई देता था जो मुझसे शादी करने को तैयार हो. हैरल्ड यूं तो 44 का था, लेकिन एक ऊंचे पद पर था. उससे बेहतर पति मुझे नहीं मिल सकता था."

मिलसेंट ने अपनी कहानी जारी रखी, "हम लोग कुआला सोलोर में रहते थे, जो बोर्नियो का खास नगर है. वहां हैरल्ड काफी लोकप्रिय था. शादी के बाद हमें रोज डिनर के न्यौते मिलते. वहां लोग उसे पीने को कहते मगर वह मना कर देता. लेकिन जब डिनरों का दौर खत्म हुआ तो मुझे मालूम पड़ा कि वह शराब के बिना न रह सकता है, न सो सकता है. हालत यहां तक आ गयी थी कि उसके अफसरों ने उसे चेतावनी दी कि यदि उसने पीना न छोड़ा तो उसे नौकरी से निकाल दिया जायेगा."

"क्या कह रही हो?" आश्चर्य से मिसेज मिलसेंट ने पूछा. "पर, तुम्हारी चिट्ठियों में तो कुछ और ही लिखा होता था और यह भी कि तुम उसे बहुत चाहती हो."

पुरानी यादों में खोते हुए मिलसेंट ने कहा, "शादी के शुरू के कुछ महीने सचमुच सुखद और अविस्मरणीय थे. हैरल्ड सदा मेरे सामने आंखें बिछाने को तैयार रहता था. हनीमून के उन्हीं सुहाने दिनों में मेरी भेंट बोर्नियो के प्रायः सभी उच्च अधिकारियों से हुई थी. उनमें से असिस्टेंट रजिडेंट सिपसन के साथ मेरा घनिष्ट परिचय हो गया था. उन दिनों मैं सचमुच बहुत सुखी थी. इतना ही नहीं, मैं सचमुच हैरल्ड से प्यार करने लगी थी. मगर एक साल बाद सब कुछ बदल गया. शुरुआत तब हुई, जब दो अंग्रेज प्रकृति-विज्ञानी सरकारी काम से बोर्नियो आये और हैरल्ड के अनुरोध से हमारे यहां ही ठहरे. पहले दिन डिनर के बाद दोनों सिपसन और हैरल्ड के साथ ब्रिज खेलने बैठ गये. मैं कुछ देर तक तो उनके पास बैठी, फिर सोने चली गयी. लेकिन मेरे जाते ही चारों शोर-गुल करने लगे और मेरा सोना मुश्किल हो गया. खैर, जब खेल खत्म हुआ तो शोर भी खत्म हुआ और मैंने हैरल्ड को लड़खड़ाते हुए, बैडरूम में आते देखा. वह सोने से पहले, बाथरूम में गया. वहां नशे की वजह से फिसल गया और सबको गालियां देने लगा. बाद में नशे की हालत में ही आकर सो गया. मैंने तय किया कि सुबह होते ही हैरल्ड से इस बारे में बातें करूंगी. मेहमानों ने क्या सोचा होगा? लेकिन, सुबह उठकर वह इतना संभ्रांत लग रहा था कि मेरी हिम्मत उससे कुछ कहने की नहीं हुई. नाश्ते के लिए मेज पर काफी चीजें जमा थीं, लेकिन हैरल्ड सिर्फ व्हिस्की पीता रहा. दोनों मेहमान उसकी ओर देखकर बड़ी बेशर्मी से हंस रहे थे. एक ने तो मुझसे कहा, " आपके पति काफी मुसीबत पैदा करने वाले आदमी हैं," और बेशर्मी के साथ हंसने लगा. हैरल्ड भी उसके साथ हो-हो करके हंसने लगा. मेरा सिर शर्म से झुक गया.

कुछ महीने बाद हैरल्ड को अपने ज़िले के दौरे पर जाना था. जब वह लौटा, तो उसे मलेरिया हो चुका था. वह कमजोर तो हो ही गया था, मूडी और चिड़चिड़ा भी हो गया था. घंटों शून्य में ताकता अकेला बैठा रहता था या गर्दन तिरछी करके मुझे घूरता रहता था.

सिंपसन हम दोनों से मिलने के लिए अक्सर आता रहता था. कई बार मुझे लगा, जैसे वह मुझसे अकेले में कुछ कहना चाहता है, किंतु संकोचवश कुछ कह नहीं पाता. एक दिन, मैंने उससे पूछ ही लिया कि वह मुझसे क्या कहना चाहता है? 'यदि बात हैरल्ड के बारे में है, तो बेहतर होगा कि आप मुझे साफ़-साफ़ बता दें.'

उसने काफी हिचकते हुए कहा, 'मैं नहीं जानता कि यह बात मुझे आपको बतानी चाहिए या नहीं, मगर ऑफिस के सब लोग जानते हैं कि हैरल्ड साहब अपनी मेज की ड्रॉअर में हमेशा व्हिस्की की एक बोतल रखते हैं और जब-तब पीते रहते हैं, सबके सामने.'

एक सर्द लहर मेरे शरीर में फैल गयी. सिंपसन ने कहा— 'यदि उन्हें अभी नहीं रोका गया तो उनकी पीने की आदत वैसी ही हो जायेगी, जैसी शादी से पहले थी, जब वे हमेशा नशे में धुत दिखाई देते थे.'

सिंपसन के जाने के बाद मैं उठी और सीधी हैरल्ड के ऑफिस में पहुंची. उसकी मेज पर व्हिस्की की आधी भरी बोतल रखी थी. मुझे देखकर वह घबरा गया. मैंने उससे कहा, 'मैं देखने आयी थी कि कामकाज कैसा चल रहा है?'

'बैठो, बैठो. काम बहुत है,' उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा. मैंने उससे कहा, 'तुम पिये हुए हो.' मेरा स्वर काफी क्रुद्ध था.

"तुम क्या... क्या कह रही हो?" उसने उद्धत मुद्रा में कहा.

जवाब में मैं उसे खूब सुनाना चाहती थी, मगर सिर्फ रोकर रह गयी. हैरल्ड के ऑफिस में कोई और न था. वह मेरे सामने घुटनों के बल बैठकर, आजिजी से कहने लगा, 'मुझे माफ़ कर दो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डियर! इस मलेरिया की वजह से मुझे यह लत लगी. मगर यकीन करो, मैं इसे शीघ्र ही पीना छोड़ दूंगा.' मैंने कहा— 'तुम्हें पीते देखकर मुझे बड़ी शर्म आती है,' और फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी. मुझे रोते देखकर वह भी रोने लगा. उसे रोते देखकर मेरा मन पिघल गया और मैंने उससे पूछा, 'क्या तुम मेरी शपथ लेकर यह वायदा करते हो कि तुम अब कभी व्हिस्की को छुओगे भी नहीं? बोलो!' उसने कहा, 'मैं तुम्हारी शपथ लेकर वायदा करता हूं कि कभी शराब को हाथ तक नहीं लगाऊंगा. मैं स्वीकार करता हूं कि शादी से पहले मैं खूब पीता था. अकेले आदमी को यह लत जल्दी लग जाती है.' जब मैंने उसे बताया कि मैं मां बनने वाली हूं तो उसे बड़ी खुशी हुई. उसने कहा, 'मैं अब अपनी संतान की खातिर शराब से दूर रहूंगा.' उसने अपने वायदे को दोहराते हुए कहा, 'मैं या तो कभी वायदा करता नहीं, मगर जब कर लेता हूं तो उसे तोड़ता नहीं. तुम निश्चिंत रहो. मैं आगे कभी शराब की तरफ देखूंगा भी नहीं.'

मिलसेंट ने आगे कहा, "जब जोन का जन्म हुआ तब रेजीडेंट की पत्नी मिसेज ग्रे ने उसका बहुत खयाल रखा था. लेकिन जब मिसेज ग्रे ने मुझे बताया कि शादी के पहले, हैरल्ड बिला नागा रोज पीता था और उसकी नौकरी सिर्फ इसलिए जाते-जाते बची थी कि उसने वायदा किया था कि वह शीघ्र ही विवाह करके पीने की आदत हमेशा-हमेशा के लिए छोड़ देगा तो मुझे बहुत कष्ट हुआ. और यह कष्ट तब असहय हो गया जब अस्पताल से बच्ची के साथ लौटने पर मैंने देखा कि हैरल्ड ने पी रखी है. उसी क्षण मैंने निश्चय कर लिया कि ऐसे आदमी को मैं कभी नहीं चाह सकती. और कभी मेरे हाथों उसकी मौत हो जाये तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा. उसने झूठ बोला, अपना वायदा पूरा नहीं किया. गलीज आदमी था."

"खुदा के वास्ते ऐसा मत कहो, बेटी!" मिसेज स्किनर ने कहा, "वह अब जिंदा नहीं है और जिंदा भी होता तो..." लेकिन मिलसेंट की कठोर निगाहें देखकर वे बीच ही में रुक गयीं.

"आगे क्या हुआ?" कैथलीन और उसके पिता ने पूछा.

"उस दिन के बाद वह खुले आम पीने लगा, बिना इस बात की पर्वाह किये कि उसे पीते देखकर मुझे कितनी पीड़ा होती है. तीन महीने बाद वह फिर बीमार पड़ा. वह काफ़ी ज़िद्दी और कमज़ोर हो गया था."

"तुमने उसे तब क्यों नहीं छोड़ दिया?" कैथलीन ने पूछा.

"अगर मैं उसे छोड़ देती तो उसे अगले दिन ही नौकरी से निकाल दिया जाता. मैं यह नहीं जानती थी. मुझे अपना और जोन का भी खयाल था. रेजीडेंट महोदय मुझे सूचित कर चुके थे कि यदि हैरल्ड ने फौरन पीना न छोड़ा तो उसकी नौकरी तत्काल चली जायेगी. उसकी पीने की आदत छुड़ाने के मैंने अनेक प्रयास किये मगर उसकी पीने की आदत नहीं छूटी. जब मैंने हैरल्ड को नौकरी छूट जाने की संभावना की बात बतायी तो वह बहुत आगबबूला हुआ लेकिन थोड़ा डर भी गया और दो-तीन महीने तक वह शराब से दूर रहा. लेकिन, बाद में फिर पीना शुरू कर दिया. तभी उसकी इंग्लैंड जाने की छुट्टियां आ गयीं.

"इंग्लैंड आने से पहले, मैंने उससे बार-बार प्रार्थना की कि वह अपनी ससुराल में कतई न पिये. सौभाग्य से उसने यहां शराब की तरफ देखा भी नहीं. वह जोन को भी बहुत प्यार करने लगा था और मेरे से भी अच्छी तरह पेश आने लगा. काफी दिनों के बाद, मैंने सुख-संतोष का अनुभव किया."

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया, "फिर जोन बीमार पड़ी. डॉक्टर की सलाह पर मैं उसके साथ एक महीना समुद्र-तट पर रही. लेकिन जब वापस लौटी तो देखा, हैरल्ड अपने बिस्तरे पर, नशे में धुत्त पड़ा था. उसकी हजामत बहुत बड़ी थी जो दिखाती थी कि कई दिन से वह काम पर नहीं गया और इसी तरह पीकर सोता आ रहा है. मैं तेज़ी से अपना आपा खोती जा रही थी और मुझे तब पता नहीं चला कि मैं क्या कर रही हूं. सामने दीवार पर परांग टंगी थी, बोर्नियो की एक तलवार... और फिर उसका गला कट गया. आखिरी बार जब उसने एक क्षण के लिए अपनी आंखें खोलीं, तो वे मुझे जोन की आंखें जैसी लगीं."

मिसेज स्किनर ने डर के मारे चीख मारी. कैथलीन ने मिलसेंट को झंझोड़कर कहा, "सही-सही बताओ कि क्या हुआ था?"

"परांग (तलवार) दीवार पर टंगी थी. इसके बाद क्या हुआ, मैं नहीं जानती. वह तुरंत मर गया था और कुछ बोल भी नहीं पाया था."

"तो... तूने उसे जान से मार डाला था!" मिसेज स्किनर चिल्लायी. मिस्टर स्किनर ने पूछा, "यह काम तूने ही किया था? बता, मैं सच्चाई जानना चाहता हूं."

"मैंने नहीं किया था तो फिर किसने किया? वहां मेरे सिवा कोई और मौजूद नहीं था... मैंने सबसे यही कहा कि मैंने जब बंगले में जोन के साथ प्रवेश किया तो देखा कि हैरल्ड की गर्दन कटी है. हैरल्ड के पलंग के पास व्हिस्की की बोतल देखकर सबने विश्वास कर लिया कि उसने आत्महत्या ही की है. अधिकारियों ने मेरी बात पर विश्वास कर मेरे लिए पेंशन की व्यवस्था भी कर दी."

"मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिए," मिस्टर स्किनर बोले.

"आप क्या करना चाहते हैं या थे?" मिलसेंट ने पूछा.

"यह हत्या का मामला है. इसे छिपाया नहीं जा सकता."

कैथलीन ने उन्हें समझाया, "क्या आप अपनी बेटी को कानून के हवाले करेंगे?"

मिलसेंट ने कहा, "मैं चाहती तो सच को छिपा सकती थी. लेकिन, आप सबके कहने पर मैंने सब सच बता दिया. मैं इतने दिनों तक अशांत और दुखी रहे. आप कुछ मिनट भी अशांत और दुखी नहीं रह सकते, आश्चर्य है."

तभी नौकर ने आकर बताया कि शोफर कार लेकर आ गया है. उसको विदा कर मिलसेंट ने कहा, "पार्टी में जाने का समय हो गया है."

"मैं पार्टी में नहीं जा सकूंगी," मिसेज स्किनर ने कहा, "मैं वहां बड़े पादरी और हेवुड का सामना कैसे कर पाऊंगी?"

"पार्टी में तो हमें जाना ही होगा," कैथलीन ने कहा और मिलसेंट ने चलने के लिए आगे कदम बढ़ाकर उसका मूक अनुमोदन किया. मिलसेंट ने कहा, "जैसा आघात आपको लगा, उससे कई सौ गुना आघात मुझे इस घटना से लगा था. लेकिन, दो-तीन महीने के बाद मैं सब कुछ भूल गयी थी. आप तो दो-तीन दिन में ही सब कुछ भूल जायेंगे. किसी का खतरा तो न कभी था, न अब है."

तीनों में से किसी ने भी इस बात के उत्तर में कुछ नहीं कहा. हां, कार में सवार होते हुए, मिस्टर स्किनर ने मिलसेंट से इतना जरूर कहा, "कम से कम मुझे तुमको यह घटना नहीं सुनानी चाहिए थी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुर्गनेव

आत्मस्वीकृति

अंधेरी तूफानी रात में

इंसान कैसे अपने व्यवहार को बदलने पर मजबूर हो जाता है...? धुंधभरी तस्वीर की असलियत बखानती प्रख्यात कथाकार की यादगार कहानी—

शिकार के बाद, मैं अपनी 'ड्रॉक्सी' (चार पहियोंवाली गाड़ी, जिसका इस्तेमाल जंगली क्षेत्रों में जाने के लिए किया जाता है) में अपने घर वापस लौट रहा था.

मैं अपने घर से प्रायः छह मील की दूरी पर था. जिस रफ्तार से 'ड्रॉक्सी' दौड़ रही थी, उससे मुझे आशा थी कि मैं शाम को ही अपने घर पहुंच जाऊंगा. मेरा कुत्ता एक कोने में चुपचाप बैठा था. शिकार के दौरान, उसे काफी दौड़ना पड़ा था इसलिए वह काफी थक गया था.

तभी मैंने आकाश में बैंगनी रंग के बड़े-बड़े बादलों को मंडराते देखा. ये डरावने बादल आने वाले बड़े तूफान की पूर्व-सूचना दे रहे थे. और, जब तक मैं यह निर्णय कर पाऊं कि तूफान से बचने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, तब तक वर्षा की मोटी-मोटी बूंदें मुझे और मेरी 'ड्रॉक्सी' को भिगाने लगीं.

मैंने चारों ओर देखा कि शरण लेने के लिए आसपास कोई सुरक्षित स्थान है या नहीं. सौभाग्य से एक ढलान के नीचे एक ऐसा स्थान दिखाई दे गया जो सायेदार वृक्षों से आच्छादित था और जहां पहुंचकर तूफान और वर्षा से राहत पायी जा सकती थी.

'ड्रॉक्सी' को सावधानी से चलाते हुए, मैं कुछ देर बाद उस स्थान पर पहुंच गया. यहां पहुंचकर तूफान और तेज वर्षा की बूंदों से तो मुक्ति मिल गयी लेकिन एक नयी परेशानी का सामना करना पड़ा, यानी— घटाटोप अंधकार. अंधेरा इतना घना था कि एक इंच आगे की वस्तु भी मैं नहीं देख सकता था. अंधेरे की वजह से घोड़ी और कुत्ता अलग परेशान थे. मैं एक पेड़ के नीचे दुबका बैठा, तूफान और बारिश के खत्म होने का इंतजार करने लगा.

सहसा बिजली जोर से चमकी और उसके प्रकाश में मैंने सड़क पर एक लंबे-चौड़े और मजबूत आदमी को खड़े देखा. ऐसा लगता था, जैसे वह अचानक जमीन में से निकलकर मेरी 'ड्रॉक्सी' के पास खड़ा हो गया हो. उसने तेज-तर्रार आवाज में मुझसे पूछा, "कौन हो तुम?"

मैंने उसे अपना नाम बताया. उसने कहा, "मैंने आपका नाम सुना है. मैं इस जंगल का वनाधिकारी हूं. क्या आप अपने घर वापस जा रहे थे?"

तभी बिजली चमकी और उसके साथ वर्षा भी तेज हो गयी. वनाधिकारी ने कहा, "लगता है, बारिश जल्दी नहीं रुकेगी. आप चाहें, तो मेरी झोंपड़ी में चलिये."

"बड़ी मेहरबानी होगी," मैंने कहा.

उसने घोड़ी को बड़े प्यार से थपथपाया, उसे 'ड्रॉक्सी' में जोता और फिर मुझे और कुत्ते को 'ड्रॉक्सी' में बैठाकर, उसे अपनी झोंपड़ी की ओर ले जाने लगा. करीब आधा घंटे के सफर के बाद हम उसकी झोंपड़ी पर पहुंचे. तभी, बिजली चमकी और उसके प्रकाश में मैंने एक बाड़े में सिमटे एक छोटे से झोंपड़े को देखा जिसकी एक खिड़की से दीये की मध्यम-सी रोशनी आ रही थी. कुछ सेकंड बाद, ग्यारह-बारह साल की एक लड़की हाथ में लालटेन लिये आयी. उसने एक क्षण के लिए मुझे देखा और फिर अंदर जाने लगी. मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया. वनाधिकारी 'ड्रॉक्सी' शेड में रखने के लिए चला गया.

झोंपड़ी के अंदर ज्यादा सामान न था. दीवार पर भेड़ की एक पुरानी खाल टंगी थी, जो शायद जमीन पर बैठने के काम आती थी. एक कोने में सिंगल-बैरल की बंदूक पड़ी थी. उसके पास में पुराने कंबल पड़े थे. चूल्हे के पास दो बड़े बर्तन रखे थे और उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकड़ियां जल रही थीं. दूसरे कोने में एक झूला लगा था, जिसे वह लड़की, बीच-बीच में मुझे देखते हुए, हिलाती जाती थी. झूले से किसी बच्चे की जोर-जोर से सांस लेने और कभी-कभी खांसने की आवाज भी आ जाती थी. बीच-बीच में, लड़की चूल्हे की आग को भी तेज करती जाती थी.

मेरा मन खेलने-खालने की उम्र में गंभीर बनी उस लड़की के प्रति सदय हो गया. मैंने उससे पूछा, ''क्या तुम वनाधिकारी की लड़की हो?'' उसने अस्फुट स्वर में कहा, ''हां.'' तभी वनाधिकारी ने झोंपड़ी में प्रवेश करते हुए मेज पर एक मोमबत्ती जला दी. और पूछा, ''आपको हमारी रुखी-सूखी रोटी कहां पसंद आयेगी. आप ठहरे बड़े आदमी.''

''मेरे भाई, मुझे भूख नहीं है.... तुम्हारा नाम क्या है?''

''नाम तो वैसे फोमा है लेकिन लोग मुझे 'भेड़िया' के नाम से ज्यादा जानते हैं.''

''ओह! तो तुम ही 'भेड़िया' हो! मैंने तुम्हारे बारे में तरह-तरह की कहानियां सुनी हैं. तुम तो इस इलाके के मशहूर आदमी हो.''

''मेरे बारे में आपने कैसी कहानियां सुनी हैं?''

''यही कि इस इलाके के किसान असली भेड़िये से भी ज्यादा तुमसे डरते हैं. तुम किसी किसान को जंगल की एक लकड़ी भी नहीं ले जाने देते. जो ऐसा दुस्साहस करता भी है, उसे तुम जंगल पार करने से पहले ही अपनी गिरफ्त में ले लेते हो. पर, तुम्हें देखकर मैं यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि तुम ही भेड़िये हो. तुम एक करुण-हृदय किसान लगते हो.''

''मैं रहमदिल जरूर हूं, लेकिन अपराधी पर रहम नहीं दिखाता. मैं किसी पर सख्ती नहीं दिखाता और नमकहराम होने की जगह नमकहलाल होना ज्यादा पसंद करता हूं.'' इतना कहकर वह कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरने लगा. मैंने पूछा, ''तुम्हारी पत्नी कहां है?''

''वह... वह नहीं है,'' उसने लकड़ियों पर जोर से कुल्हाड़ी चलाते हुए कहा.

''क्या वह जीवित नहीं है?''

''वह जीवित है, लेकिन मेरे लिए नहीं. वह एक आदमी के साथ भाग गयी,'' उसने एक तीखी मुस्कराहट के साथ कहा.

लड़की ने शर्म से सर झुका लिया. बच्चा सहसा जोर-जोर से रोने लगा. फोमा ने उसे गोद में उठाते हुए कहा, ''वह इसे भी छोड़ गयी. खैर जाने दें इस बात को. मैं आपकी घोड़ी को देखता हूं. और कुत्ते को भी. दोनों भूखे होंगे. जल्दी से उनके लिए गोश्त पका देता हूं. माफ करें, मैं आपको चाय नहीं दे सकता. घर में चाय नहीं है.''

उसके जाने के बाद मैंने झोंपड़ी में चारों ओर निगाहें दौड़ायीं. सारा वातावरण बड़ा उदास और मायूसी तथा बासेपन से भरा था. लड़की के कपड़े पुराने, फटे हुए और नाकाफी थे. मैंने उससे पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है, बेटी?''

''उलिता,'' कहते-कहते उसका चेहरा और ज्यादा उदास और भावशून्य हो गया.

इस बीच 'भेड़िया' बाहर लौट आया और मुझसे कहने लगा, ''तूफान और बारिश का जोर धीरे-धीरे कम हो रहा है. आप कहें तो मैं आपको जंगल के पार छोड़ आऊं.'' मैं फौरन उठ खड़ा हुआ. उसने भी अपनी बंदूक उठा ली. मैंने पूछा, ''बंदूक की क्या जरूरत है?''

''जरूरत पड़ेगी. किसी के लकड़ी तोड़ने की आवाज आ रही है.''

''लेकिन, मुझे तो ऐसी कोई आवाज सुनायी नहीं दे रही है.''

''मुझे तो आवाज साफ सुनायी दे रही है.''

जब हम बाहर आये तो बारिश और तूफान दोनों थम चुके थे. बारिश से भीगे पेड़ अंधेरे में खामोश सहमे से खड़े थे.

सहसा, 'भेड़िया' रुक गया और कान झुकाकर कुछ सुनने लगा. फिर बोला, ''निश्चय ही कोई पेड़ काट रहा है. उसने सोचा होगा कि ऐसी रात में भला कौन उसे रोकने आयेगा? लेकिन वह मुझे भूल गया है, शायद!''

घोड़ी को एक नयी पगडंडी की ओर मोड़ते हुए उसने कहा, ''यह पगडंडी हमें दर्रे तक जल्दी पहुंचा देगी. आपको जंगल के बाहर छोड़कर मैं उस आदमी से निपटूंगा.''

''मैं भी उस समय तुम्हारे साथ रहना चाहूंगा.''

''आप चाहें तो... वैसे, मैं अकेला ही उसके लिए काफी हूं.''

हम लोग काफी तेजी से जाने लगे. रास्ते में, अचानक 'भेड़िया' एक बार फिर क्षण भर के लिए रुका. तभी किसी पेड़ के धड़ाम से जमीन पर गिरने की आवाज सुनाई दी. अपने कंधे उचकाते हुए, 'भेड़िया' दर्रे की ओर भागा. मैं भी उसके पीछे-पीछे भाग रहा था.

घटनास्थल पर पहुंचकर, उसने मुझसे कहा, ''आप एक क्षण को यहीं रुकें.'' कहकर, वह घनी झाड़ियों में गायब हो गया. उसके कंधों पर उसकी बंदूक थी. कुछ क्षण बाद, मुझे 'ड्रॉक्सी' के पहियों के थमने और कुल्हाड़ी के जोर से पेड़ पर पड़ने की आवाज सुनाई दी. और उसके साथ ही भेड़िये की गोली जैसी आवाज, ''रुको! ठहरो! मैं आ गया हूं!'' इसके साथ ही एक मिमियाती-सी आवाज सुनायी दी, माफी का इजहार करती हुई.

मैं जब झाड़ियों को चीरता हुआ, जमीन पर पड़े पेड़ के पास पहुंचा तो देखा, 'भेड़िया' गैरकानूनी ढंग से पेड़ काटने वाले के दोनों हाथ उसकी पीठ के पीछे बांध रहा है. सिर से पांव तक भीगा

(लघुकथा)

गलतियों की राख

विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक, थॉमस एडीसन की प्रयोगशाला और कारखाने को आग लग गयी तो कुछ ही देर में सब कुछ मिट्टी में मिल गया. बीस लाख डालर के यंत्रों के अलावा एडीसन के जीवन भर के शोध-कार्य से संबंधित सभी कागज-पत्र भी जलकर राख हो गये.

दुर्घटना की खबर पाते ही एडीसन का पुत्र वहां पहुंचा तो एडीसन एक जगह खड़ा उस आग को देख रहा था.

पुत्र को देखते ही एडीसन ने कहा, ''तुम्हारी मां कहां है? उसे जल्दी से लेकर आओ. ऐसा दृश्य वह फिर कभी नहीं देख पायेगी.''

अगले दिन सुबह अपनी आशाओं और सपनों की राख में घूमते हुए 67 वर्षीय एडीसन ने अपने सहयोगियों से कहा, ''तबाही का भी कुछ फायदा जरूर होता है. हमारी सबकी गलतियां जलकर राख हो गयी हैं. अब हम नये सिरे से अपना काम शुरू कर सकते हैं. □

— सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आदमी सर्दी और डर की वजह से कांप रहा था. मुझे उस पर रहम आ गया. मैंने 'भेड़िये' से कहा, "उसे छोड़ दो, दोस्त! मैं पेड़ की कीमत चुकाने को तैयार हूं."

'भेड़िये' ने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं. उसने अपराधी को दाहिने हाथ से घसीटते हुए कहा, "चल, अब सीधी तरह से मेरे साथ!" रास्ते में फिर मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गयी, और हम सब बड़ी मुश्किल से झोंपड़ी तक पहुंचे. झोंपड़ी के बाहर, 'भेड़िये' ने अपराधी की घोड़ी को आंगन के बीचोंबीच लगे एक पेड़ से बांधा और उसे झोंपड़ी के अंदर लाकर उसकी गांठ ढीली करने लगा. 'भेड़िया' एक टूटी कुर्सी पर बैठकर अपना सर हाथों में लेकर कुछ सोचने लगा. मैं भी स्टूल पर बैठकर देखने लगा कि अब क्या होगा? 'भेड़िये' ने मुझसे कहा, "बारिश शायद जल्दी नहीं थमेगी. आप यहीं आराम करें. इस सूअर को मैं पास की कोठरी में बंद किये देता हूं."

"इस आदमी को ज्यादा छेड़ो मत. उसे छोड़ दो. पेड़ की कीमत मुझसे ले लो." मेरे यह शब्द सुनते ही, अपराधी ने क्षणभर के लिए मुझे देखा. उसकी दयनीय निगाहों को देखकर मैंने निश्चय कर लिया था कि जो भी हो, इस बेचारे को आजाद कराके ही दम लूंगा. लालटैन की मंद रोशनी में मैंने देखा, उसका क्लांत और झुर्रीदार चेहरा, कृशकाय देह और डरी हुई आंखें. 'भेड़िया' अपना सर हाथ में लिये, चुपचाप बैठा था. झींगुरों की आवाज झोंपड़ी की शांति को भंग कर रही थी. सहसा, अपराधी ने अपनी गाढ़ी मगर टूटी आवाज में कहा, "फोमा कुजमिख, मुझे छोड़ दो." फोमा ने कोई जवाब नहीं दिया.

"मुझे जाने दो. भूख से लाचार होकर, मैंने मजबूरी में यह जुर्म किया."

"तुम सब गांववाले एक जैसे हो... चोर!" फोमा ने गुस्से से कहा.

अपराधी फिर गिड़गिड़ाया, "मुझे छोड़ दो. हम सब तबाह हो चुके हैं, अपने मैनेजर की वजह से. हमें और ज्यादा तबाह मत करो."

फोमा ने अपनी निगाहें अपराधी की ओर से मोड़ लीं. अपराधी या तो ठंड से, या डर से, बुरी तरह कांप रहा था और उसे सांस लेने में भी कठिनाई हो रही थी. वह शोकार्त स्वर में एक ही राग अलापे जा रहा था, "मुझे छोड़ दो... मैंने जो कुछ किया, मजबूरी में किया. मेरा परिवार भूख से मर रहा था. मेरे बच्चे अभी भी रो-चिल्ला रहे होंगे. मैं भगवान की सौगंध खाकर कहता हूं कि मैं पेड़ की पूरी कीमत अदा कर दूंगा. मैं बंद हो गया तो मेरी बीवी... मेरे बाल-बच्चे... भूखे मर जायेंगे. उन्हें कोई कुछ नहीं देगा."

कुछ देर बाद, फोमा ने कहा, "भूख का इलाज चोरी नहीं है."

"मेरी घोड़ी," अपराधी ने जैसे फोमा की बात सुनी ही नहीं, "कम से कम उसे तो छोड़ दो. हमारे पास वही एक जानवर है. तुम उसे नहीं छोड़ेंगे तो मेरी बीवी और बाल-बच्चों के साथ वह भी मर जायेगी."

"देखो, मैं कुछ नहीं कर सकता. मेरी भी मजबूरियां हैं. और तुम्हें तो यह जुर्म करने की आदत-सी पड़ गयी है. तुम्हें छोड़ देन से तुम्हारी यह आदत जानेवाली नहीं है."

"मैं तुम्हारे पांव पड़ता हूं, फोमा! मुझे छोड़ दो. मेरी बात पर यकीन करो. मैं भूखा था, लाचार था. मुझे जाने दो."

"उफ! बस भी कर! चुपचाप बैठा रह! देखता नहीं है, तेरे सामने कितने बड़े आदमी बैठे हैं." बेचारे किसान ने अपना सिर झुका लिया. फोमा ने लंबी जम्हाई लेकर अपना सिर मेज पर रख दिया. वह भी थका हुआ और परेशान दिखाई देता था. मैं उत्सुक था जानने को कि अब क्या होता है.

...सहसा बिना किसी चेतावनी के अपराधी किसान अचानक उठ खड़ा हुआ. वह अब तनकर खड़ा था और उसका चेहरा क्रोध से तमतमाया हुआ था. उसने फोमा से कहा, "बेरहम! सता मुझे जितना चाहता है! पी ले, और मेरे बीवी-बच्चों का खून! तुझे सौगंध है, भगवान की! पी हम सबका खून!"

फोमा ने मुड़कर किसान की ओर देखा और उसे कहते सुना, "हां, मैं तुझ ही से बातें कर रहा हूं. हत्यारे, गरीबों का खून पीनेवाले! मार, मुझे इसी वक्त जान से मार डाल!" छोटी लड़की उठ खड़ी हुई थी और सहमी सी उसे देख रही थी.

"खामोश!" भेड़िया चिल्लाया और किसान के ठीक सामने जाकर खड़ा हो गया.

किसान चिल्लाने लगा, "मैं अब खामोश नहीं रहूंगा. मैं अपनी जिंदगी से तंग आ गया हूं और मरना चाहता हूं. इसी जुल्मी आदमी के हाथों मरना चाहता हूं."

'भेड़िये' ने किसान की गर्दन पकड़ ली. मैं किसान को बचाने के लिए आगे बढ़ा और फोमा से कहने लगा, "जाने दो इसे फोमा. मैं उसकी ओर से सब हर्जाना चुकाने को तैयार हूं."

"मेहरबानी करके आप इसके पास न जायें, हुजूर!" और मुझसे यह कहकर फोमा किसान के बंधे हाथों को खोलने लगा. किसान को आजाद करके फोमा ने हल्का-सा धक्का देकर उसे झोंपड़ी के बाहर कर दिया और धमकी भरे स्वर में कहा, "इस बार छोड़ देता हूं, लेकिन अगली बार जरा भी रहम दिखाने वाला नहीं हूं." और वापस झोंपड़ी में आकर उसन अपनी छोटी लड़की को गोद में उठा लिया, और प्यार से सहलाने लगा.

बारिश फिर काफी कम हो गयी थी. सड़क तक मुझे छोड़कर वह वापस अपनी झोंपड़ी की ओर लौटा. काफी देर तक उसका चेहरा मेरी आंखों के सामने घूमता रहा और याद आते रहे, उसके ये शब्द, "इस बार आपके कहने पर उसे छोड़ दिया, हुजूर! मगर, अगली बार उसे छोड़ने वाला नहीं हूं." □

भूख

मुझे अपना बचपन सिर्फ भूख और डर की शक्ल में याद है. मैं रूस में जन्मी और आठ साल की उम्र तक रूस में ही पली. घर के बाहर बेहद ठंड होती और घर के अंदर बेहद खालीपन. मुझे आज भी अपनी वह हालत याद है, जब मैं रसोई में बैठी आंसू-भरी आंखों से देखती थी कि मां मेरे हिस्से की खिचड़ी मेरी छोटी बहन को खिला रही है. तब मुझे किसी ने यह बात नहीं बतायी थी कि मेरी बहन स्कूल में कई बार भूख के कारण बेहोश हुई थी.

करीब में एक छोटा-सा घर था, जिसके निचले हिस्से में हम रहते थे. जब कभी हम शहर में जाते, तो लोग हमें 'क्राइस्ट के कातिल' कहते. सुनकर मैं डर के मारे कांपने लगती. एक रात कुछ लोग यही नारे लगाते हुए हमारे घर पर टूट पड़े. तब मुझे पता लगा कि मैं यहूदी हूं और यहूदी होने के कारण ही मैं ओस-पड़ोस के घरों के बच्चों के साथ खेल नहीं पाती थी.

□ गोल्डा मायर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 16 जुलाई, 1949
प्रमुख कृतियां : 'नकली चांद', 'साज महल' (उपन्यास), विस्फोट (विज्ञान कथा), रहस्यों का सौदागर (कथा संग्रह).
संपर्क : अरावली अपार्टमेंट्स, अलकनंदा, कालका जी, दिल्ली-110 009

□ राजेश जैन

मंटोर बाई

सिन्हा साहब ने जीप से उतरकर प्लांट पर एक नजर डाली. बगीचे की क्यारियों-सी सुंदरता लिये हुए ये इस्पाती ढांचे... सारा प्लांट एक जंगी-सा लग रहा था... और मस्तूल-सी उठी हुई चिमनी.

कुछ याद करने की कोशिश उन्हें नहीं करनी पड़ी क्योंकि साथ के स्थानीय अफसर कौशल ने चिमनी की ओर इशारा करके कहा था, "सर वो है चिमनी, जहां से वेदू राम गिरकर या कूदकर मरा था..."

"तो उसका नाम था वेदू राम..." उन्होंने मन ही मन कोई खोयी चीज पा ली, "क्या हाइट है चिमनी की?"

"एक सौ पच्चीस मीटर सर," स्थानीय अधिकारी ने बताया

"काफी ऊंची है..."

"येस सर, अभी पूरी नहीं बनी... सबसे ऊपरी फ्लोर का काम बाकी है..."

"ऊपर काम चल रहा था... वेदूराम वहीं काम कर रहा होगा?" अब सिन्हा के सामने इंक्वाइरी का पहला गवाह था—फूलो. उन्होंने व्यावसायिक मुस्तैदी सहित फूलो से बातचीत शुरू की. कलम तैयार की. कलम की गाड़ी को फूलो के शब्द ढकेलने लगे—जैसे फूलो की आवाज उनकी कलम से स्याही बन गयी.

"नाहीं साब," फूलो बोल रहा था. "वेदू ऊपरे काम न करे था..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो फिर ऊपर काहे गया रहा?"

"का मालूम... हो सकत है मनटोर बाई होये बुलाव रहीं...?"

"कौन मनटोर बाई... उसकी औरत है क्या?"

"उसकी औरत थी..."

"क्या वह ऊपर काम कर रही थी... वहां से उसने बुलाया था..."

"अरे साब... वा है तो ऊपर सही... पन बहुत ऊपर है... चिमनी से भी अऊर ऊपर..."

"क्या मतलब?"

"अब भला मोहे का मालूम कि भूतन की आतमा कितनी ऊंचाई पर रहत है..."

"भूत की आत्मा... मनटोरबाई किसी प्रेत का नाम है..."

"लो साब... हर कोई जानत है... सबै बात करत हैं. ई बार वेदू राम को वही बुलाय रही..."

"ई बार... यानी ऐसा हो चुका है..."

"होत रहत है... आज यहां तो काल वां... कोई न कोई मरत रहत है... काहे न मरे... साब, ई जगह जो गांव रहा—वो में पहले जिंदा गांव बारे अऊर बड़े-बड़े नामी भूत-परेत... सब हिल-मिलकर रहत रहे. कोई किसी को बाधा न पहुंचात रहा...

कभी-कभी अतीत इंसान पर इतना हावी क्यों हो जाता है कि आदमी अपने आप से ही घबराने लग जाए...

वो उधर टंकी दिखत है न... उधर घनी अमराई रही... वहां का इलाका भूत-परेत का रहा... उस तरफ समसान रहा... वहां मुर्दा जलत रहे... बस... और कभी कोई न जात रहा... भूत-परेत भी समझदार थे... कोऊ का तंग न करे थे. इधर न आत रहे... जब प्लांट बने तो जमीन से बेदखली भई, तभी से बस साब... गांव वाले ही न ऊजरे बल्कि भूत-परेत भी बेघर हो गये... गांव वारों को हर्जाना मिल गवा पर भूत-परेत को सरकार कैसे हर्जाना दे... वो अपना हर्जाना खुद वसूल रहे हैं... बलि लेकर..."

"अच्छा, कौन गांव था यहां?"

"मड़िया रास नाम रहा... बेचारा गांव ही बिला गया... लोगन ऊनी बी याद करत हैं वा को... का शानदार गांव रहा... वा की मैय्यत उठ गई..."

सिन्हा को लगा उनकी कलम रुक गयी है. फूलो, गांव का बखान उसी तरह कर रहा था मानो कोई दिवंगत हुए महापुरुष या संत को याद कर रहा हो.

"मड़िया रास," सिन्हा साब बुदबुदाये, "अच्छा नाम है. क्या मतलब इसका..."

"अब साब हम का बतायें... आप तो पढ़ा-लिखा बहुत है... मड़िया के माने झोंपड़ और रास माने मस्ती... मस्ती परकार-परकार की होत है.... शरीर वारी और मन वारी... ई गांव दोनों मसतियों का झोपड़ रहा.... आदमियों के लिए और भूत-परेत के लिए भी... ऐहिन से ई का नाम परा मड़िया रास..."

"अच्छा समझा..." सिन्हा अनायास प्रभावित हुए, "हां, अब बताओ वेदू राम कैसे मरा?"

"हमें का मालूम... वो साब हल्ला मचा तो गये—देखा वेदू राम मरा पड़ा है चिमनी के नीचे... लोग कहिन रहे ऊपर से गिर पड़ा..."

"ऊपर कौन-कौन थे...?"

"नाहीं मालूम..."

"वेदू राम चिमनी पर काम नहीं करता था?"

"हा साब... बताये रहेन न कि वा को मंटोरबाई बुलाय रही... मनटोर बाई की पुकार में तब भी बड़ा दम रहा... अच्छे-अच्छे खिंचकर आ जा रहे... वा बोल के नाही पुकारत रही बल्कि अंखियों से बुलात रही..."

बगल में कौशल अभी तक बैठा ध्यान से फूलो का बयान सुन रहा था. बात को एकाएक थमा देख उसने प्रकरण की बागडोर संभाली. "सर... मे आई इंटरप्ट..."

"हूं..."—सोचते हुए सिन्हा ने कहा.

"सर, ऐसा है कि फूलो यहां का ही रहनेवाला आदिवासी है. यहां प्रोजेक्ट में अधिकांश वर्कर ऐसे हैं जिनकी जमीन हमने प्रोजेक्ट के लिए अक्वायर की थी... यहां पूरा गांव था... ये गांव वाले काफी अंधविश्वासी हैं. इसलिए तरह-तरह की कहानियां प्रचलित हैं..."

"आई नो मिस्टर कौशल," सिन्हा ने कहा, "इन कहानियों का इंक्वायरी से सीधा संबंध नहीं है पर जिंदगी से है... और मुझे ऐसे भटकाव से परहेज नहीं है... मैं स्वयं चार-पांच प्रोजेक्ट्स के लिए लैंड एक्वीजीशन का काम कर चुका हूं अपने कैरियर में..."

एकाएक उन्होंने कलम रख दी और लंबी सांस लेकर बोले, "हां तो मिस्टर कौशल आप क्या कह रहे थे...?"

"साब, मैं बता रहा था वहां के लोगों में बहुत पिछड़ापन है. कभी-कभी तो बड़ी मुश्किल हो जाती है..."

"मंटोरबाई के बारे में क्या जानते हो?"

"सुना है, वह इस गांव की पतुरिया थी... पतुरिया तो खैर यहां की कई औरतें होती हैं... इनकी कोई वैल्यूज नहीं...सेक्स की कोई मर्यादा नहीं... यहां के लोग काफी पिछड़े और गरीब हैं. दरिद्रता के कारण अपना शोषण भी होने देते हैं. इनकी जरूरतें ही इनके शरीर और सोचने को दिशा देती हैं... जहां जरा जरूरत पूरी होती दिखी, वहीं लुढ़क गए..."

"अच्छा..."

"मनटोरबाई की कहानी इन्हीं से सुनी है. जहां चिमनी की साइट है, वहां पहले कुआं था... उसी कुएं में कूदकर मनटोरबाई ने आत्महत्या की थी. वेदू राम अक्सर यहां चिमनी के नीचे आया करता था और कहा करता था... यहीं कुएं की जगत पर बैठकर मैं खाना खाता था... यहीं मंटोरबाई खाना लाती थी... दिनभर मेहनत करके कुएं से पानी खींचकर खेत सींचता... खेतों में काम करता और फिर मंटोरबाई की लाई रोटी भी यहीं खाता... अब न तो कुआं रहा और न ही उसके खेत... बाद में भी अक्सर वह लंच के समय वर्कशॉप से निकलकर यहां चिमनी के पास आ बैठता... लोग उसे झक्की समझते थे. जो उसके अतीत से परिचित थे; वे उससे सहानुभूति रखते थे..."

"क्या अतीत था उसका?"

सिन्हा ने जिस तरह पूछा, उससे कौशल आश्वस्त हो गया. वह समझ गया कि प्रसंग जांच की औपचारिकताओं से बाहर आ गया है. उसने भी सहज होकर खुले ढंग से कहानी आगे बढ़ाई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''अतीत तो दोनों का ही बिगड़ा हुआ था... कहते हैं वेदूराम अपराध जगत में सक्रिय था और मनटोरबाई नाचने-गाने में... वेदूराम था तो इस गांव का पर उसका कार्यक्षेत्र यहां से दूर शहर था... वहीं मंटोरबाई अपना धंधा करती थी... कुछ ऐसा हुआ कि वेदू राम और मंटोरबाई आपस में एक-दूसरे से बंध गये... वेदू ने चाहा कि वह नाचना छोड़ दे... पर मंटोर की अपनी मजबूरियां थीं. एक बार कहते हैं वेदू ने मंटोर बाई की टांग पर तलवार से वार कर दिया गुस्से में और कहा कि जिन टांगों से तू नाचती है उन्हें काट दूंगा ताकि न रहे बांस और न बजे बांसुरी. इसलिए भी काटना चाहूंगा ताकि इन पैरों से चलकर तू मुझसे दूर न जा सके. कहते हैं उस हादसे के पश्चात वाकई मंटोर ने पेशा छोड़ दिया और वेदू के साथ हो ली. यद्यपि वह थोड़ा लंगड़ाने लगी थी. मड़िया रास गांव में आकर वेदू ने अपनी जमीन संभाल ली और मनटोरबाई ने उसकी गृहस्थी... आराम से गुजर रही थी... मंटोरबाई की तान और नाच गांव में मशहूर था... उसकी आवाज सभी का मन तोड़ देती थी... इसलिए लोग इसे नाम के अनुकूल मनटोर बाई कहते थे... पर जैसा कि होता है, दिन एक जैसे नहीं होते. मंटोरबाई अपने कलंकित अतीत को भुलाकर वेदू के प्रति समर्पित थी.''

सिन्हा मन ही मन कहीं गहराई में उतर रहे थे. उन्हें अपने अतीत का कुछ धुंधला अंश नजर आने लगा था. उनकी मुद्रा से स्पष्ट था कि वे कहानी में भाव-विभोर हैं. कौशल का उत्साह बढ़ने लगा. सिन्हा के अंतर्मन में कहानी धंसती जा रही थी. उन्हें जवानी के दिन याद आ रहे थे. तब वे बस्तर की एक रिमोट साइट पर पोस्टेड थे... प्रोजेक्ट का काम शुरू हो रहा था और एक मजदूरनी फुलवा उनका खाना लेकर साइट पर आया करती थी... एकाएक स्मृतियां बस्तर के वनों की तरह हरिया उठीं... फुलवा को लेकर कमजोरी के कई निजी क्षण आये थे. कैरियर में यह अस्वाभाविक नहीं था. घर और घरवालों से दूर जंगल के कैंप में कमजोर पड़ जाना उन्हें अन्यथा नहीं लगता था. घने पेड़ की छाया में एकाकी बोझ से दबे वे फुलवा का इंतजार अनायास करते थे. सुबह-शाम खाना खाते और कभी-कभार फुलवा को भी चख लेते... फुलवा का स्वाद अभी तक नहीं भूले थे, यद्यपि वर्षों के अंतराल ने उसे फीका अवश्य कर दिया था...

कौशल ने बात जारी रखी, ''फिर साब कुछ ऐसा हुआ कि वेदू के पुराने बदचलन साथी उसके गांव आने लगे... उसके साथ ठहरने लगे... उनकी हरकतें वेदू को उकसाने लगीं... मंटोरबाई का बदला हुआ स्वरूप भी उन्हें खटक रहा था. वेदू के घर आकर वे लोग पुनः मंटोरबाई से पुरानी अपेक्षाएं दोहराने लगते... फिर इस प्रोजेक्ट का सर्वे शुरू हुआ. जमीन की बेदखली का मामला उठा... वेदू के एक खूंखार साथी नत्थू ने उसे उकसाया कि वह लैंड आफीसर के पास एक रात के लिए मंटोरबाई का भेज दे ताकि जमीन की चौगुनी कीमत मिल जाए... फिर शहर में शराब का धंधा करके लाखों कमाएंगे... मंटोरबाई जैसी सैकड़ों शहरी पतुरियां अपनी कांख में होंगी—मंटोरबाई को बेच डालने का भी षड्यंत्र था. वेदू का दिमाग भी बहकने लगा. नत्थू स्वयं मंटोरबाई को पुराने रूप में निचोड़ना चाहता था... यही कशमकश शुरू हुई... मंटोरबाई अवाक थी... कि जिस आदमी ने उसे अपनाया... पेशा छुड़वाया... उसे लंगड़ा बनाया... अब वही विश्वासघात कर रहा है. तनातनी बढ़ती गई और उनमें झगड़ा हुआ... मारपीट होने लगी. वेदू और नत्थू के जुल्म उस पर बढ़ गए. जब बरदाश्त न हुआ तो एक दिन वह अपने बच्चे के साथ कुएं में कूद गयी... सारा खेल खत्म हो गया पर वेदू को पछतावा होने लगा...''

''फिर क्या हुआ?''

''ये गांववाले ही बताते हैं कि जहां अपनी चिमनी है, वहीं कुआं था जिसमें मंटोरबाई कूदी थी. वेदू को जमीन की कीमत और प्रोजेक्ट में काम मिला... उसकी तरह और भी थे... सबको समझाया गया कि उनके आंगन में अब प्लांट लगेगा जिससे पूरे देश में दूर-दूर तक खुशहाली आयेगी... पर वेदू जैसे लोगों को इससे क्या लेना-देना... वह तो समझता था कि वही कुआं उलटा होकर चिमनी के रूप में बाहर आ गया है. बस चिमनी को देखकर उसे दहशत हो जाती थी... मानो कोई विषैला सांप बांबी से फन फैलाकर फुंफकार रहा हो. वह कुछ-कुछ पगला-सा गया था. चिमनी को देखकर बड़बड़ाता था... अक्सर वहीं मंडराता था. लोगों से कहता था चिमनी तो कुएं की गहराई सी ऊंची है. इसमें मंटोरबाई रहती है. वो देखो ऊपर काम कर रही है. मुझे बुला रही है. मैं उसके पास जाऊंगा. माफी मांगूंगा... अक्सर चिमनी की वह पूजा करता. हाथ जोड़ता... नशा भी बहुत करने लगा था...''

''समझा...'' सिन्हा अभी भी खोये हुए थे.

''लोग कहते हैं कि वेदू राम चिमनी से गिरकर नहीं अपितु उसी कुएं में कूदकर मरा है जिसमें कभी मंटोरबाई कूदी थी. पर सर यह तो यहां की मनगढ़ंत आंचलिक किस्साई है... इंक्वायरी के लिए अगले गवाह को बुलाऊं?'' कौशल ने अपनी बात को मुकाम पर ठहराते हुए पूछा.

''क्या टाइम हुआ?'' सिन्हा अभी बस्तर के जंगलों में उलझे थे. फुलवा की झलकियां उन्हें याद आ रहीं थीं. उस दिन फुलवा की आंखों में आंसू थे... वही कभी कुछ नहीं बोलती थी. एकाएक आंसू देखकर वे असमंजस में पड़ गए थे... कुछ समझे भी पर समझकर भी नासमझ बने रहे... दूसरे दिन फुलवा गायब थी... नहीं आयी... उसका कोई पता न चला. किसी ने कहा भी कि लगता है, कोई भगा ले गया या जंगली जानवर खा गया. उन्हें उस वक्त ज्यादा सोचने की फुरसत नहीं थी क्योंकि फुलवा की जगह उनकी सेवा में दूसरी मजदूरनी भेजी जाने लगी थी.

''एक बज रहा है.'' सहसा कौशल को कुछ याद आया, ''लंच का टाइम हो गया... साब आपके लंच का अरेंजमेंट कैंटीन में है... पास ही है... चलिए...''

आसपास काम करती मजदूरनियों में किसी को खोजती सिन्हा की आंखें जैसे थक गई थीं. उन्हें स्वयं महसूस हो रहा था कि उन पर अतीत का भूत सवार हो रहा है. ऐसे प्रेत के समक्ष वे विवश हो जाते हैं. दबाव के वशीभूत थे वे और कहना चाह रहे थे, लंच यहीं बुलवा लो... कुएं के पास, आई मीन चिमनी के नीचे ही खायेंगे... पर प्रत्यक्ष में वे चिमनी की ओर देखकर सहम गए. उन्हें एकाएक महसूस हुआ कि कहीं चिमनी झुककर डस न ले. तेजी से मुड़कर चलने लगे वे ताकि एक सौ पच्चीस मीटर ऊंची चिमनी से कम से कम एक सौ तीस मीटर दूर हो जाएं.

सहसा उनका पैर जमीन पर आड़ी बिछी चिमनी की छाया पर पड़ा. वे बुरी तरह समपका गए—मानो जहरीले सांप पर पांव पड़ गया हो. यद्यपि वे चिमनी से काफी दूर थे लेकिन छाया के रूप में चिमनी लगातार अजगर जैसी लंबी होकर उनका पीछा किए जा रही थी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मस्वीकृति

हत्या और मुक्ति

डेविड मार्शल

जिम चुपचाप कमरे में घुसा. मेरी उसकी पत्नी आराम से सो रही थी. उसने एक मोटा तौलिया लिया और उसे हाथों में लपेट कर धीरे से मेरी की गरदन पर रखा. एक जोर का दबाव... और मेरी निष्प्राण थी.

वह जिस तरह छिप कर आया था, उसी तरह गली में छिपता-छिपता, सुपर सिनेमा में पहुंचा, जहां आपरेटर था. अपने प्रोजेक्शन-रूम में पहुंचकर, वह अपने दोस्त हैरिस की याद करने लगा. उस हैरिस से, जिसकी पत्नी जून से वह प्रेम करता था और जिसके साथ विवाह करने के लिए आजाद होने के लिए उसने मेरी को जान से मारा था. उसे पूरी आशा थी कि समझाने-बुझाने पर, उसका बचपन का दोस्त अपनी पत्नी जून को, उसकी ख़ातिर छोड़ने को तैयार हो जायेगा. उसने कई बार कहा था कि जून से वह तंग आ गया है.

मेरी की हत्या करने में उसे पांच मिनट भी नहीं लगे थे. फिल्म इस दौरान अपने

आप चलती रही थी. पुलिस कभी उस पर संदेह नहीं कर पायेगी. मेरी की हत्या की योजना उसने काफी सोचविचार कर बनायी थी.

मध्यांतर होते ही उसने हैरिस को फोन किया कि वह पौने छह बजे, दूसरा खेल शुरू होने से पहले, उससे अवश्य मिले. और जब पौने छह बजे हैरिस उससे मिला तो जिम ने उसके हाथों में उसकी प्रिय सिगरेट थमाते हुए कहा, "मुझे तुमसे एक ज़रूरी बात करनी है, दोस्त... जून के बारे में!" वह काफ़ी गंभीर था.

हैरिस का मुंह, सहसा, पीला पड़ गया. उसने कांपते स्वर में कहा, "तो आखिर तुम्हें सब कुछ मालूम पड़ ही गया. ख़ैर, यह दोनों बातें तुमसे कब तक छिपी रहती?"

"कौन-सी दोनों बातें?' चकित जिम ने पूछा.

"यही कि मैं काफी दिनों से तुम्हारी पत्नी मेरी से प्रेम करता चला आ रहा हूं और कहा...

"हत्या किसकी? किसने की? सबूत क्या है?" घबराये जिम ने पूछा.

"तुम मेरे जिगरी दोस्त हो, इसलिए तुम पर विश्वास करके सिर्फ़ तुम्हें ही बता रहा हूं कि मैंने आज सुबह गला घोंटकर जून की हत्या कर दी."

जिम हंसने लगा. बोला, "यह बात तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बतायी, दोस्त! मैं मेरी को तुम्हारे हवाले करता हूं. अभी मेरे घर जाकर उसे अपने साथ अपने घर ले जाओ." □

लकी नंबर

महबूब

शहर के चोरों में शौकत ने अपनी जगह सबसे अलग बना रखी थी. दूसरे चोर तो उसे 'उस्तादों के उस्ताद' मानते ही थे, पुलिस तक उसकी इज्जत करती थी, कारण पिछले बीस साल से चोरी का धंधा करने के बावजूद वह एक बार भी पुलिस कें चंगुल में नहीं आया था.

शौकत खुद अपने को 'लकी नंबर' कहा करता था.

लेकिन, बीस साल की अटूट कामयाबी के बाद, उसकी खुशकिस्मती का दौर अचानक चुक गया.

यह शुरूआत हुई थी, जनवरी की एक रात को. अपने साजो-समान के साथ एक छोटी-सी दुकान की नगदी लूटने के लिए अपने घर से बाहर निकला. दो हफ्तों से उस दूकान में कई बार आकर उसने खुद और नौकरों से दूकान के मालिक के बारे में कुछ गोपनीय बातें जानकर, चोरी की योजना बनायी थी. और यह योजना तब सफल हो गयी, जब वह दूकान की सेफ तोड़कर उसमें से तीन हज़ार से ज्यादा रुपये निकालने में कामयाब हो गया.

दूकान के मालिक को अपने नुकसान का पता सेफ खोलते ही चल गया. पुलिस ने चोर की उंगलियों के छाप अन्य अपराधियों की छापों से मिलाये, पर छाप किसी से न मिली. शौकत की छाप से तो मिलन का सवाल ही न था, क्योंकि उसकी उंगलियों की छाप पुलिस में दर्ज नहीं थी.

मगर दोपहर तक शौकत को पुलिस ने उसके घर में गिरफ्तार कर लिया. उसके पास से चोरी की गयी रकम भी पूरी की पूरी मिल गयी.

अब सुनिये, कैसे, क्या हुआ? जिस सब-इंस्पैक्टर को यह मामला सौंपा गया था, उसे सेफ के पास एक रूमाल पड़ा मिला था, जिसे लाकर उसने पुलिस की वैज्ञानिक प्रयोगशाला को दे दिया था. रूमाल पर किसी की उंगलियों की स्पष्ट छाप नहीं थी, लेकिन 'अल्ट्रा वायलेट लैंप' के नीचे रूमाल को रखने पर, रूमाल पर अंकित दो संख्याएं दिखाई पड़ीं. वह अदृश्य स्याही से लिखी संख्याएं थीं, जो शहर की लांड्रियां अपने ग्राहकों के कपड़ों पर पहचान के लिए लगाती हैं. पुलिस के पास ऐसी सब संख्याओं को लगाने वाली लांड्रियों की सूची थी.

इस सूची से लांड्री का पता लगाकर सब-इंस्पैक्टर वहां पहुंचा और उसने इस खास संख्यावाले ग्राहक का नाम और पता मालूम किया.

इस नाम और पते के सहारे वह सीधा शौकत के घर पहुंचा. वहां उसे शौकत भी मिल गया, और वह रकम भी मिल गयी जो उसने दूकान से चुरायी थी. □

जीवन में बड़े से बड़ा अपराध करने के बाद भी आप दुनिया भर ही निगाह में अपराधी भले ही न हों... पर क्या यह भी संभव है कि आप अपनी निगाह में भी अपराधी न रहें...? प्रस्तुत हैं, विश्व प्रसिद्ध रचनाकारों की श्रेष्ठ लघुकथाएं...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चचाजान

क्वोक चियो हो

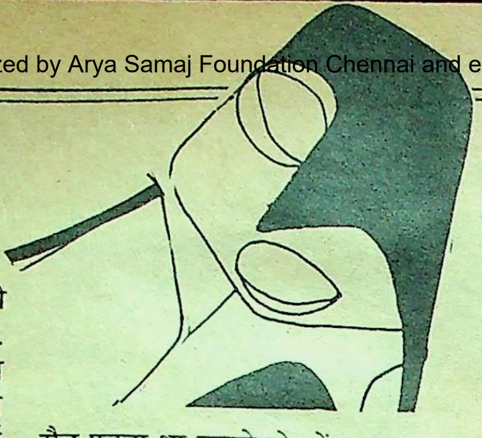

वे मेरे चाचा थे और दूसरे लोगों की भांति मैं भी उन्हें चचाजान कहता था. नायाब इंसान थे चचाजान. मैंने कभी उन्हें दुखी या परेशान नहीं देखा. वे हमेशा मुस्कराते रहते थे. असल में उन्हें कोई चिंता थी ही नहीं. न बीवी, न बच्चे. शहर के सबसे बड़े जनरल स्टोर्स के मालिक थे. रोज गल्ले में ढेर सारे नोट और सिक्के जमा हो जाते थे.

उनकी एक निराली आदत थी. खजांची के पास सौ सिंगापुरी डॉलर का नोट देखते ही वह फौरन उसकी ओर लपकते और उसे सौ डॉलरों के अपने संग्रह में रख लेते. सौ डॉलर के नोट जमा करना उनका शौक बन गया था.

कभी-कभी कोई नकली भी आ जाता था. मगर उसे उनके संग्रह में स्थान नहीं मिलता था. वे उसे अपने दोस्तों की महफिल में सिगार जलाने के काम में लाते. उनकी इस अजीबोगरीब ऐयाशी का बड़ा रौब पड़ता था उनके दोस्तों पर.

सौ डॉलर के नोट जमा करने के अलावा चचाजान को छोटे सिक्कों को जमा करने का भी शौक था. मैंने उनके पास दुनिया के प्रायः सभी देशों के छोटे सिक्के देखे. धीरे-धीरे, इन सिक्कों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि उन्हें रखने के लिए कई बोरे खरीदे चचाजान ने.

एक दिन, बैठे-बैठे उनके दिमाग में एक 'आइडिया' आया. उन्होंने गोंद से सिक्कों को जोड़-जोड़कर, अजीब-अजीब खिलौने बनाने शुरू किये. एक बार सूझा तो दुनिया के सब बड़े पुलों के नमूनों का निर्माण इन सिक्कों से कर डाला. फिर सिक्कों से बने इन खिलौनों के प्रदर्शन के लिए कई शोकेस बने. दूर-दूर से लोग उन्हें देखने आने लगे.

कुछ दिन बाद, एक विदेशी व्यापारी ने चचाजान के स्टोर्स के मुकाबले एक नया बड़ा स्टोर्स शुरू किया, जिसने एक साल के अंदर चचाजान के स्टोर्स का भट्ठा बैठा दिया, और उन्हें उसे बंद करना पड़ा. चचाजान की कमाई बंद हो गयी. उनके पास रह गये सिर्फ सिक्कों से बने नायाब खिलौने. मगर उन्हें कोई किसी भी कीमत पर खरीदने को तैयार न था. खरीदारों की खोज के लिए रही-सही रकम खर्च कर दुनिया का दौरा किया, लेकिन बेकार.

सब ओर से निराश होकर चचाजान अपने प्रतिद्वंद्वी के स्टोर्स में गये, यह जानने के लिए कि उसमें ऐसी क्या खूबियां हैं, जो वह इतना चल रहा है. सौ डॉलर का एक नोट देकर उन्होंने कुछ सामान भी खरीदा. लेकिन उनके दुर्भाग्य से वह नोट उसी किस्म का निकला, जिससे वे कभी दोस्तों के सामने सिगार जलाया करते थे. प्रतिद्वंद्वी स्टोर्स के मालिक ने जरा भी देर न की और उन्हें पुलिस के सिपुर्द करके ही दम लिया. इस घटना से उन्हें इतना आघात पहुंचा कि वे हवालात में ही चल बसे. आज मैं उनके नायाब खिलौनों का मालिक हूं. चाहिए, आपको कुछ खिलौने? □

ब्लैकमेल

डोनाल्ड वाटसन

कितना शानदार लग रहा था, वह बजरा नदी के किनारे खड़ा हुआ! ...इतना बड़ा बजरा मैंने कभी नहीं देखा था. मैं चुपचाप किनारे से आगे बढ़कर बजरे के डेक पर आ गया. वहां एक सीढ़ी के सहारे नीचे आया. सामने एक दरवाजा था, जिसे खोलकर मैं आधुनिक फर्नीचर तथा सुख-साधनों से युक्त छोटी-सी केबिन में दाखिल हुआ. पश्चिम धुनों की ताल पर एक लड़की आंखें बंद किये झूम रही थी. उसके हाथ में शराब का एक प्याला था, जो आधा खत्म हो चुका था.

मैंने उससे पूछा, "कौन हो तुम?"

"देखिये, मुझे गलत न समझिये. मैं पास ही अपनी नाव में तैर रही थी और थककर यहां थोड़ी देर आराम करने चली आयी. बजरा आपका है? बड़ा ही खूबसूरत और आरामदेह बजरा है? आपकी पसंद की दाद देती हूं."

फर्श पर एक ब्रीफकेस पड़ा था.मैंने अपने बैग में रखे चाबियों के एक बड़े गुच्छे की चाबियों से ब्रीफकेस को खोलना चाहा. एक चाबी से, ब्रीफकेस खुल गया. एक कीमती नैकलेस दिखाई दिया.

लड़की मुस्कराती हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गयी और कहने लगी—"कितना प्यारा नैकलेस है! मगर आप यकीन मानें, मैं इसे लेने नहीं आयी थी. मुझे उसके बारे में कुछ पता भी नहीं था... मगर, नैकलेस से बेहतर चीजें भी तो हैं, दुनिया में." कहकर, उसने मेरे गले में हाथ डाल दिये, और अपना ब्लाउज खोलकर, मुझे अपनी ओर खींचने लगी.

...तभी फ्लैशलाइट मेरी आंखों में पड़ी. बाहर एक फोटोग्राफर खड़ा था. मैंने लड़की से कहा, "तो, यह चाल थी तुम्हारी!"

"उसकी चाल-वाल कोई नहीं है, मिस्टर! आप इसे ब्लैकमेल समझ रहे होंगे मगर आप जैसे लोगों के संदर्भ में तो इसे सामाजिक सेवा माना जाना चाहिए." फोटोग्राफर बोला. मैं चुपचाप उसे देखता रहा. वह कहता रहा, "आप जिंदगी में इतना आगे आये. कैसे? नेताओं और मिनिस्टरों को ब्लैकमेल करके! इस फोटो से मैं सारी लूटी रकम एक झटके में ले लूंगा."

"ब्लैकमेल एक अपराध है, मिस्टर! और मेरा पेशा ही है, अपराधियों को पकड़ना यकीन न हो, तो यह देखिये," कहकर मैंने उसे अपना बैज दिखाया. उसे देखकर, फोटोग्राफर का चेहरा पीला पड़ गया. उसने लड़की से कहा, "सब गड़बड़ हो गया. यह पुलिस इंस्पैक्टर है."

मैंने कहा, "हमें काफी दिनों से इस बजरे के मालिक 'जो' की तलाश थी. अपने कई गलत किस्म के धंधों के अलावा वह नकली गहने बनाने और बेचने का धंधा भी करता है. मैं इसका सबूत लेने मुझे मिल गया."

केबिन की पूरी तलाशी लेकर, जब मैं बाहर आ रहा था तो सोच रहा था कि जब वह निगेटिव डेवलप होगा तो उस फोटो को देखकर, मेरी बीबी क्या कहेगी? मेरे बड़े अफसर क्या कहेंगे? वैसे, लड़की बुरी नहीं थी और वह कमबख्त फोटोग्राफर जल्दी न करता, तो उसका एक मीठा चुंबन तो मिल ही जाता!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुलाबों को समर्पित जीवन

पीटर लैंग

घर के बाहर बगीचे में गुलाबों के रंगबिरंगे फूल खिले थे. बस, उन्हें देखते ही मार्टिना ने फैसला कर लिया था कि उन्हें यही घर खरीदना है. वर्षों से उसकी दिली ख्वाहिश थी कि वह किसी ऐसे बंगले में रहे, जिसके साथ बड़ा बगीचा जुड़ा हो ओर उस बगीचे में गुलाब के फूल खिले हों.

उसके पति डेविड ने आगे बढ़कर बंगले का दरवाजा खोला और ड्राइंगरूम की घंटी बजायी. आधा मिनट बाद, एक अधेड़ महिला, जिसकी आंखें रोने से सूजी हुई थीं, उन दोनों के सामने आकर खड़ी हो गयी, "आप शायद बंगला देखने आये हैं. शौक से, आराम से देखिये." और, यह कहकर वह उनके साथ हो ली.

बंगले के दूसरे कमरे भी ड्राइंगरूम की तरह बड़े और साफ-सुथरे थे. दीवारों पर पेंट ताजा लगा था. फर्नीचर भी नया था, और करीने से लगा था. कमरे हवादार थे और उनमें रोशनी भी खूब आती थी. मगर मार्टिना को सबसे ज्यादा खुशी यह देखकर थी कि उसकी भांति बंगले की मालकिन को भी गुलाबों से बड़ा प्रेम था. बंगले के बगीचे में गुलाबों की ही प्रधानता थी. गहरे लाल रंग के गुलाब, जो उसे सबसे ज्यादा भाते थे. यूं सारा बंगला बड़ा खुशनुमा था लेकिन उसका सबसे ज्यादा खुशनुमा हिस्सा था, उसका बगीचा. पीछे की तरफ, सामने की सड़क पर आने-जाने वाले लोगो की निगाहों से परे एक सायेदार जगह थी जहां बैठ कर दोनों बगीचे के प्राकृतिक सौंदर्य का उपभोग कर सकते थे.

खटकने वाली सिर्फ एक ही चीज थी—एक पेड़ के नीचे जमा खाद का ढेर.

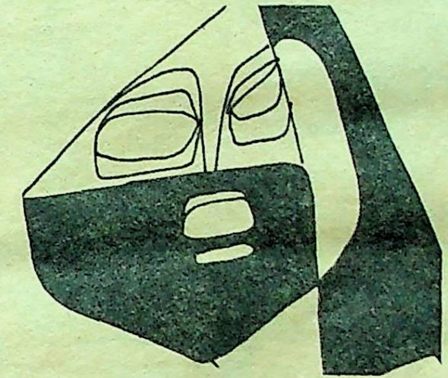

पत्नी ने कहा, "ऐसी चीजों को छिपाकर रखने के लिए एक स्टोररूम बनाना पड़ेगा."

अचानक मार्टिना ने मकान-मालकिन से कहा, "यह बंगला हमें पसंद है. हमें आशा है कि हय यहां उतने ही सुखी रहेंगे, जितने आप..." वह चुप हो गयी. उसे मालूम न था कि मकान-मालकिन विवाहित हैं या नहीं और बंगले में उनके साथ कौन रहता आया है?

"शुक्रिया," मकान-मालकिन ने रुंधे कंठ से कहा, "मैं और मेरे पति यहां बडे सुख से रहे."

"गुलाबों पर आपने काफ़ी मेहनत की है," मार्टिना ने कहा.

"इसका सारा श्रेय मेरे पति को जाता है. उनका सारा जीवन गुलाबों के लिए समर्पित था. इस समय भी वे..." कहकर वे बीच में ही चुप हो गयीं. भावावेश के कारण, आगे उनसे बोला नहीं गया. उनके नेत्र सजल हो आये थे, और वे हिचकियां लेने लगी थीं.

बंगले से बाहर आते समय, दोनों की निगाह एक बार फिर खाद के ढेर पर पड़ी. खाद का वह ढेर, जिसमें मिले मकान-मालकिन के पति के अवशेष जो इस समय भी खाद के रूप में गुलाबों को फलने-फूलने में मदद दे रहे थे. □

डर

थॉमस मस्तर

सारे घर में शोर छाया हुआ था. बाहर से आने वाला शोर, और घर में चल रहा शोर. पहली रात, जब उस लड़की ने देखा कि उसके दरवाजे का ताला नहीं लगता तो उसने फर्नीचर के सहारे उसे बंद कर दिया था. सीढ़ियों पर काफ़ी लोग आ-जा रहे थे.

लड़की को याद आया, ऊपर रहने वाली औरत देखने में कितनी डरावनी है. घर के जिस भाग में वह रहती थी, उस भाग में चीत्कार, दबा हुआ संगीत और लोगों के शरीरों के घर्षण की मिली-जुली अजीब-सी खौफनाक आवाज़ सुनाई दे रही थी. औरत का शौहर हर दूसरे शनिवार को आता था, और उसके पास आने वाले दूसरे पुरुषों जैसा ही लगता था.

लेकिन आदमियों की इस भीड़ में एक आदमी अलग दिखाई देता था. लड़ाकू-सा दिखाई देनेवाला और हमेशा सिगार पीने वाला वह आदमी आधी रात को आकर औरत का दरवाजा खटखटाया करता था. जब वह लड़की डर के मारे अपना दरवाजा बंद कर लेती थी.

एक रात किसी ने ऊपर रहनेवाली औरत को जान से मार डाला, ऐसा उस लड़की ने सुना. यह भी सुना कि वह बहुत चिल्लायी थी, "बचाओ, बचाओ," मगर कोई उसे बचाने के लिए नहीं आया था. मुहल्ले में इस दुर्घटना की कोई चर्चा नहीं हुई. मगर लड़की के मन में डर बैठने लगा. एक ख़ास किस्म का जमा हुआ डर. परीक्षा से पहली रात को उसका डर और चिंता इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि उसने औरत का दरवाजा खटखटाया था. दरवाजे पर ढीला ताला लगा था. दरवाजा आसानी से खुल गया. अंदर सब कुछ शांत था, सिर्फ चिड़ियां चहचहा रही थीं. उनके पिंजड़े में काफी दाना-पानी था. एक महीने के लायक.

तीन दिन बाद, उसके पास 500 मील से एक चिट्ठी आयी. छोटे से पत्र के साथ कुछ नोट थे और प्रार्थना की गयी थी कि चिड़ियों के लिए दाना खरीदकर उन्हें खिलाती रहें और पत्र तथा लिफाफे को जला डालें. उसने पत्र से अनुमान लगाया कि औरत शायद अभी तक जीवित थी. मगर, वह कहां थी? क्या उस डरावने आदमी के पास, जो आधी रात को उसका दरवाजा खटखटाता था, और सिगार का धुआं उड़ाया करता था.

फिर नींद की गोलियों के नशे में उसे यह एहसास हुआ कि सिर्फ़ वही उस औरत के रहस्य को जानती है. इस एहसाह ने उसके डर को और ज्यादा बढ़ा दिया.

ऊपरी भाग से चिड़ियों की चहचहाट सुनायी दे रही थी. जिस दिन, उसकी परीक्षाएं समाप्त हुईं, उसने डर के मारे नींद की इतनी गोलियां खा लीं कि दो दिन तक उसकी आंखें नहीं खुलीं. जब वे खुलीं तो उसने अंधेरे में पाया कि सारे कमरे में सिगार का धुआं छाया है, और कमरे में कोई चहलकदमी कर रहा है... एक खौफनाक चीख के साथ वह फिर बेहोश हो गयी... हमेशा के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्ल बक

युद्ध की पहली चिंगारी

बात सन् 1917 की है. अमरीका तब तक प्रथम विश्व-युद्ध में नहीं कूदा था. कोरिया-वासी युल-हान रोज़ अखबार पढ़ता और रोज यह जानकर मन ही मन खुश होता कि अमरीका ने अभी तक अपने को महायुद्ध से अलग रखा है. वह तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति वूड्रो विल्सन को एक 'शांतिप्रिय संत' मानता था, ऐसे संत जिनके बारे में उसे पूरा यकीन था कि वे अमरीका को कभी भी युद्ध की आग में नहीं झोंकेंगे.

लेकिन उसके पिता इल-हान इस बारे में पूर्णतया आश्वस्त थे कि विल्सन इंग्लैंड के दबाव में आकर तथा जर्मनी की 'विल्सन डरपोक हैं' की व्यंग्योक्तियों से तंग आकर, जर्मनों के खिलाफ लड़ने के लिए मजबूर हो जायेंगे. इतना ही नहीं, उनका यह भी विश्वास था कि अमरीका के लड़ाई में शामिल हो जाने के बावजूद, विजय जर्मनी की ही होगी, कारण 'जर्मनी अजेय है!'

इस बात को लेकर अक्सर पिता-पुत्र में नरम किस्म का वाक्-युद्ध आरंभ हो जाता था. युल हान अपने पिता से कहता, "मुझे आपकी दलीलों पर आश्चर्य होता है. आप देखकर भी यह अनदेखा कर रहे हैं कि जर्मनी का युद्ध सरासर अन्यायपूर्ण और ईसाई-धर्म के सिद्धांतों के विपरीत है. ऊपर, स्वर्ग में बैठा भगवान कभी कैसर-रूपी शैतान की जर्मन सेना को युद्ध में विजयी नहीं होने देगा. रहा विल्सन का सवाल तो उनके लड़ने का फैसला करने की नौबत भी नहीं आयेगी."

पिता पर अपने पुत्र की इस दलील का कोई प्रभाव नहीं होता था. वह पूछता, "भगवान क्या सिर्फ विल्सन का ही है, कैसर का नहीं है? और यह बताओ, क्या इंग्लैंड और अमरीका ने अन्यायपूर्ण युद्ध नहीं लड़े हैं?"

एक दिन यह वाकयुद्ध शुरू हुआ तो उसने बंद होने का नाम ही न लिया. भला हो, घर की नौकरानी का कि उसने आते ही इस युद्ध को भंग कर दिया. उसने युल-हान को बताया कि उसकी पत्नी इंदक ने एक पुत्री को जन्म दिया है.

यह शुभ समाचार सुनकर युल-हान युद्ध और विल्सन दोनों को भूल गया था. यह उसकी दूसरी संतान थी और वह इस बार पुत्री की ही प्रतीक्षा कर रहा था. वह सोच रहा था कि उसका बेटा लि-यांग अपनी बहन को देखकर कितना खुश होगा.

लेकिन जब वह पत्नी के पास अपनी पुत्री को देखने गया तो उसे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि उसकी पत्नी पुत्री के जन्म से प्रसन्न नहीं है. वह खिन्न स्वर में कहने लगी, "लड़ाई के बादल छाये हैं और लड़ाई के छिड़ते ही, महंगाई भी बढ़ जायेगी. ऐसे में हम दूसरे बच्चे का ढंग से पालन कैसे कर पायेंगे?" यह थी उसकी चिंता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीष्म ऋतु बीतने के बाद शीत ऋतु आयी. लड़ाई अभी तक चल रही थी. एक दिन, जब युल-हान स्कूल से लौटा तो उसने अपनी मां को दरवाजे पर खड़े देखा. उसे देखते ही मां ने कहा, "अपने बाप को जाकर देखो. मालूम नहीं, उन्हें क्या हो गया है? वे रोये ही जा रहे हैं. सुबह से उनके आंसू नहीं थमे हैं. जाकर देखो, क्या बात है?"

बाप के कमरे में जाकर युल-हान ने देखा कि वे छाती से अखबार लगाये, कमरे में चक्कर लगा रहे हैं. बीच-बीच में उनके रोने की आवाज और सुबकियां सुनायी दे जाती थीं. युल-हान ने उनके पास जाकर पूछा, "क्या बात है, पिताजी! आप रो क्यों रहे हैं?"

"यह देखो, यह देखो, विल्सन ने अपने चौदह-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की है. इसमें तीसरे सूत्र को पढ़ो— 'हर देश के निवासियों को अपना मनपसंद शासक और शासन-पद्धति चुनने का अधिकार है अमरीका हर देश को उसका यह अधिकार दिलाने के लिए प्राणपण से प्रयास करेगा.' सुना, विल्सन क्या कह रहे हैं? वे हमारे ही देश की बात कर रहे हैं."

युल-हान यह सुनकर, बच्चों की भांति फूट-फूटकर रोने लगा. उसने अपने से कहा, "यह एक शुभ समाचार है, पिताजी. किंतु आप इतने अधिक उत्तेजित न हों. आराम करें. अधिक उत्तेजना आपके स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह साबित हो सकती है."

इस समाचार ने कोरिया में एक मूक क्रांति को जन्म दिया. दो-तीन दिन बाद, कुछ कोरियाई विद्यार्थियों ने अपने देश की पराधीनता के प्रतीक जापान के गवर्नर-जनरल को गोली मारने की कोशिश की. गवर्नर-जनरल तो बच गये मगर उनका एक अंग-रक्षक मारा गया. भयभीत गवर्नर-जनरल ने जापान से कई सैनिक दस्ते बुला लिये. देश की सुरक्षा भंग न हो, इसलिए पुलिस ने सब अपराधियों व क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू कर दी. मगर, कोरियावासी इन कार्रवाइयों से तनिक भी चिंतित न हुए. उन्होंने अपनी विदेशी सरकार के विरुद्ध वैसी ही जंग छेड़ दी, जैसी मित्र-राष्ट्रों ने दूसरे देशों की स्वतंत्रता के शत्रु जर्मनी के खिलाफ छेड़ रखी थी. जो कोरियावासी जर्मनों के अत्याचारों की कहानियां सुन-पढ़कर उन पर विश्वास नहीं करते थे, वे भी जापानी सेना के अत्याचारों को अपनी आंखों से देखकर उन पर विश्वास करने लगे थे. उनके लिए युद्ध जर्मनी में नहीं, उनकी गोलियों में ही हो रहा था.

एक दिन, जब दुपहर शाम में ढलने लगी तो इंदक को अचानक याद आया कि उसके पति ने आज शाम के खाने में अपनी मनपसंद मछली खाने की इच्छा व्यक्त की थी. वह फौरन मछली खरीदने बाहर निकली. अपने बेटे लि-यांग को उसने पीठ से बांध रखा था. जैसे ही वह शराब की दूकान के पास आयी, उसने देखा, दूकान का मालिक उसकी तरफ इशारा करते हुए, उसकी दूकान के बाहर खड़े जापानी सैनिकों से कुछ कह रहा है. वह कांपकर रह गयी. उसे याद आया कि उसने इस दूकान में काम करने वाले इप्पन को, जो क्रांतिकारी बन गया था, पुलिस की गिरफ्त में न आने में मदद की थी.

> **क्रांतिकारियों की सहायता करने वाली वह औरत कैसी रही होगी जिसने हर हाल में राज को राज रखा.**

इंदक का डर तब और बढ़ गया, जब उसने देखा कि शराब के नशे में धुत्त वे सब जापानी सैनिक, उसे देखकर, अश्लील इशारे करते हुए हंस रहे थे. उससे आगे नहीं चला गया और वह जहां थी, वहीं खड़ी रह गयी.

तभी, जापानी सैनिकों ने आगे बढ़कर उसे घेर लिया. बाजार के सब कोरियाई दूकानदारों ने यह दृश्य देखकर, जल्दी-जल्दी अपनी दूकानें बंद कर दीं. और लोगों ने अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लिये. बेचारी इंदक की सहायता के लिए आगे आने की हिम्मत किसी ने नहीं दिखायी.

एक जापानी सैनिक ने इंदक के दोनों हाथ उसकी पीठ में बांध दिये. और फिर अपनी राइफल के कुंदे से इंदक की पीठ पर बंधे उसके बेटे लि-यांग पर जोरदार प्रहार करते हुए पूछने लगा, "तो तू है, जो क्रांतिकारियों की सहायता करती है और उन्हें पुलिस के चंगुल से बचाती है!"

लि-यांग जोर से चीखने-चिल्लाने लगा.

इंदक ने शराब की दूकान के मालिक की ओर देखते हुए कहा, "मुझ पर रहम करो. मैं एक मां हूं और पत्नी भी."

दूकान के मालिक ने जमीन पर थूकते हुए कहा, "रहम? मैं क्यों रहम करूं तेरे साथ?"

सैनिक उसे पकड़कर पुलिस स्टेशन ले गये. उस पुलिस स्टेशन में, जहां बड़े अफसर से लेकर अदना सिपाही तक सब जापानी थे. उन्होंने लि-यांग को इंदक की पीठ से खोल दिया था और वह रोता-रोता अपनी मां के पीछे भाग रहा था.

बड़े अफसर ने इंदक को देखकर, अपने सिपाहियों से कहा, "इसे नंगा करके इसकी तलाशी लो. हो सकता है कि इसने अपने कपड़ों में कोई हथियार छिपा रखा हो."

सिपाहियों ने मिनटों में उसे पूरा नंगा कर दिया.

बड़े अफसर ने जब अपने सामने नंगी खड़ी हुई इंदक से क्रांतिकारियों के बारे में पूछा तो उसने कहा, "मैं क्रांतिकारियों के बारे में कुछ भी नहीं जानती." इस पर, अफसर का इशारा पाकर सिपाही उस पर लात-घूंसों की वर्षा करने लगे. जब वह बेहोश हो गयी, तब भी सिपाहियों ने उसे पीटना बंद नहीं किया.

...जैसे ही यह खबर गांव में फैली, डरे हुए गांववालों की समझ में नहीं आया कि क्या करना चाहिये. फिर, एक-एक, दो-दो लोग आपस में मिले और फिर इन लोगों ने एक भीड़ का रूप ले लिया और यह भीड़ पुलिस-स्टेशन की ओर बढ़ी.

भीड़ ने देखा कि इंदक अभी तक पुलिस-स्टेशन के फर्श पर नग्न और बेहोश पड़ी थी. उसने मांग की कि उसे फौरन रिहा किया जाये. अफसर ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वह भीड़ को बाहर खदेड़ दें.

लेकिन भीड़ बढ़ती गयी, बढ़ती गयी. उसके नारों का शोर भी निरंतर बढ़ता गया. अंत में पुलिस अफसर को इंदक को मुक्त करना पड़ा.

और संयोग ऐसा हुआ कि अगले दिन अमरीका ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और कोरिया ने जापान के खिलाफ.

युद्धाग्नि, जिसकी पहली चिंगारी इंदक के रूप में प्रकट हो चुकी थी, सारे कोरिया में भड़क उठी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जॉन ओ' हारा

बड़े लोग

यॉक शिडिल का उपाहार-गृह साढ़े नौ बजे के करीब खुल जाता था. उसके नियमित ग्राहक दो वर्गों में विभाजित थे. पहले वर्ग में वे ग्राहक आते थे, जो साढ़े नौ से लेकर दस बजे तक आते थे और जल्दी-जल्दी कोका-कोला के साथ नाश्ता करके, सिगार सुलगाते हुए चले जाते थे, क्योंकि उन्हें दस बजे अपने कार्यालय या कारखाने में पहुंचना होता था. शिडिल अपने रेस्तरां में जुआ खेलने या सिगार पीने की इजाजत नहीं देता था, हालांकि इस वर्ग के कुछ ग्राहक दोनों काम छिपे-छिपे या खुले-आम रेस्तरां में कर लेते थे.

दूसरे वर्ग में आते थे वे लोग, जो दस बजे के करीब आते थे और ग्यारह से बारह तक बैठते थे, क्योंकि पेशेवर लोग होने की वजह से इन्हें निश्चित समय पर कहीं नहीं पहुंचना पड़ता था. सबसे पहले आते थे शहर के मेयर लॉ फिलकिगर, जिनके साथ उनके दो चार चमचे अवश्य आते थे. उनके पीछे-पीछे या कुछ समय बाद, आते थे—दो डॉक्टर, तीन वकील, दो रिपोर्टर, एक प्राइवेट जासूस, एक बीमा एजेंट, स्त्रियों की तैयार पोशाकें बेचने वाला एक दुकानदार. ये अनिवार्य रूप से हाजिर हो जाते थे.

इन लोगों के आते ही, यॉक शिडिल अपना अखबार बंद कर देता था, क्योंकि इन लोगों से जो खबरें उसे सुनने को मिलती थीं, वे किसी अखबार में नहीं छप सकती थीं. ये सब लोग कई वर्षों से सुबह दस बजे शिडिल के रेस्तरां में आकर मिलते थे, और एक दूसरे के घनिष्ठ मित्र हो गये थे. उनमें आपस में एक अलिखित समझौता था कि यहां वे जिन खास खबरों का आदान-प्रदान करेंगे, वे रेस्तरां से बाहर नहीं जायेंगी, और अगर जायें, तो सुनने वाले को यह कभी भी नहीं बताया जायेगा कि इन खबरों का स्रोत क्या है?

एक दिलचस्प बात यह भी थी कि ये सब लोग एक दूसरे की बातों और खबरों का पूरा विश्वास करते थे. वे विश्वास नहीं करते थे तो उन पेशेवर राजनीतिज्ञों की बातों का, जो कभी-कभी इस रेस्तरां में आते थे, और जो अफवाहें खबर के रूप में फैला कर चले जाते थे. मगर कोई उन पर विश्वास नहीं करता था.

मजिस्ट्रेट की हैसियत से वे ज्यादातर दो मामूली किस्म के अपराधियों के जुर्म सुनते थे—शराबियों के या दंगा-फसाद करने वालों के. दोनों अपराधियों के लिए उनकी ओर से एक ही सजा निश्चित थी—दस डॉलर जुर्माना या दस दिन की कैद. ज्यादातर अपराधी दस डॉलर देकर घर चले जाते थे. जिनके पास दस डॉलर नहीं होते थे, और जो पहले गुनहगार होते थे, उन्हें वे जेल नहीं भेजते थे, चेतावनी देकर छोड़ देते थे. आभ्यासिक अपराधियों को वे तीस दिन की सजा सुनाते थे, और गरीब आभ्यासिक अपराधी इसके लिये उनके बड़े ऐहशानमंद होते थे, क्योंकि उनकी मेहरबानी से उन्हें सर्दी के दिनों में जेल में रहने-खाने का मुफ्त इंतजाम हो जाता था. खर्च नागरिक करते थे, शुक्रिया का मजा मेयर लूटते थे.

उस दिन जब मेयर साहब शिडिल के रेस्तरां में तशरीफ लाये, तो उनके साथियों को उनकी मुखमुद्रा से ही पता चल गया कि वे कोई ताजा और दिलचस्प खबर सुनाने को बेताब हैं. उन्होंने उस खबर की भूमिका बनाते हुए कहा, "दोस्तो! आप तो जानते ही हैं कि दीन-दुखियारों के प्रति मैं कितना हमदर्द हूं!"

"बेशक!" एक रिपोर्टर ने व्यंग्यात्मक लहजे में, जिसे शायद मेयर साहब समझ नहीं पाये, कहा, "आप इस शहर के दीन-दुखियारों के मसीहा हैं."

उसकी बात को अनसुनी करते हुए मेयर साहब ने आगे कहा—"आज मेरी अदालत में मेरे सामने फिर जैनी को पेश किया गया. उसके खिलाफ शिकायत थी कि वह सारी रात चिल्लाती और गालियां देती रही थी. अदालत में भी उसका व्यवहार बड़ा अशोभनीय था."

"मगर उसके चिल्लाने की कोई वजह तो होगी, मेयर साहब!" किसी ने उनसे पूछा.

"जैनी के चिल्लाने और गुस्सा करने की एक ही वजह होती है, जो आप सब जानते ही हैं. वह कैसी है, आप सब जानते ही हैं. मगर, इस बार तो उसने कमाल ही कर दिया. अपना धंधा शुरू किया, स्टेशन के उस हिस्से में, जहां रेलवे वैगनों में माल चढ़ाया-उतारा जाता है. वहां के हर मजदूर को उसने अपना ग्राहक बना लिया है. कहते हुए शर्म आती है. जब पुलिस ने उसे गिरफ्तार किया, उस वक्त वह गोदाम की एक कोठरी में एक मजदूर के साथ थी, और कोठरी के बाहर आठ-दस मजदूर लाइन लगाये खड़े थे. अपनी बारी की इंतजार में."

तभी, वहां मौजूद दो पेशेवर राजनीतिज्ञ आपस में बेसबाल के मैचों के बारे में बातें करने लगे. उन्होंने इस जोरशोर से मैचों के बारे में बातें शुरू कीं कि जैनी के बारे में न मेयर साहब आगे कुछ बोल पाये, न किसी को पूछने का मौका मिला 'आगे क्या हुआ?' वैसे, जो कुछ आगे हुआ होगा, वे समझ ही गये थे.

बेसबॉल के मैचों की चर्चा में ही साढ़े ग्यारह बज गये. मेयर साहब उठ कर अपनी दुकान की ओर जाने लगे. दोनों पेशेवर राजनीतिज्ञ भी उनके साथ हो लिये. सड़क पर, दोनों में से एक ने पूछा, "क्या आप जानते हैं कि मैंने जैनी की चर्चा को आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया?"

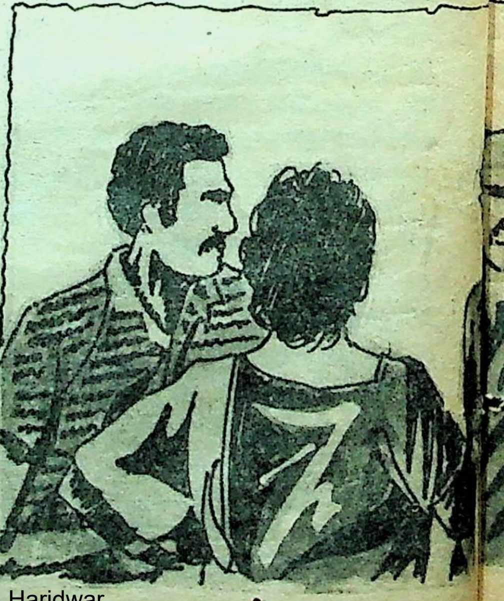

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं. मगर जानने की उत्कंठा अवश्य है."

क्या आपको जैनी के साथ रेस्तरां मालिक शिंडिल के पूर्व-संबंधों के बारे में पता नहीं है? उसके रेस्तरां में बैठकर, उसके ही सामने, जैनी का जिक्र करके आप उसे ख्वामख्वाह अपना दुश्मन बना रहे थे. इसलिए, मुझे आपकी खातिर बीच में कूद कर, आपको बचाना पड़ा."

"शुक्रिया! मगर शिंडिल और जैनी के कभी कोई संबंध थे, यह मुझे बिलकुल मालूम नहीं था, हालांकि मैं यहां का मेयर हूं."

"आप मेयर भले ही हों, मेयर फ्लिकिंगर साहब, मगर इस शहर की ढेर सारी बातों से आप पूरी तरह अनजान हैं. जहां तक शिंडिल और जैनी के पूर्व-संबंधों की बात है, फिलहाल मैं आपको सिर्फ इतना ही बता सकता हूं कि जैनी को सड़क-छाप रंडी बनाने में शिंडिल का बड़ा हाथ है, बल्कि वह उसके लिये जिम्मेवार है."

मेयर साहब पूरी कहानी सुनने के लिए बेताब थे. वे दोनों पेशेवर राजनीतिज्ञों को अपनी दुकान में ले गये, और वहां एकांत में उनसे बातें करने लगे. उन्होंने कहा, "मैं यॉक शिंडिल के परिवार के सब सदस्यों को बखूबी जानता हूं. वह एक प्रतिष्ठित परिवार है, और उसके सब सदस्य अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं."

"हूं. अब यह बताइये कि आप जैनी के बारे में क्या जानते हैं?"

"मुझे अफसोस है कि मैं उसके परिवार के बारे में कुछ भी नहीं जानता. उसका पूरा नाम जैनी फॉस्ट है, यह बात भी मुझे आज ही मालूम पड़ी.

"यह परिवार एक निर्धन परिवार है. कई वर्षों से दक्षिणी नहर के किनारे एक टूटे फूटे घर में रहता है. छोटा-सा परिवार था—जैनी, उसकी बहन, उसकी मां और उसका बाप. वर्षों पूर्व जब जैनी के पिता की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी तो उसकी मां अपनी दोनों बेटियों का पेट पालने के लिये लोगों के कपड़े धोने लगी. इस काम में जैनी और उसकी बहिन लिज भी अपनी मां का हाथ बंटाती थीं. जब दोनों की आयु पंद्रह-सोलह हुई, तो दोनों रेशम की मिल में काम करने लगीं. न मालूम कब और कैसे जैनी का परिचय शिंडिल के साथ हो गया. एक दिन शिंडिल उसे अपने साथ लेकर अपने माता-पिता से मिलाने के लिये लाया. माता-पिता ने यॉक से उसके सामने कुछ नहीं कहा, लेकिन जब उसे उसके घर छोड़कर वापस अपने घर आया, तो मां-बाप ने उसे आड़े हाथों लिया. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यॉक से कहा, "हम लोग अमीर और इज्जतदार लोग हैं. जिस लड़की से तुम प्रेम कर रहे हो, वह एक ऐसे गरीब घर की है, जिसकी समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं है. हम नहीं चाहते कि तुम ऐसी लड़की से कोई संबंध रखो. न जाने कितने आवारा लड़कों से उसकी दोस्ती होगी."

"उस समय यॉक की आयु क्या थी?" मेयर ने पूछा.

"18-19 का रहा होगा. जैनी 14-15 की थी शायद. यॉक ने माता-पिता की चेतावनियों के बावजूद, जैनी से मिलना-जुलना जारी रखा. नतीजा वही हुआ, जिसकी पहले से उम्मीद थी. एक दिन जैनी की मां यॉक के घर पहुंची, और यॉक की मां के रोकने पर भी सीधी घर में घुस गयी, और जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगी, "मेरी जैनी के पेट में तुम्हारे लड़के यॉक का बच्चा पल रहा है. या तो, आप उसकी शादी मेरी जैनी से करो, नहीं तो मैं अभी जाती हूं, पुलिस में उसकी शिकायत करने." यॉक का बाप उठा, और उसने धक्का देकर जैनी की मां को घर से वापस निकाल दिया. उसके बाद, उसने यॉक को एक बंद कमरे में जी भर कर पीटा. यदि यॉक की मां उसे नहीं बचाती, तो वह यॉक को अधमरा करके घर से निकाल देता."

"क्या जैनी सचमुच गर्भवती थी? और बच्चा यॉक का ही था?" मेयर ने पूछा.

"हां, वह सचमुच गर्भवती थी, लेकिन जब यॉक और उसके पिता ने उसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया, तो उसने गर्भ गिरवा दिया. इसके बाद, उसकी मां ने उसे घर से निकाल दिया. घर से निकालने पर, वेश्या बनना उसकी मजबूरी हो गयी."

"जिसने भी गर्भ गिराया, वह एक होने वाले शिशु की हत्या का अपराधी है." मेयर साहब ने अपने कानूनी दिमाग का परिचय दिया.

"शायद. मगर किसे पड़ी थी, इस पचड़े में पड़ने की. किसके पास इतना फालतू वक्त था? और, अब किसे याद है कि तब क्या हुआ? इस घटना को घटे तीस साल हो गये. शायद जैनी को भी ठीक-ठीक याद नहीं होगा."

"एक मजिस्ट्रेट के नाते मैं जैनी को इस मामले में अपराधी नहीं मानता. वह एक रंडी है, और अपना शरीर बेचकर अपना पेट पालती है. यह कानून की निगाह में एक अपराध हो सकता है, लेकिन मामूली अपराध है. उससे कहीं बड़े अपराधी—महापराधी—हैं—यॉक शिंडिल, उसका पिता, यदि वह आज जीवित है, और उसकी मां, यदि आज वह जीवित है तो!"

"यॉक को छोड़कर सब मर-खप चुके हैं, सिर्फ यॉक ही जीवित है. और वह आज शहर का एक प्रभावशाली नागरिक है. मैं नहीं चाहता कि एक ऐसे मामले को लेकर, जो हम सबके लिये महत्त्वहीन है, आप यॉक से शत्रुता मोल लें. इसी वजह से मैंने यॉक के रेस्तरां में इस मामले को आगे नहीं बढ़ने दिया था, और विषयांतर कर दिया था."

"देखो, मित्र! मैं यॉक के समान ही शहर का प्रभावशाली नागरिक हूं. इसलिए, उससे डरने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता. लोगों की निगाह में वह भले ही निर्दोष हो, लेकिन मैं उस घटना के बारे में सुनकर उसे एक महापराधी मानता हूं. इसके बरखिलाफ, जैनी एक सामान्य अपराधी है. कल पुलिस उसका मामला मेरी अदालत में पेश करेगी, और मैं अभी ही आपको बताये देता हूं कि मैं उसके साथ बड़ी नरमी से पेश आने वाला हूं, और सिफारिश करूंगा कि नगरपालिका उसे कोई नौकरी दे, ताकि उसे अपना तन बेचने को मजबूर न होना पड़े. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1915
प्रमुख कृतियां : 'प्यार के भूखे', 'छोटा कलक्टर', 'आसरा' (कहानी संग्रह)
संपर्क : डी. 5/131, त्रिपुरा भैरवी, मीरघाट, वाराणसी (उ.प्र.)

□ द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

लंबी कहानी

इस अंक से लंबी कहानियों के प्रकाशन का धारावाहिक सिलसिला प्रारंभ किया जा रहा है. अगले अंक में इस सिलसिले को आगे बढ़ाएंगे कवि कथाकार—रामेश्वर शुक्ल अंचल...

सरस्वती

मैं वीसलपुर से लौट रहा था. एक मित्र की शादी में शरीक होने गया था. सप्ताह भर टिका रहा. वहां दैवयोग से एक अविवाहिता नवयुवती से मेरी थोड़ी घनिष्ठता हो गयी—थोड़ा घुलमिल गये हम. नाम तो माधुरी था. पर सब उसे मधु-मधु कहकर पुकारते थे. मधु का अर्थ शहद भी होता है—शराब भी. मुझे लगा कि— वह जैसे इन दोनों का सम्मिश्रण है. सलोनी थी, लजीली-शर्मीली थी और जरूरत से ज्यादा मितभाषिणी थी. चार बातें पूछो तो एक का जवाब देती नमितनयना होकर. कभी तो अच्छा लगता, कभी खीज लगती—गुण लगता कभी अवगुण. पर लड़की में एक खास कशिश थी—इतना तो मुझे स्वीकार कर ही लेना चाहिये.

...मित्र मुझे स्टेशन तक पहुंचाने आया. ट्रेन में, सीट पर मुझे बिठा, खुद भी सामने बैठ गया और प्रसन्न मुद्रा से कहने लगा, "माधुरी को तुमने देखा— भाला है. उसकी मां ने तुम्हें बहुत पसंद किया है. मेरे पीछे पड़ी है— संबंध तय करा दो. तो अब तुम बोलो, लड़की जंच रही है या नहीं, क्या इरादे हैं तुम्हारे?"

मैंने हंसकर कहा, "लड़की मेरी मनपसंद है— तुमसे स्पष्ट ही कह रहा हूं, परंतु तुम तो जानते हो— मेरी बाल विधवा दीदी ने ही मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है. मां-बाप, भाई-बंधु मेरे लिये अकेली दीदी ही है. उसकी इच्छा के बिना मैं एक कदम भी इधर-उधर नहीं रख सकता. और वह बीस साल से कानपुर से बाहर नहीं गयी है— अपने आराध्य गिरिधर गोपाल को अकेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर और न कभी जायेगी कहीं, शायद मृत्युपर्यंत. तो भाई, माधुरी के माता-पिता उसे साथ लेकर कानपुर आयें, मेरी दीदी के आगे उसकी पेशी करें, तभी कुछ निर्णय हो सकेगा. यह तुम उन्हें समझा देना. मुझे लिखना फिर."

ट्रेन चली जा रही थी. सामनेवाली खाली सीट पर अपने पैर फैलाकर मैंने आंखें मूंद ली थीं और सोचे जा रहा था कि— मान लो, वे लोग कानपुर चले आये, दीदी राजी हो गयी, तब? तब क्या ठीक ही रहेगा. माधुरी के साथ जीवन कटेगा. सुखी ही रहूंगा. और माधुरी की वह शरमायी-शरमायी नजर याद आई, धीरे-धीरे कांपते कोमल होंठ याद आये कि खट् से किसी ने मेरा पैर थपथपा दिया.

चौंक पड़ा मैं. आंखें खोल दीं. पैर समेट लिये जल्दी से.

सामने एक नवयुवती खड़ी थी— खाकी पैंट— बुशशर्ट पहिने, कंधे पर बड़ा-सा बैग लटकाये. जरा-सा झुककर निहायत शरीपाना अंदाज में वह लड़की मुझसे पूछने लगी, "मैं इस सीट पर बैठ जाऊं? आप को कोई एतराज तो नहीं है? टिकट है मेरे पास सिटिंग का."

मैंने कहा, "शौक से बैठिये आप."

"थैंक यू!" उसने मेरे सामने बैठकर बैग उतारा कंधे से और उसे अपने पैरों के पास रखती-रखती बोली, "मैं उधर बैठी थी— चौंतीस नंबर पर. लेकिन मेरे सामने जो आदमी बैठा था मैली-सी चादर लपेटे— वह कोई खूंखार डाकू-वाकू है शायद. मैंने जरा खिड़की से झांका तो उसने फौरन मुझे डांट दिया, 'सिर भीतर कर ले.' थोड़ी देर तो मैं सिर भीतर किये रही, फिर भूल गई. दुबारा जो मैंने खिड़की से बाहर झांका तो वह डपटकर बोला, 'ए लड़की, सीधी तरह बैठ, वर्ना तुझे उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दूंगा.' खिड़की से मुझे बाहर तो क्या फेंक पाता भला, लेकिन उसकी लाल-लाल आंखें और बड़ा-बड़ा-सा मोछा देखकर चित्त मेरा

कैसी होगी वह तरुणी जिसका उठना-बैठना, हंसना-मुस्कराना... बोलना तो बोलते ही चले जाना... और चौंकाकर रख देने वाली अदाएं दुनिया-जहान के हर विषय पर ऐसी टिप्पणी करना कि उसकी उम्र को देखते हुए सिवाय हैरत के और कोई चारा न रहे...?

कुछ उद्वेलित जरूर हो गया. मैंने उचककर देखा यह सीट खाली लगी. उठकर भाग आयी. 'दुष्ट संग जनि देहि विधाता'— यहां अब बैठी हूं तो चित्त मेरा शांत है. आप कहां से तशरीफ ला रहे हैं और कहां जा रहे हैं?"

"कानपुर." मैंने उसे गौर से देखा, कुछ अजीब-सी लगी वह मुझे, हालांकि देखने-भालने में सुंदर ही थी. खुश-खुश बोली, "मैं भी कानपुर जा रही हूं. बड़ा अच्छा हुआ, संग-साथ हो गया यह. खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो. आप किस जाति को सुशोभित कर रहे हैं?"

"हरिजन हूं." मैंने छूटते ही कहा.

वह तनिक चुप रही, फिर बड़ी शाइस्तगी से कहने लगी, "बुरा न मानें तो एक बात कहूं. राष्ट्रपिता हमें दो मंत्र देकर गये हैं— सत्य और अहिंसा. और आप बापू के उसी भारत के एक होनहार नवयुवक हैं. मैं पूछती हूं, सत्य को तिलांजलि देकर असत्य का सहारा क्यों ले रहे हैं आप? यह जो आपके गले में तीन धागों वाला फंदा लटक रहा है— आप की चुगली खा रहा है. फंदा चीख-चीखकर कह रहा है— आप हरगिज 'हरिजन' नहीं हैं."

बाथरूम गया था. जनेऊ भीतर करना भूल गया था. संकुचित होकर जनेऊ कमीज के भीतर किया और हंसकर कहा, "ब्राह्मण हूं."

खुश-खुश बोली, "मैं भी ब्राहमण हूं. आप कानपुर में क्या काम करते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"घास छीलता हूं." मैंने हंसते-हंसते कहा तो बड़े शांत स्वर में बोली, "कुछ न करने से घास छीलना अच्छा है. मैं भी कभी-कभी अपनी बगिया की घास छीलती हूं गौ माता के लिये. आप कहां की घास छीलते हैं?"

मैंने थोड़ा कुढ़कर कहा, "एक डिग्री कालेज की. अध्यापक हूं. और कुछ पूछना हो तो पूछिये. नाम मेरा शिवशंकर है और शाकाहारी हूं."

इस पर सांस खींचकर बोली, "हमको उनसे वफा की है उम्मीद, जो नहीं जानते वफा क्या है!"

मुझे उसकी बातों में आनंद आने लगा था. हंसकर ही पूछा, "अब आप अपना परिचय दीजिये."

खुश हो गई. तपाक से बोली, "बरेली की निवासिनी हूं. जिस शहर के बाज़ार में कभी किसी अज्ञातनामा तरुणी का झुमका गिर गया था, उसी ऐतिहासिक नगर बांस बरेली में मेरा अपना छोटा-सा आशियाना है. अकेली मां ही है मेरी सब कुछ. तपस्वी, विद्वान ब्राह्मण पिता की एकमात्र संतान हूं, जो स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे और अब स्वर्गस्थ हैं. मां को पारिवारिक पेंशन मिलती है, गांव से खेतों का अन्न आ जाता है और यों गुजर हो जाती है हमारी. मैं इस वर्ष एम.ए. फाइनल की परीक्षा दे चुकी हूं. पर्चे बहुत अच्छे किये हैं. प्रीवीयस में 87% प्रतिशत अंक थे मेरे. संभव है, 'टाप' कर जाऊं इस वर्ष. सब कुछ मेरा उसी परमपिता पर निर्भर है. नाम मेरा सरस्वती शर्मा है, जिसका शार्ट है—यस.यस.. और कुछ पूछिये."

"कानपुर क्यों जा रही हो?"

"इंटरव्यू देने."

"किस पोस्ट के लिए."

जरा सोचकर बतलाया उसने, "पोस्ट यों तो नितांत साधारण है परंतु मेरे संपूर्ण भविष्य का दामोमदार उसी पर टिका हुआ है. मोस्ट कान्फीडेंशियल केस है. आप को बता दूंगी, पर अभी नहीं. हम लोग थोड़ा और निकटस्थ हो लें, थोड़ा सब्र कीजिये अभी. वक्त आने दें, बता देंगे तुझे ए हमसफर." और आंखें मूंदकर बैठ गयी चुपचाप. उसकी यह 'अदा' मुझे बहुत मोहक लगी. ऐसा सहयात्री तो कभी न मिला था. तबीयत खुश हो गयी...

ट्रेन चली जा रही थी. एक छोटा-सा स्टेशन आया और सूं-सूं करती ट्रेन रुक गयी. क्या हुआ? यह तो फास्ट एक्सप्रेस गाड़ी है. यहां क्यों रुक गयी? सब एक-दूसरे से पूछने लगे और थोड़ी देर बाद पता चला कि इंजन का कोई पुर्जा टूटकर गिर गया है. ट्रेन आगे नहीं चलेगी. किसी जंकशन से दूसरा इंजन आयेगा, तभी ट्रेन सरकेगी. इसमें कई घंटे लगेंगे.

सरस्वती ने आंखें खोल दीं. सब सुना. सब सुना. दुख में डबकर हताश स्वर में वह उठी, "मर गये हम तो!" और हाथ-पैर ढीले करके तिरछी होकर सीट पर लुढ़क रही. उसका यह मरने का 'पोज' देखकर मुझे बरबस हंसी आ गयी. मुझे यों हंसता देखकर वह फौरन उठ बैठी और चिढ़कर बोली, "बंधु, किसी को विपदा में फंसा देख हंसनेवाला क्या होता है, जानते हो? नृशंस. बंधु, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी. सजातीय होकर, सुसंस्कृत होकर, सहयात्री होकर तुम यह क्या व्यवहार कर रहे हो, एक असहाय के साथ?"

मेरे होंठों से तत्काल हंसी लोप हो गयी. अप्रतिभ हो गया. कुछ बोल नहीं पा रहा था. वह उदास होकर दूसरी ओर देखने लगी थी. तब मैंने साहस बटोरकर कहा उससे, "मैं तुम से क्षमा मांगता हूं. जो विपत्ति हो, परेशानी हो, मुझ से कहो. मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं— हर स्थिति में तुम्हारी सहायता करूंगा."

तब सरस्वती ने मानो आश्वस्त होकर अपनी परेशानी मुझे बतलायी. पूरी बात सुन कर मैंने सांत्वना के स्वर में उससे कहा, "मैं तुम्हें अपने साथ अपने घर ले चलूंगा. तुम तनिक भी चिंता मत करो. मेरी बड़ी बहिन है और मैं हूं घर में. मेरी बहिन इतनी दयालु प्रकृति की है कि वह तुम्हें स्नेह से सराबोर कर देगी. जरा मेरे घर चलकर देखना. और अपने जिन ताऊजी के पास तुम जा रही हो, वे हम लोगों के परम शुभचिंतक हैं. मेरी बहिन को 'दिदिया' कहकर पुकारते हैं. एकाकी, वीतराग, संन्यासी की तरह वे रहते हैं और निस्वार्थ भाव से जन-सेवा करते हैं. उन्हें भला कानपुर में कौन नहीं जानता. मेरे तो परम श्रद्धेय हैं तुम्हारे ताऊ शुक्लाजी. ट्रेन कितनी भी लेट हो जाये, मैं तो तुम्हारे साथ रहूंगा न! रात को तुम स्टेशन पर पड़ी रहोगी और मैं तुम्हें अकेला छोड़कर चल दूंगा— मुझे इतना 'अधम' मानती हो क्या?"

"छमहु बंधु, अपराध हमारे!" मेरी ओर दोनों हाथ जोड़कर बोली, "अब मैं निश्चिंत हो गयी. तुमने मुझे उबार लिया. भला सोचो तो, रात में एक बजे— दो बजे कहां टक्कर मारती फिरती. ताऊजी की किवाड़ें पीटती, उन्हें कष्ट देती, खुद भी कष्ट उठाती. धन्य हो प्रभु, कैसे रक्षा करते हो तुम अपनी सरस्वती की. ऐसा बंधु मिला दिया कि पौ बारह हो गये हमारे. और ताऊजी की बात कह रहे हो न, निश्चय ही देव पुरुष हैं वे तो. मेरे पिता के परम मित्र, बाल्य-बंधु हैं. वर्षों साथ रहा है दोनों का. पिता की मृत्यु के बाद वे बराबर हमारी सुधि लेते रहे हैं. मेरी मां को 'भौजी' कहते हैं. मां उन्हें 'देवर बाबू' कहती हैं. दसियों बार हमारी कुटिया पर आये हैं. खाया-पिया है. रात को सोये हैं."

...हमने देखा— डिब्बे के अधिकांश यात्री उतरकर सामने हरी घासवाले लान में जमा हो रहे हैं, चादर बिछा रहे हैं, तौलिया बिछा रहे हैं. तीन-चार घंटे यहीं प्लेटफार्म की ठंडी-ठंडी हवा ली जाये. हम दोनों भी लान में आ गये, चादर बिछा ली, ठंडी हवा खाने लगे. तनिक देर बाद, सरस्वती कह उठी, "बंधु, हवा से पेट नहीं भरेगा. अब पेट-पूजा कर ली जाये. आओ, खाना खा लें."

मैं चादर पर अधलेटा हो रहा था. संकोच करके कहा, "तुम खा लो, मुझे भूख नहीं है." वह अपना टिफिन केरियर खोल रही थी, उसके हाथ जहां के तहां रुक गये, मेरी ओर ताकने लगी फिर चढ़े स्वर में बोली, "ऐ मिस्टर, कान खोलकर सुन लो, अगर तुम मेरे साथ खाना नहीं खाओगे तो फिर मैं भी तुम्हारे साथ— तुम्हारे घर नहीं जाऊंगी. खैरियत चाहते हो तो उठ बैठो फौरन."

अगत्या मुझे साथ देना ही पड़ा. खा-पीकर आश्वस्त हो दोनों बैठे थे तब उसने खुद ही बात छेड़ी, "अब हम लोग काफी निकट हो गये हैं. सो अब अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें अपना वह 'कान्फीडेंशियल केस' सुनाऊं— इंटरव्यू वाला."

"जरूर सुनाओ." मैं उत्सुक हो उठा. बोली, "अब तुम से क्या छिपाना. असल में, मैं शादी वाला इंटरव्यू देने जा रही हूं."

चौंका मैं. यह क्या कह रही है! पर उसने अपनी बात जारी रक्खी, "हां बंधु, ऐसा ही मामला है यह. अब मैं तुम्हें पूरी 'केस हिस्ट्री' सुनाये दे रही हूं. मैंने जब बी.ए. कर लिया तो मेरी मां ने मेरे आगे शादी का प्रस्ताव रख दिया. मैंने प्रस्ताव निगलेक्ट कर दिया, उसकी बातों पर कान ही न दिया. वह चर्चा करती और मैं अनसुनी कर जाती. बस, यों ही डेढ़-दो साल गुजार दिये मैंने. एम.ए. की परीक्षा से निबट गयी तो एक रात को मुझे अपने पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिटाकर मेरी मां करुण-करुण स्वर में हौले-हौले कहने लगी, आज मैं जिंदा हूं तो तू मेरे आंचल की छाया में सुख-शांति से जी रही है, पर कल को जब मैं न रहूंगी, तब तेरा क्या होगा? निपट अकेली तू कैसे जीवन बितायेगी? दुनिया बहुत बुरी हो चुकी है. दुनिया तुझे चैन से जीने न देगी. किसी भी जवान लड़की को एकाकी जीवन बिताना– आज के इस गंदगी भरे युग में संभव नहीं रह गया है बेटी? तू इतनी भोली, इतनी सरल है कि कुछ भी नहीं जानती. पर मैंने तो दुनिया देखी है. बड़े कटु अनुभव हुये हैं मुझे तेरे पिता की मृत्यु के बाद. कुछ सोच-समझकर ही तुझसे शादी के लिए कह रही हूं. मेरी बात अब मान जा बेटी, मैं तुझ से विनय कर रही हूं. सुख-दुख सहते किसी तरह इतने साल बिता दिये मैंने तुझे छाती से लगाये, अकेली इसी एक आशा पर कि– कभी तेरा घर-द्वार बसा देखूंगी– तुझे फलता-फूलता देखूंगी. देवते-देवती को कलेजे से लगाकर स्वर्ग का सुख पाऊंगी. मुझे और तेरे पिता को परलोक में पानी देनेवाला कोई होगा दुनिया में. अकेली एक अभिलाषा थी मेरी. सो भी पूरी न होगी. प्रभु, यों ही तरसती-तरसती मर जाऊंगी किसी दिन.'

मैंने तड़प कर कहा, 'बस करो मां, तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कह रही हूं– जो कुछ तुम कहोगी– करूंगी, खुशी से करूंगी.'

यह समझो इस केस का फ़र्स्ट चेप्टर हुआ.

द्वितीय अध्याय यह है कि– मेरे लिये 'पति' नामक व्यक्ति की खोज शुरू हुई और फिर एक दिन केंडीडेट नंबर वन मेरे बैठकखाने में नमूदार हुआ. कृष्ण वर्ण, सुंता हुआ चेहरा, नीला सूट, लाल टाई और मोटा चश्मा. मैं सामने पहुंची तो वह छोटी मेज पर अंगुलियां चला रहा था मानो टाइप कर रहा हो. नजर ऊपर को थी– शायद छत की कड़ियां गिन रहा था. मैंने उसके व्यक्तित्व का भला-बुरा कुछ भी प्रभाव महसूस न किया. बंधु, मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि मेरी मां जिसे चुन देंगी मेरे लिये, उसी का सहर्ष वरण कर लूंगी. एक्स-वाई-जेड– जो कोई भी हो, मुझे कोई ऐतराज न होगा. बस, शादी कर लेनी है और कैसा भी बिगड़े दिल-दिमाग का वह क्यों न हो, मैं उसे संतुष्ट कर लूंगी उसकी हर इच्छा की पूर्ति करूंगी. हर कदम पर साथ दूंगी– तहेदिल से प्यार करूंगी. हर स्थिति में, कंप्रोमाइज करके अपने को एडजस्ट कर लूंगी. मेरे अपने कोई स्वप्न नहीं हैं कि कुढ़ती रहूं मैं. चिंता क्या है?

हां तो, वह नंबर वन– मैंने बड़ी शालीनता से हाथ जोड़कर कहा, 'नमस्ते जी!' चौंक पड़ा वह. मैंने नम्रता से पूछा, 'आज्ञा हो तो बैठ जाऊं.'

'बैठो-बैठो. बैठिये.'–घबराया-सा लगा मुझे वह. 'धन्यवाद.' मैंने शांत भाव से कहा उसके सामने बैठकर 'कुछ पूछना चाहें तो पूछिये मुझसे.' तड़ाक से पूछ बैठा, 'किस क्लास में पढ़ रही हैं?' मैंने उसे अपनी सब योग्यता बतला दी. चुप रह गया. फिर मैंने पूछा, ''श्रीमान की क्वालिफिकेशनस् क्या हैं, बतलाने का कष्ट करेंगे?' पता चला, बी.कॉम. है. किसी बैंक में क्लर्क है. एक कमरा किराये पर ले रक्खा है. होटल में खाता है. होटलवाला बहुत बेईमान है– ठग है पूरा. कमरे में मच्छर बहुत हैं. ओडोमास लगाकर सोता है, इत्यादि– मैंने कहा, 'बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर. मेरी एक छोटी-सी जिज्ञासा है. आप तो दिन भर संख्याओं से ही खेलते हैं. यह बतलाइये कि– अगर किसी शून्य संख्या की किसी शून्य संख्या से गुणा की जाये तो उसका 'गुणनफल' क्या होगा? शून्य को शून्य में घटाया जो, तो 'शेष' क्या बचेगा? कृपा करके मुझे बतलाइये.' वह गहरे सोच की मुद्रा में हो गया तो मैंने कहा, 'आप विचारिये, मैं अभी आयी.' उसके लिए चाय-नाश्ता लेने मैं भीतर चली गयी. थोड़ी देर में ट्रे लिये लौटी तो देखा– वह कमरे से नदारद है. भला आदमी खिड़की से कूदकर भाग गया था.'' कहकर सरस्वती खिलखिला उठी. मैं भी हंसने लगा था. जी भरकर हंस ली तो फिर आगे बढ़ी, ''इसके बाद बंधु, नंबर दो आया. यह व्यक्ति खल्वाट, खुर्राट, दोहरे बदन का, गोरा और काफी वयस्क था. छोटी-छोटी चालाकी भरी आंखों से मुझे ताकता रहा घड़ी भर. फिर उसने मुझसे प्रश्न पूछने शुरू किये– इतिहास, भूगोल, गणित, समाजशास्त्र, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र– खटाखट पूछता ही चला गया पट्ठा और मैं तड़ातड़ जवाब देती चली गयी. अंत में, रुक गया वह.

मैंने मन में कहा, 'पूछ बेटा, और पूछ, रुक क्यों गया? मुझे नहीं हरा पायेगा. तू भी क्या याद करेगा कि मिली थी कोई लड़की तेज़तर्रार, 'और पूछिये कुछ.' आखिर मैंने कह ही दिया तो कुरसी पर धोक लगाकर बोला, 'बस, यथेष्ट है. अपनी मां को बुलाओ.' मैं भीतर गयी मां को भेज दिया. पता चला– वह स्वयं किसी हाईस्कूल का हेड मास्टर है. अपने छोटे भाई के संबंध के लिये आया है. चलते-चलते मेरी मां से कह गया, 'लड़की बहुत

लघुकथा

परख

नेताजी कुत्ता खरीदने गये.
उन्हें देखकर कुत्ते वाले को आश्चर्य हुआ–नेताजी को कुत्ता खरीदने की क्या जरूरत पड़ गयी.

नेताजी ने एक बुलडॉग की ओर इशारा किया, ''इसकी विशेषता?''

''यह बहुत ही खतरनाक और स्वामीभक्त कुत्ता है.''

नेताजी ने दूसरे कुत्ते की ओर इशारा किया, जो स्पेनियल था.

''यह चोरों को पकड़ने में माहिर है. चोर कहीं भी क्यों न छिपा हो, यह खोज निकालता है.''

नेताजी को यह भी पसंद न आया, ''कोई और?''

''जी हां हुजूर, यह खास प्रशिक्षण प्राप्त कुत्ता है.'' कुत्ते वाले ने तीसरे कुत्ते की ओर इशारा किया, ''इस कुत्ते की खासियत यह है सरकार, कि यह डांटने और पुचकारने पर गुर्राता है... मारने पर काटने दौड़ता है, काटता नहीं है.. लेकिन अगर आप इसे रोटी दिखायेंगे तो यह बिना काटे नहीं छोड़ता, चाहे भागकर आप पाताल ही क्यों न पहुंच जायें!''

नेताजी प्रभावित हुए बिना न रह सके.

''तो यह दुम कब हिलाता है,'' नेताजी ने अभिभूत होकर पूछा.

''रुपए की गड्डी दिखाने पर हुजूर.''

नेताजी ने कुत्ते को तुरंत गाड़ी में बिठाने का हुक्म दिया.

□ प्रकाश सूर्यवंशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिलियंट है, जब कि मेरा भाई थोड़ा 'कुंद मगज' है. जोड़ी ठीक नहीं रहेगी. मैं चला.'

आदमी शायद समझदार था....

...नंबर तीन किसी प्रतिनिधि को न भेजकर स्वयं ही हाजिर हो गया. देखने-भालने में सुंदर— हैंडसम, हृष्टपुष्ट और हंसमुख, शालीनता से भरा. पढ़ा-लिखा— ग्रेजुएट था. हम दोनों — मैं और मां उसके सामने बैठे थे. वह बराबर मेरी मां से ही बतियाता रहा और बीच-बीच में कनखियों से मुझे ताकता रहा. मुझसे उसने रुख ही न मिलाया, कुछ भी न पूछा मुझसे. प्रसन्नवदन आया था— प्रसन्नवदन लौट गया. अब जरा उसका विवरण सुनिये— व्यवसाय था, बनारसी रेशमी साड़ियों पर पालिश करना. यानी एक छोटा-मोटा कारखाना और यह कारखाना अपने घर में ही वह चला रहा था. पिता नहीं थे. मां थी और दो छोटी बहिनें थीं और दो नौकर थे, जो स्थायी थे और यहीं दोनों जून खाते पीते-सोते थे. कुल मिलाकर छह-सात प्राणियों का भोजन बनता था, जिसकी जिम्मेदारी अब उसकी 'जो' बनेगी— वही उठायेगी भविष्य में. मां से अब काम नहीं होता. बहिनें स्कूल चली जाती हैं. मैंने सोचा— 'चलो ठीक है, यही सही. मैं साड़ियों पर पालिश करना सीख लूंगी. आनंद रहेगा.

पर कई दिन बाद बिचौलिये ने आकर सूचना दी कि दहेज में आप जो कुछ भी देंगी— वह तो अलग बात है. लेकिन लड़के को स्कूटर जरूर चाहिये— यह मत भूलियेगा. मेरी मां की हिम्मत जवाब दे गयी. हम तो किसी तरह गुजर-बसर कर रहे थे. इतना भार उठाने के काबिल ही न थे. आखिरकार बात टूट गयी.

बंधु, नंबर चार और पांच के किस्से इतने वहियात और गंदे हैं कि तुम्हारे श्रवणीय ही नहीं हैं. हरगिज नहीं सुनाऊंगी.'' जरा रुकी वह और फिर सिर डुलाती कह उठी, ''इति सरस्वती— विवाह प्रकरणे— द्वितीय अध्यायः समाप्त.''

मैं बैठा मुस्कराता रहा. और फिर उसने मानो सन्नद्ध होकर शांत भाव से कहा, ''अथ तृतीयः अध्यायः प्रारभ्यते. हे श्रोता, तुम इस कथा को ध्यान से सुनो—उत्तर प्रदेश में, कानपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है. वहां एक विप्रवंशावतंस नवयुवक रहता है, जो अपनी किसी वृद्धा मौसी-बुआ-ताई अथवा मामी का पालतू प्राणी है. उस वृद्धा के कोई भगवान् हैं, जिन्हें वह पिछले बीस वर्ष से एक रात को भी अकेला नहीं छोड़ सकी है. उसे भय है कि अगर वह कानपुर से बाहर गयी— तो कोई उसके भगवान को उठा ले जायेगा. कानपुर में ही मेरे ताऊजी भी रहते हैं— जिन्हें तुम भी जानते हो. सो उसी एक्स-वाई-जेड लेक्चरार के साथ मेरे विवाह संबंध की बात चल रही है. ताऊजी ने मेरी मां को जाकर जब बतलाया कि उस वृद्धा के आगे मुझे यानी सरस्वती शर्मा को पेश करना लाजिमी है, तभी कुछ हो सकेगा, वृद्धा की रजामंदी के बाद एतदर्थ, मां के साथ मुझे कानपुर आना था, ताऊजी के यहां ठहरना था, शादी का इंटरव्यू देना था. परंतु उस बुढ़िया की तरह मेरी मां के भी भगवान् हैं; बुढ़िया के एक भगवान हैं— मेरी मां के चार. स्वयं श्री जानकीनाथ राघवेंद्रजी, एक गौ-माता, एक सुग्गा तोताराम, और एक कुतिया पुन्नी. हर जीव भगवान् का ही अंश होता है— इनको किसके सहारे छोड़ती मेरी मां? लिहाजा सरस्वती ने अकेले ही कमर सकी इस शुभ कार्य की शुभ यात्रा के लिए और इस प्रकार मैं ताऊजी की सेवा में प्रस्तुत होने जा रही हूं— शादी वाले इंटरव्यू के निमित्त. सब समझ गये न बंधु?''

मेरे दिमाग ने झटका खाया, मेरा माथा ठनका— यह क्या सुना रही हैं? कहीं इसका वह एक्स-वाई-जेड लेक्चरार मैं ही हो नहीं हूं—वह बुढ़िया मेरी दीदी ही तो नहीं है?—अच्छा कौतुक रहा यह, यानी कि— यानी कि यह लड़की मेरे लिये ही कानपुर चल रही है, मेरे साथ ही इसके 'ग्रंथि-बंधन' की बात चलायी जा रहीं है. पर मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम! मैंने हकलाकर पूछा, ''उस लेक्चरार का नाम, धाम— ठिकाना तुम जानती हो?''

सरस्वती ने सिर हिलाकर कहा, ''नो सर, आई डोंट नो, हू इज दिस फेलो. होगा कोई. ताऊजी से पूछकर तुम्हें बतला दूंगी. बंधु, मेरे मस्तिष्क में अभी-अभी एक विचार कौंधा है—क्या यह संभव नहीं है कि वह लेक्चरार तुम्हारा परिचित हो, साथ पढ़ा संगी-साथी हो— दोस्त हो गहरा!

''खुदा के फ़जल से, यदि ऐसा हुआ तब तो तुम मेरी बहुत सहायता कर सकोगे. कह-सुनकर उसे मेरे साथ शादी करने के लिये राजी कर सकोगे. बोलो, मेरे लिये इतना करोगे न?''

''जरूर करूंगा. पूरी ताकत लगा दूंगा तुमसे उसे भिड़ाने की.''

''शुक्रिया. अच्छा बंधु, एक बात पूछना तो मैं भूल ही गयी. तुम्हारी शादी हो चुकी है कि अभी तक बैचलर ही हो?''

''शादी हुई तो नहीं है, लेकिन 'तय' पा गयी है. मेरी मंगेतर है एक लड़की.''

''मेरा भी यही खयाल था. इतना बढ़िया माल बाजार में बिना बिक्री के कैसे रह सकता था? कितने में बिके तुम? मेरा मतलब है, तुम्हारी दीदी ने कितने की डिमांड की? बोली कहां तक पहुंची?''

मैंने हंसकर बतलाया, ''अभी तो सिर्फ श्रीगणेश हुआ है. देखो शादी में क्या होता है.'' तभी देखा कि सारे यात्री उठ-उठकर डिब्बों की ओर भाग रहे हैं. पता चला— नया इंजन आ गया. हम दोनों भी अपनी सीटों की ओर लपके....

सरस्वती ने क्षिप्रगति से दोनों सीटें 'एक' कीं. बैग को सीट के नीचे सरकाया, चप्पलें उतारी और वीरासन से अपनी जगह बैठ खिड़की के उस पार निहारने लगी मुंह लिये. दशमी का चांद आकाश के मध्य आ गया था. दूधिया, हल्की चांदनी में नहाये खेतों, बागों और छोटे-छोटे गावों को पीछे छोड़ती ट्रेन तेजी से भागी चली जा रही थी.

सरस्वती मेरा अस्तित्व जैसे भूल ही गयी थी. न तो फिर उसने मेरी ओर रुख किया—न एक शब्द बोली फिर. बैठी रही, बैठी रही उधर को ही मुख किये फिर अनायास ही नीचे की ओर सरकी और गुड़ी-मुड़ी होकर पड़ रही नयन मूंदे—मृदु बांह मोड़ उपधान किये....

मैं तब से बराबर उसे ही निहारता बैठा था. गाड़ी के हिचकोलों से उसका पूरा शरीर धीरे-धीरे हिल रहा था. उसकी सिमटी टांगें क्रमशः फैलती गयीं और अंत में उसके दोनों चरण मेरी गोदी तक आ गये. वो कोमल-कोमल शुभ-स्वच्छ सुंदर-चरण! उन चरणों को मैं अपनी गोदी से नहीं हटा पाया. जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने उन प्यारे-प्यारे चरणों पर अपने हाथ रख लिये धीरे से.

सोचने को विवश हो गया— कितनी निश्चितता से यह मेरे इतने समीप नींद में सो गयी है. यह मेरी कौन है? मेरी कोई नहीं है. फिर भी इसका सामीप्य मुझे कहीं भीतर उद्वेलित कर रहा है. क्यों?

अभी-अभी कितना बोली थी मेरे आगे और अब मौन होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो गयी है मेरी गोदी में अपने चरण रखकर. मुझे अच्छा लग रहा है. क्यों? और मान लो, यह मेरे लिये ही कानपुर चल रही है, शादी के लिये, मेरी दीदी की स्वीकृति के लिये. मान लो, दीदी ने अपनी स्वीकृति दे दी– सहसा माधुरी का मुख मेरे सन्मुख उद्भासित हो उठा. एक ओर माधुरी– दूसरी ओर सरस्वती. मैं मानो इन दोनों के बीच विमूढ़ हो कर खड़ा हूं. मान लो, मुझसे पूछा जाये–तुम किसे 'प्रिफरेंस' देते हो–माधुरी को या सरस्वती को? तब मैं किसे चुनूंगा?

यही सब अनर्गल बातें सोचता, उंघता, सोता, जागता रात का शेष सफर बिताने लगा...

...कानपुर स्टेशन पर उतरे तो पौ फट रही थी. रिक्शा किया. घर आ पहुंचे. दीदी पूजा-गृह के बाहर खड़ी मिली. मैंने आगे बढ़कर चरण छुये तो सरस्वती ने भी चटपट उसका चरण-स्पर्श कर दिया. दीदी भौंचक हो उसे अपलक ताकने लगी. उस दृष्टि से अकुलाकर सरस्वती स्वयं ही कह उठी, ''दीदी, मैं– मैं– इनके साथ– इनके साथ...'' मैंने हंसकर सुनाया, ''ट्रेन में इससे भेंट हो गयी. यहीं आयी है– शुक्लाजी के पास. उनका घर नहीं जानती थी. साथ ले आया. अब उसे पहुंचा दूंगा उनके ठिकाने पर.''

दीदी ने प्रसन्न भाव से कहा, ''अच्छा किया, साथ ले आया. चलो बिटिया, अपना सामान रख लो. शंकर, इसे तू अपने कमरे में ले जा. कुछ संकोच मत कर बिटिया, यह भी तो तेरा अपना ही घर है. जा.'' मैंने अपनी अटैची उठा उससे कहा, ''आओ.''

अपना बैग एक ओर रखकर सरस्वती कुरसी पर जमकर बैठ गयी. एक बार चारों ओर नजरें घुमाकर कमरे का जायजा लिया और फौरन सुनायी पड़ा– ''वेरी फाइन, क्या लाजवाब आशियाना है तुम्हारा! तुम्हारी रुचि की दाद देती हूं बंधु. बड़े प्यारे आदमी से मेरा मिलन हुआ है. प्रभु को लाख-लाख धन्यवाद है. लगता है– किसी पवित्र देव-स्थान पर अचानक आ गयी हूं. बंधु, तुमने दीदी के बारे में जो कुछ कहा था– ठीक वैसी ही तो हैं वे. एक मधुर प्रभामंडल से आलोकित दीदी का मुख देखकर ही विह्वल हो उठी मैं. ऐसी मधुरवाणी है उनकी स्नेह में डूबी कि मुझे पुलक हो आया.''

मैंने यात्रा वाले कपड़े उतारकर उससे कहा, ''चलो, तुम्हें बाथरूम दिखला दूं.''...

चाय पीकर मैं शुक्लाजी का पता लगाने चला गया था कि वे घर पर मौजूद भी हैं या नहीं. लौटा तो देखा– अधर को पीठ किये बैठी सरस्वती दीदी से कुछ कहे जा रही है और दीदी मंद-मंद मुस्करा रही हैं. क्या बखान कर रही हैं? उसके पीछे खड़ा मैं सुनने लगा... ''बस, फिर मैं उसके साथ खरामा-खरामा यहां चली आयी. दीदी, यह जो मेरा बंधु है न, तुम्हारा भाई, यह कबीर का 'शीलवंत कोई एक' है. मुझे वह इत्ता अच्छा लगा है– इत्ता भाया है मुझे कि तुमसे क्या कहूं. बड़ा हीरा-रतन लड़का है. परमात्मा इसे लंबी उमर दें.'' बहुत रोका मैंने अपने को, तुरंत उसके इस आशीर्वाद पर हंसी फूट उठी मेरी. दीदी भी हंसने लगी. वह तत्काल उठकर खड़ी हो गयी, पूछने लगी, ''ताऊजी हैं घर पर? चलूं मैं?''

लालसा

विजय दत्त शर्मा

अखबार पढ़ते हुए चंद्रा की नजर एक वैवाहिक विज्ञापन पर टिक ही गई. तो आखिर रामदयाल ने शादी का विज्ञापन दे ही दिया. पढ़कर उसे लगा कि शुकिया के लिए यह ठीक रहेगा.

दो-तीन दिन पहले ही शुकिया का पिता चंद्रा से मिला था और कहा था, ''बहनजी, मेरी शुकिया के लिए कोई अच्छा-सा वर देखना....''

शुकिया पढ़ी-लिखी थी, सुंदर थी. घर के काम-काज में निपुण थी, परंतु दान-दहेज के अभाव में अच्छे घर का कोई लड़का शादी के लिए हां नहीं कर रहा था. धन्ना चाहता था कि उसकी शुकिया अच्छे घर में जाये इसलिए यह काम उसने चंद्रा को सौंपा था.

अगले ही दिन चंद्रा रामदयाल से मिलने जा पहुंची थी.

रामदयाल सरकारी नौकर था, बाप-दादों की हवेली थी, पैसा था. इसलिए पीना और मौज करना उसके स्वभाव में शामिल था. पहली बीवी मर चुकी थी. सच तो यह था कि रामदयाल ने ही उसे रास्ते से हटाया था. क्योंकि धर्मवती को रामदयाल का शराब पीना कतई बर्दाश्त न था और रामदयाल को उसका रोकना.

रामदयाल के लिए जितनी जरूरी शराब थी उतनी ही जरूरी थी एक स्त्री देह! इसीलिए पहली पत्नी की मृत्यु के फौरन बाद अखबार में विज्ञापन दे दिया था. चंद्रा रामदयाल से मिली. बात पक्की हो गयी और फिर एक दिन आर्यसमाज में मंदिर में शादी संपन्न हुई. धन्ना खुश था कि चंद्रा बहनजी ने जल्दी ही अच्छा वर ढूंढ दिया.

शुकिया ने अपने नये घर को देखा. वह खुश थी–बड़ी-सी हवेली, खूब पैसा.

शुरू के कुछ दिन तो रामदयाल बाहर ही पीकर आता रहा. शुकिया को पता भी न चला कि यह पान की बदबू है या....! लेकिन अब वह घर में ही पीने लगा था. शुकिया को यह अच्छा न लगा. एक दिन उसने अपने मन की बात रामदयाल पर भी जाहिर कर दी.

रामदयाल ने भी नहले पर दहला लगाया और कहा, ''हां प्रिये! शराब छोड़ने की बात मैं भी सोच रहा हूं. तुम कहो, हम कल से ही छोड़ दें!''

मगर वह कल कभी नहीं आया.

शुकिया के खाने-खेलने के दिन चिंता में घुल गए. वह हर तरकीब कर हारी, लेकिन रामदयाल को रास्ते पर नहीं ला सकी. ज्यादा कहती तो रामदयाल का भयंकर रूप....! एक दिन शुकिया ने चंद्रा बहनजी को बुलाकर अपनी व्यथा कह ही डाली. और यह भी कि अगर उन्होंने शराब नहीं छोड़ी तो....!

शुकिया की व्यथा-कथा सुनकर चंद्रा मन ही मन में मुस्करायी और बैग बगल में दबा खटपट सैंडिल बजाती चल दी.

लौटकर दफ्तर पहुंची तो एक बूढ़ा वहां बैठा इंतजार कर रहा था. उसके साथ एक सुंदर-सलौनी किशोरी थी. बोला, ''बहनजी, हमारी यह लड़की...... इसकी शादी की कहीं जुगत लगाओ न!''

सुनकर चंद्रा की बांछें खिल गयीं. 'समाज सेवा' का एक और अवसर.

शुकिया तो चंद दिनों की मेहमान है ना अब! उसने तुरंत कहा, ''बाबा, चिंता मत करो. मेरी नजर में एक लड़का है. भले घर का है. बैंक में नौकरी करता है, पैसा है, हवेली है अपनी....! पर थोड़े दिन तुम्हें इंतजार करना पड़ेगा....!''

''कोई बात नहीं, हम इंतजार कर लेंगे,'' कहकर बूढ़ा चला गया और चंद्रा ने लपककर फोन का चोगा उठाया और जल्दी-जल्दी एक नंबर डायल करके बोली, ''हैलो, डियर रामदयाल, मैं चंद्रा बोल रही हूं.. हां, लाइन क्लियर करो ना!'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने हंसी के बीच ही सुनाया, "शुक्लाजी दिल्ली गये हैं. शाम की गाड़ी से लौटनेवाले हैं." वह धम्म से बैठ गयी नीचे और सिर पर हाथ रखकर निराश स्वर में बोली, "जहं-जहं चरन परैं संतन के तहं-तहं बंटाढार." हम दोनों को फिर एक बार हंसी छूटी उसकी इस चेष्टा पर. मैंने इशारे से दीदी को अलग बुलाया. कोने में जाकर लज्जा-संकोच के बीच शुक्लाजी से हुई बातचीत सुनायी दीदी को. दीदी के चेहरे पर जैसे चमक आ गयी. प्रसन्नता से भरकर बोलीं, "मुझे तो खुद ही तब से संदेह हो रहा था, इसकी बातें सुन-सुनकर कि कहीं यह वही लड़की न हो, जिसके लिए शुक्लाजी मुझसे दो बार बातें कर गये हैं. तेरी गैरहाजिरी में वे आये थे यहां, घंटों बैठे रहे. तो तू शरमा क्यों रहा है लड़कियों की तरह पगले, प्रभु जो कुछ भी करते हैं, हमारे कल्याण के लिये ही करते हैं. शुक्लाजी ने बुलाया है मुझे तो फिर चल न, देर क्यों कर रहा है?"

चलने को तैयार हुए तो दीदी उसके आगे जा बैठी और प्यार से कहा, "सुन लो!" वह सिर डाले उदास बैठी थी. दीदी ने प्यार से पूछा, "तुझे यहां ठहरना अच्छा नहीं लग रहा है क्या? शाम तक का वक्त यहां नहीं काट पायेगी क्या?" वह चौंकी, तड़पी जैसे, तमककर कह उठी, "कौन अहमक कह रहा है तुमसे यह बात? यह बिल्कुल झूठ है— घोर असत्य है कि मैं यहां..." दीदी ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर बीच में ही कहा खुश होकर, "मेरी बात सुन, हम दोनों कुछ देर के लिए बाहर जा रहे हैं. घर-द्वार तेरे सिपुर्द. अकेली डरेगी तो नहीं?"

"डर?" उसने भवें सिकोड़कर कहा, "डर किस चिड़िया का नाम है, सरस्वती नहीं जानती. वह जानती है सिर्फ— जूडो— कराटे— लाठी भांजना, बंदूक चलाना. एन.सी.सी. में रही तो दो बार निशानेबाजी में पुरस्कार पा चुकी हूं. समझीं?" दीदी ने हंसते-हंसते कहा, "समझ गयी. अब तू किवाड़ें दे ले. हम चले."

शुक्लाजी शेव करते उठे थे. हम लोगों को आया देख खिल उठे. "आओ दिदिया, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था. आओ, बैठो." हम दोनों को चटाई पर ही बिठा लिया, खुद भी बैठ गये और प्रसन्नता के मूड में सरस्वती-प्रकरण उठाया, अपनी ओर से बहुत कुछ बोलकर आगे यह कहा, "सरस्वती का पिता माधव शर्मा मेरा बाल्य बंधु था. जहां जिस गांव में उसका पित्रालय था— वहीं मेरी ननिहाल थी. बचपन मेरा ननिहाल में बीता और तभी से मेरी उसके साथ दांत काटी रोटी हो गयी. फिर शहर में भी हम दोनों साथ-साथ पढ़े, आगे बढ़े और फिर साथ ही स्वतंत्रता-आंदोलन में कूदे, साथ ही जेल गये, साथ ही छूटे फिर. देश स्वतंत्र हो गया तो उसे राजकीय पुस्तकालय का लाइब्रेरियन बना दिया गया और मैं गांधी-भंडार में लग गया. —खद्दर बेचने लगा." हंसते गये और सुनाते गये, "माधव तो बचपन से ही किताबी-कीड़ा था. लाइब्रेरियन हो गया तो मानो उसे मुंह मांगी मुराद मिल गयी. उसने मानो पूरी लाइब्रेरी ही चाट डाली. दिन-रात पढ़ता रहा तरह-तरह के ग्रंथ-रत्न और अपना 'ज्ञान-घट' भरता रहा. उसी 'ज्ञान-घट' से फिर हर रात को अपनी एक मात्र संतान, इसी लौंडिया को एक-एक घूंट पिलाता रहा. इतनी थोड़ी उम्र में वह इतनी प्रबुद्ध हो उठी कि जिसका अंत नहीं. तो ज्ञान तो इसे इतना, लेकिन प्रकृति वही बालिका जैसी. ऐसी सरल, भोली-भाली है कि मैं क्या कहूं? माधव अचानक ही बीमार पड़ा और अचानक ही चल बसा. मेरी व्यथा का ओर-छोर न था. पागल हो गया था जैसे उससे बिछुड़कर. पर समय तो हर घाव को भर देता है. अब तो उसकी स्मृति ही शेष है."— मेरी दीदी चुपचाप सुनती रहीं. जरा रुककर आगे बोले, "मंजू बहिन, मैं यह नहीं कहता कि सरस्वती सर्वगुण संपन्न है. उसमें भी जाने कितनी खामियां होंगी, कमियां होंगी, दोष होंगे. सौभाग्य से, फूल स्वयं ही देवता के चरणों में आ टपका है. अब यह देवता की इच्छा पर निर्भर है कि उस फूल को हाथों से उठाते हैं या नहीं. सो अब तुम अच्छी तरह— जी भरकर उसे जांच-परख लो, अपना मन भर लो, तब फिर अपना निर्णय मुझे बतलाना. उससे खाना बनवाओ, कपड़े धुलवाओ, झाड़ू-बुहारी करवाओ और देखो फिर कि उसके माथे पर शिकनें पड़ रही हैं या नहीं."

मेरी दीदी कुछ न बोली तो शुक्लाजी ने कहा, "एक ही बात है झमेले की, मैं तुम्हें बता भी चुका हूं— उसकी मां के पास देने दिलवाने को कुछ नहीं है— दहेज में शायद कुछ भी न दे पायें. देने को बस लड़की ही लड़की है यह. अगर तुम इसी पर संतोष कर सको..."

मेरी दीदी ने पहिली बार मुंह खोला, हौले से बोली, "मैंने दहेज की कभी कोई कल्पना ही नहीं की है."— शुक्लाजी ने गद्गद् कंठ से कहा, "मैं जानता था, तू यही कहेगी. तो अब तू सरस्वती को दो-चार दिन अपने पास ही रहने दे. देख ले उसका शील-सौजन्य, गुण-अवगुण काम का सलीका, अच्छाई-बुराई. मैं उसकी मां को तार किये देता हूं कि मैंने उसे रोक लिया है. लेकिन देखो, तुम दोनों ही उसे वास्तविकता से परिचित मत होने देना— कुछ भी जानने न पाये. मुझे पर्दे के पीछे ही रहने दो. शंकर, तू भाई, एक बार शाम को बाहर निकल जाना, लौटकर कह देना, "शुक्लाजी की खबर आ गयी है. चार-पांच दिन अभी दिल्ली में ही रहेंगे. ठीक है न? दिदिया, अब तुम लोग जाओ. नमस्ते!"...

... हम लोग लौटे तो दस से ऊपर हो रहा था. कालेज जाना न था, अभी दो दिन और अवकाश था मेरा. राह में दीदी एक शब्द न बोली, अचरज लग रहा था. घर में घुसे तो अजीब आलम था— सरस्वती नहा-धोकर गीली केश-राशि छितराये, नीली पाड़ की शुभ्र धोती पहिने, रसोईघर के आगे बैठी अंगीठी सुलगा रही थी— पंखा फट्-फट् करती. कोयलों से उठती हल्की धुंए की रेखा आकाश की ओर चली जा रही थी. सरस्वती का यह नया रूप, ये गीले केश, यह धुली-निखरी मुखश्री, यह अंगीठी पर पंखा झलना, यह आत्मीयता —यह सेवा भाव— एक अव्यक्त मधुर भावना से मेरा संपूर्ण हृदय भर उठा. अकुलाकर अपने कमरे की ओर लपका तो सुन पाया, वह मुझे पुकारकर कह रही है, "बंधु, मैंने तुम्हारे मैले कपड़े धो डाले हैं. अपने भी धोये और तुम्हारे भी. देख लो, अरगनी पर फैले हैं सब." ...दीदी कुछ बोल नहीं रही थी. आंखें फाड़े, स्तब्ध खड़ी अपना घर-आंगन निहार रही थीं. सरस्वती ने सारा घर झाड़-बुहारकर धो डाला था. दीदी मौन साधे ही एक बार पूजा-घर में झांकी, मेरे कमरे में झांकी फिर रसोईघर में झांककर देखा— सब ओर मानो शुचिता छा गयी थी. सारा परिवेश मानो सरस्वती के हाथों का स्पर्श पाकर पावन हो उठा था. यह मात्र दो-तीन घंटे का अध्यवसाय— सरस्वती की लगन— मैं अवाक् होकर कमरे में बैठा था. दीदी मुंह से कुछ न कहकर उसके पास जमीन पर जा बैठी थीं और पागलों की तरह उसे निहारे जा रही थीं.... कोयले सुलग गये हैं, देख पाकर सरस्वती ने पंखा एक ओर रख दिया और उन्मुक्त प्रसन्नता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौदह वर्षीय बिस्मिल

जब मैं उर्दू का चौथा दर्जा पास कर के पांचवें में आया उस समय मेरी अवस्था चौदह वर्ष की होगी. इसी बीच मुझे पिताजी की संदूक से रुपये-पैसे चुराने की आदत पड़ गयी थी. इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता. पुस्तक विक्रेता महाशय पिताजी की जान पहचान के थे. उन्होंने पिताजी से मेरी शिकायत की. अब मेरी कुछ जांच होने लगी. मैंने उन महाशय के यहां से किताबें खरीदना ही छोड़ दिया. मुझमें दो-एक खराब आदतें भी पड़ गयीं. मैं सिग्रेट पीने लगा. कभी-कभी भंग भी जमा लेता था. कुमारावस्था में स्वतंत्रतापूर्वक पैसे हाथ में आ जाने ने और उर्दू के प्रेम-रसपूर्ण उपन्यासों तथा गजलों की पुस्तकों ने आचरण पर भी अपना कुप्रभाव दिखाना आरंभ कर दिया. घुन लगना आरंभ ही हुआ था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की. मैं एक रोज भंग पीकर पिताजी की संदूकची में से रुपये निकालने लगा. नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गयी. माताजी को संदेह हुआ. उन्होंने मुझे पकड़ लिया. चाभी पकड़ी गयी. मेरे संदूक की तलाशी ली गयी. बहुत से रुपये निकले और सारा भेद खुल गया. मेरी किताबों में अनेक उपन्यासादि पाये गए जो उसी समय फाड़ डाले गए.

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गयी, नहीं तो दो-चार वर्ष में न दीन का रहता न दुनिया का.

इसी प्रकार की कुटेवों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका. तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की. पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना नहीं चाहते थे बल्कि किसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे, किंतु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया. दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ उसी समय पड़ोस के देव मंदिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली थी, एक पुजारीजी आ गए. आप बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे.

मैं मंदिर में जाने-आने लगा. कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा. पुजारी जी के उपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ. मैं अपना अधिकतर समय स्तुतिपूजन तथा पढ़ने में व्यतीत करने लगा. पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का खूब उपदेश देते थे. वह मेरे पथ-प्रदर्शक बने. मैंने एक दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरंभ कर दिया. अब तो मुझे भक्ति मार्ग में कुछ आनंद प्राप्त होने लगा और चार पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा. मेरी सब बुरी आदतें तथा कुभावनायें जाती रहीं. स्कूलों की छुट्टियां समाप्त होने पर मैंने मिशन स्कूल के अंग्रेजी के पांचवें दर्जे में नाम लिखा लिया. इस समय तक मेरी और सब कुटेवें तो छूट गयी थीं, किंतु सिग्रेट पीना न छूटता था. मैं सिग्रेट बहुत पीता था. एक दिन में पचास-साठ सिग्रेट पी डालता था. मुझे बड़ा दुःख होता था कि मैं इस जीवन में सिग्रेट पीने की कुटेव को न छोड़ सकूंगा. स्कूल में भरती होने के थोड़े दिनों बाद ही एक सहपाठी श्रीयुत सुशीलचंद्र सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया. उन्हीं के कारण मेरा सिग्रेट पीना भी छूट गया. □

(रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा से)

भरी कहने लगी, "दीदी, तुम्हारे पीछे एक छोटी-सी घटना हो गई यहां. गंदे पानी की बाल्टी लेकर मैं बाहर नाली में डालने गयी. मैंने पानी उछाला कि ठीक उसी क्षण में एक बुड्ढा फलवाला मुसलमान बीच में आ गया. बाल-बाल बचा वह. वर्ना गंदा पानी ठीक उसके जूतों पर पड़ता— छींटे तो फिर भी पड़ ही गये जूतों पर. मैंने घबराकर नीचे को झुककर उसे 'सलाम' किया और विनय करके कहा, 'अब्बा जी, मुझसे गलती हो गयी. माफी चाहती हूं.' ... तो उस बूढ़े मुसलमान ने क्या किया— जानती हो? अपना फलोंवाला टोकरा हमारे चौंतरे पर रख दिया और खुश होता बोला, 'माफी क्यों मांग रही हो बिटिया रानी, तुमने तो ऐसी कोई खता ही नहीं की है, और मान लो पानी मेरे ऊपर पड़ ही जाता, तो कौन गजब हो जाता? मान लो, मेरी अपनी बेटी ही अनजाने यह गलती कर बैठती, तब? और तुमने अभी मुझे 'अब्बा जी' कहकर पुकारा है, तो तुम भी तो मेरी बेटी हुई न?' — और इतना कह उस वसीयदिल वाले ने अंगूरों का एक गुच्छा उठाया और मुझे पकड़ाता बोला, 'ये ले अपना इनाम— पानी फेंकने का.' —हंसा खूब और टोकरा उठाया और आगे चला गया.— मैंने तभी भीतर आकर धीरे-धीरे आधे अंगूर टूंग लिये और आधे रख दिये बंधु के लिये. अंगूर खूब मीठे थे. मजा आ गया. दीदी, मैंने अंगूर धोये भी नहीं. धोती भला कैसे? वह जो 'अब्बा जी' के स्नेह भरे हाथों का स्पर्श उनमें लगा था— वह धुल जाता— इसलिये. दीदी, इस चराचर विश्व में प्यार— करुणा— स्नेह— ममता— इनसे बढ़कर मूल्यवान और कुछ नहीं है. मैं सच कहती हूं, तुम मुझे वही प्यार दे दो— बदले में चाहे मेरी जान ले लो." — वहीं से चिल्लाकर बोली, "बंधु, तुम्हारे अंगूर वहीं मेज पर रक्खे हैं. खा लो."

मेरी दीदी गद्गद् हो रही थी उसकी बातों पर कि वह कह उठी, "दीदी, मैंने अंगीठी सुलगा ली है. मेरी प्रबल इच्छा हो रही है कि आज का खाना मैं ही बनाऊं. दीदी, क्या— क्या बनेगा— यह तुम मेरी पसंद पर छोड़ दो. मैंने सब देख-भाल लिया है. यह तो माता अन्नपूर्णा का भंडार है. सभी कुछ तो है यहां. शाक-सब्जी भी है, थोड़ा दही भी है. आज जरा अपनी सरस्वती का पाक-कौशल भी तो देखो तुम. दीदी, आज्ञा है न? तो अब मुझे लग जाना चाहिये. शुभस्य शीघ्रम्." मेरी दीदी का शायद कंठावरोध हो रहा था. कठिनता से कह पायी, "ठीक है, तुम्हीं बनाओ खाना."

इतने सालों से दीदी के हाथों बना खाना खाता आया हूं. उस स्वाद से चिरपरिचित हूं, परंतु सरस्वती के द्वारा बनायी गयी, रोजमर्रा की वे ही साधारण चीजें— दाल, तरकारी, सूखी सब्जी और रायता, आज अपने विशेष आस्वाद का परिचय दे रही थीं. मुझे हर चीज इतनी अधिक स्वादिष्ट क्यों लग रही है?— खाते समय, खाकर कमरे में आकर लौटने पर भी यह प्रश्न मेरे मन में उठता ही रहा.

यहां लेटा-लेटा ही सुन रहा हूं— सरस्वती बोल रही है, "दीदी, उपनिषद कहता है— 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' — दूसरों को खिलाकर जो बच रहे, अन्न खाना चाहिये. दीदी, मेरे स्वर्गीय पिता जब तक जिंदा रहे— प्रायः प्रतिदिन ही कोई न कोई अतिथि हमारे यहां भोजन करता रहा. पिता स्वर्ग चले गये, अतिथियों का आना रुक गया. तो भी यदा-कदा कोई गांव से आ जाता, गाहे-बगाहे ये ताऊजी ही पहुंच जाते, तो मुझे इत्ती खुशी लगती कि क्या बताऊं!— नहीं तो मेरी मां खाना बनाकर सबसे पहिले अपनी गौमाता को 'गोग्रास' खिलाती, अपने तोताराम को कटोरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरती, कुतिया को रोटी दे देती, फिर मुझे पुकारती.

दीदी, मेरी इतनी उमर हो गयी, पर अब भी मां मुझे अपने साथ एक ही थाली में खाना खिलाती है. मां के साथ बैठकर एक थाली में खाते जो परमास्वाद का अनुभव होता है– सारी दुनिया के स्वाद उसके आगे तुच्छ लगते हैं दीदी. यह रायता इसी कटोरी में तुम्हें दे दूं न?'' ∴पलंग पर पसरा मैं थोड़ा उनींदा हो रहा था कि वह आन पहुंची. कुरसी खींचकर मेरे नजदीक डाल ली और सहसा ही पूछ बैठी, ''बंधु, भोजन कैसा लगा? दीदी के हाथों बने भोजन की तरह ही स्वादिष्ट लगा न?''– मैंने जवाब दिया, ''खूब स्वादिष्ट लगा.''

वह जरा रुकी, फिर कहने लगी, ''यह स्वाद कहां से आता है, क्यों आता है, जानते हो? किसी रोगी व्यक्ति के पास बैठो तो रोग के कीटाणु लग जाने का भय रहता है. ठीक इसी तरह मानव की भावनाओं, सद्-असद् विचारों के असंख्य 'अणु' उसके समस्त शरीर से प्रवाहित होते रहते हैं, जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि किसी तरह देखे नहीं जा सकते.

अब यह जो एक मधुर प्रेम की भावना होती है–जन्मजात, शाश्वत और सहज प्रेमभावना– हर नारी के हृदय में, उसी प्यार के असंख्य, अदृश्य अणु-परमाणु नारी के तन और मन से निर्झरित होते रहते हैं. भोजन का यह स्वाद उसी प्रेममयी भावना का होता है. उसके हाथों का स्पर्श होते-होते हर खाद्य पदार्थ में प्यार के वे अणु घुल-मिल जाते हैं, तो एक तो प्यार का स्वाद दूसरा अन्न का स्वाद– ये दोनों स्वाद मिलकर एक अपूर्व आस्वाद की सृष्टि कर देते हैं. यही रहस्य है इसका...

बंधु, जितनी देर खाना बनाती रही, उसी प्यार में डूबी रही– तुम्हारे लिये,दीदी के लिये प्यार उमड़ता रहा. मनःप्राणों में. प्यार झरता गया, खुश होती गयी खाना बनाती गयी.

बंधु, भगवान की इस सुरम्य सृष्टि में, प्यार से बढ़कर महिमाशाली वस्तु और कोई नहीं है. तुम मेरी बात का विश्वास करो. इसी प्यार को लेकर अभी-अभी क्या हुआ है– जानते हो? सुनो, दीदी के साथ एक ही थाली में खाकर आ रही हूं मैं. भला सोचो तो, एक अज्ञात कुलशीला लड़की को एक परम शुचिता का पालन करने वाली नारी अपने साथ बिठाकर खिला रही है! यह दृश्य अगर तुम देख पाते...

और ठीक मेरी मां की तरह दीदी कहे जा रही थीं, 'और खा, और खा.' और मैं उनकी आज्ञा मानती गयी, खाती गयी और खाती गयी. समझो कि 'भोजन भट्ट' हो गयी. अब मेरे उदर की स्थिति जरा गंभीर है. इसीलिये तुम्हारे पास चली आयी– थोड़ी गपशप करूं– थोड़ा पाचन हो. क्या मैंने, तुम्हारी दिवा-निद्रा में विघ्न डाला है? उठ जाऊं क्या?''

''नहीं-नहीं, बैठो तुम, जी भरकर गपशप करो. मजा आ रहा है.'' मैंने कहा.

''तो फिर उठकर बैठो न, तुम लेटे-लेटे सुनोगे और मैं बकती रहूंगी. बंधु,'ठीक नहीं लग रहा है.'' मैं लेटे से उठ बैठा. कहा; 'अब सुनाओ!''

बोली, ''बहुत ही मधुर क्षणों के बीच समय बीत रहा है– शाम तक, रात तक यह आनंद उपभोग करती रहूंगी. फिर ताऊजी आ जायेंगे. सबेरे तुम मुझे साथ लेकर उनके यहां पहुंचोगे और फिर मेरी 'अग्नि-परीक्षा' की घड़ी आ जायेगी. बंधु, केस सीरियस है, इसलिए तुम इसे सीरियसली सुनो. मैंने दीदी को राजी कर लिया है. वे मेरे साथ ही उस बुढ़िया के पास जायेंगी और फिर नमक, मिर्च, मासाला लगाकर मेरी तरफ करेंगी कि–ऐसी लड़की तुम्हें कहीं ढूंढे न मिलेगी. बुढ़िया के आगे सारी बातें दीदी ही बोलेंगी. मुझसे 'डाइरेक्ट' कुछ पूछा जायेगा तो मैं सिर झुकाये अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में उत्तर दूंगी. दीदी ने मुझे सिखा दिया है. छोटा-सा घूंघट काढ़े बैठी रहूंगी, चुपचाप जमीन की ओर ताकती–यह सब तय हो चुका है. तो इधर वाला मोर्चा तो समझो दीदी ने सम्हाल लिया है– फतह होगी हमारी. अब उधर वाला जो मोरचा है, उसे तुम अपने जिम्मे लो. मेरा मतलब है, वह जो कोई एक्स-वाई-जेड है लेक्चरार– उसे शादी के लिए राजी करना है तुम्हें. पूरी ताकत लगाना बंधु– 'आपत काल परखिये चारी– धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी' सो तुम्हारी भी समझो परीक्षा है. मित्र की कर्तव्य-निष्ठा का पालन करना है. और देखो, तुम जो कुछ भी मेरे विषय में कहोगे– सत्य ही कहोगे! भली-बुरी जैसी भी हूं– तुम्हारे सामने हूं और तटस्थ होकर मैं स्वयं ही अपना 'आत्म-निरीक्षण' करती हूं तो 'फिट' पाती हूं अपने को किसी की भी 'जीवन-सहचरी' बनने के लिये.'' वह जरा रुकी, फिर कहने लगी, ''बस, एक ही त्रुटि है मुझमें. बहुत बड़ी खामी कहो, दोष कहो– वह है– मेरा वाचालपना, बहुत ज्यादा बोलती हूं मैं– जरूरत से ज्यादा. परंतु बंधु, यह जो मेरी 'बक-बक' करने की आदत पड़ गई है, इसका रहस्य जानते हो? वस्तुतः यह मेरे स्वर्गीय पिता की अनोखी देन है....

वे अपने पुस्तकालय से कोई भी ग्रंथ लाकर मुझे दे देते. मैं उसे पढ़ती रहती–पढ़ती रहती. जब पूरा पढ़ लेती तो पिता मुझसे पूछने बैठ जाते. उसी ग्रंथ से संबंधित प्रश्न उठाते और मैं उत्तर देती. इसी में फिर बहस छिड़ जाती बाप-बेटी में. समझो, तगड़ा शास्त्रार्थ होता. पिता कभी गरम हो जाते तो मैं भी जोर-जोर से बोलने लगती. पिता कभी डांट कर कहते, 'एक झापड़ दूंगा अभी!' – तो मैं कहती, 'मारो, मैं तुम्हारे हाथ में काट खाऊंगी.' और तब पिता ठहाका मारते, मैं भी खिलखिलाती. अजीब दृश्य हो जाता था वह...

बंधु, वे दिन याद आते हैं तो कलेजा मुंह को आता है. कहां चले गये मेरे प्यारे पिता, कहां– किस नक्षत्र लोक में जा बैठे, सरस्वती को इस भवसागर में अकेला तैरते छोड़कर!'' कहते-कहते वह उदास हो गयी और खिड़की के उस पार अनंत आकाश को ताकती जाने क्या सोचने लगी. मेरी समझ में नहीं आ रहा था, क्या कहूं उससे!

तनिक देर बाद, मानो उसने याद करके कहा, ''बहुत दिन हुये, हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़े. उसमें एक प्राचीन कवि का जीवन-परिचय पढ़ा था. कोई युवा संन्यासी था, जिसने बहुत-सा ज्ञान अर्जित कर लिया था– मेरी तरह. पचा नहीं पाया था– मेरी तरह. इसलिए सदा 'बक-बक' करता रहता था– मेरी तरह. हर किसी से शास्त्रार्थ करने बैठ जाता और तर्क-कुतर्क करने अपना पक्ष सही सिद्ध करने की चेष्टा करता. देख पाकर एक दिन गुरु ने खिन्न होकर उससे कहा, ''अरे दुष्ट, इससे तो अच्छा था–तेरी जीभ, चाम की न होकर, काठ की होती.'' युवा संन्यासी कवि ने अनुताप करके एक छोटा-सा काठ का खोखा बनवाया और अपनी जीभ उसी काठ के खोखे में डालकर जीवन यापन करने लगा. उसने यों वाक्-संयम कर लिया. उसकी कविता के कुछ दो-चार उदाहरण दिये गये थे इतिहास में. उन्हीं में यह पंक्ति मैंने पढ़ी, 'पुनि जीभ काठ सों मढ़ि लई' बंधु, यही उस 'काष्ठ जिह्व स्वामी' की सत्य कहानी है. पढ़कर दिल भर आया था मेरा. मैं भी ऐसा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लूं. 'काठ की जीभ' बनवा लूं. पर वह तो पुरानी कथा है. आज के युग में भला वह प्रक्रिया कैसे चल सकेगी? सोचती हूं, सारे असाध्य रोगों पर नयी-नयी दवाओं के आविष्कार हो रहे हैं. तब शायद किसी मनोवैज्ञानिक ने इस रोग की दवा भी ईजाद की हो. कोई कैप्सूल हो ऐसा कि जिसके सेवन से आदमी मितभाषी हो जाय. क्या यह संभव नहीं है?''

मैंने इस पर अपनी कोई सम्मति न दी...

परंतु उसने इधर ध्यान न दिया. जरा रुक कर आगे कहने लगी— ''प्राध्यापक, मेरी सहेलियां और मेरी मां— सभी मेरे इस अक्षम्य अपराध को क्षमा देते रहे हैं. यहां आयी हूं तो तुम और दीदी भी मेरे दिये इस कष्ट को सहे जा रहे हो. पर वह जो कोई एक्स-वाई-जेड है, शादी होने के बाद, वह मेरी इस गुस्ताखी को माफ कर पायेगा या नहीं, यह एक अहम् सवाल जरूर है. परंतु बंधु, पहिले शादी भी तो हो. गांव बसने नहीं पाया, बिल्लियां रोने लगीं. अच्छा बंधु, मान लो— दीदी के लाख समझाने पर भी वह बुढ़िया नहीं माने, तुम्हारी हजार कोशिशों पर भी वह लेक्चरार राजी न हो, तब? तब क्या होगा? तुम्हारा क्या खयाल है? सरस्वती घोर निराशा में डूब जायेगी? नहीं बंधु, ऐसा कुछ भी न होगा. ईश्वर जानता है, मेरे मन पर इस दुर्घटना का रंच मात्र असर न होगा, विश्वास रक्खो. मैं तुम्हें यात्रा में ही बता चुकी हूं और फिर बतला रही हूं— शादी मैं केवल अपनी मां की उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के लिये कर रही हूं और इसे मैं कोई आत्म-बलिदान मानती होऊं— ऐसा भी नहीं है. जिसने मुझे जन्म दिया है, बेशुमार दुःख-दर्द कष्ट सहकर मुझे पाला-पोसा है, पढ़ाया-लिखाया है, दिन-रात मेरे ऊपर अपने प्राणों की छाया किये रही है— तो उसका यह जो इतना भारी ऋण लिये बैठी हूं— उस ऋण का थोड़ा-बहुत निस्तार ही कर पाऊंगी, कोई 'त्याग' नहीं होगा यह, जिसकी डींग हांकूं.

परंतु अगर यहां भी नाकामयाबी होती है, तो मैंने सोच रक्खा है कि यही मेरे विवाह-प्रकरण का अंतिम अध्याय होगा. एंड इट इज़ माई डिटरमिनेशन— इस कांड के बाद फिर मैं हरगिज शादी न करूंगी. मां को समझा लूंगी, मां को समझना ही पड़ेगा— क्या किया जाय! 'जब लिखा न विधि सरसुती विवाहू.'...

बंधु, यह जो जरा-सी जिंदगी है मेरी, इससे अगर कोई सार्थक कार्य सिद्ध हो सके तो मैं अपना नारी-जीवन सफल मानूंगी. जाने कितने कार्य मेरे लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं— बड़ी लंबी लिस्ट है उनकी. देखो, कितना क्या कर पाती हूं. बर्नार्ड शा ने कहा है कि आदमी की उम्र कम से कम तीन सौ साल होनी चाहिये. सौ साल तक तो वह बच्चा ही रहता है, जब कुछ समझने के काबिल होता है तो कब्र में जा सोता है. मुझे जफर का यह कलाम अक्सर याद आता रहता है...

'उम्रे दराज मांगकर लाये थे चार दिन,
दो आरज़ू में कट गये, दो इंतजार में.'

पर मेरी आरज़ू क्या है? मैं तो अपने नारायण से यही कहती हूं— **'यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते'**— देवता और पितर जिस मेधा की उपासना करते रहे— प्रभु, मुझे वही 'मेधा' दे दो— और कुछ नहीं चाहिये मुझे. प्रकाश की एक किरण दे दोगे तो उसी के सहारे मेरी छोटी-सी नैय्या पार लग जायेगी...

मुझे संस्कृत 'एपिक्स' पर कुछ गंभीर गवेषणा करनी है, पुराणों के कुछ महत्वपूर्ण अंशों पर सार्थक वर्क करना है. सृष्टि के काल-क्रम के विषय में जो सामग्री छितरी पड़ी है, उसका संचय करके वास्तविक तथ्यों को उजागर करना है. अपने स्वर्गीय पिता की अंतिम इच्छा— मैं हर हालत में उसे पूर्ण करके ही दम लूंगी, चाहे कितने ही साल लगें— पूरी जिंदगी लग जाय मेरी. तो बंधु, यह तो मेरा बाहुबल है, लोक बुद्धि है-इसका उपयोग मैं दूसरी ओर करूंगी— बल्कि कहो, कर रही हूं.

मैंने एक 'मोरचा' खोल रक्खा है, जिसमें शुरू-शुरू में पड़ोस की सिर्फ पांच लड़कियां शरीक हुई थीं और अब उनकी संख्या बढ़कर बीस के करीब हो गई है. हमारी यह छोटी-सी सेना, जिसकी मैं ही सी.इन.सी. हूं.— यानी कमांडर इन चीफ— अपने रूप में एक 'चीज' है. अपने कर्त्तव्यों में बराबर संलग्न है. कितना उत्साह है उन सब लड़कियों में, बतला नहीं सकती. उन्हें झखझोरती रहती हूं कि ऐसे रहो, ऐसे चलो, ऐसे बढ़ो. नादानो, यह तुम्हारे 'मेक अप' का जमाना नहीं है— 'वेक अप' का है. आंखों से दीख नहीं रहा है तुम्हें कि—पूरा 'नेशन' बीमार हो गया है. पूरा देश ही रोगी है. तुम इस ओर से चलो, अपनी नारी-जाति की नब्ज पकड़ो. गरदन की कौन-सी नस टूट गयी है उसकी, कलेजे में कहां गहरा घाव है चेक-अप करो तुम. इलाज करो कुछ.

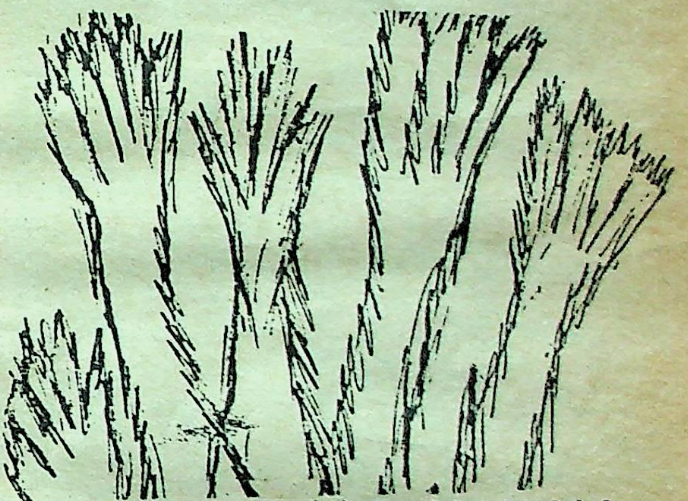

आपरेशन करो. मेक-अप करने को तो सारी जिंदगी पड़ी है. फिर सज लेना, अभी नहीं....

बंधु, मेरी कुछ 'जासूस' हैं, जो घर-घर जाकर गुप्त रूप से पता लगाती हैं कि—किस बंद मकान में किस नारी पर क्या अत्याचार हो रहा है और फिर हम उसका कुछ न कुछ प्रतिकार खोजते हैं. केस गहरा हुआ तो फिर पुलिस को इनफार्म करते हैं. अखबारों में रिपोर्ट देते हैं. लेकिन बंधु इस प्रसंग में मुझे एक बड़ा विचित्र अनुभव हुआ. मैंने पाया— नारी ही स्वयं नारी की असली दुश्मन है. एक नारी दूसरी निर्बल नारी पर जितना जुल्म ढाती है, कोई मर्द शायद वैसा कभी न कर सके. कितनी अजीब बात है यह! इस प्रसंग में, हमारा गत वर्ष का रेकार्ड है— दो केस दहेज के, चार केस बहुओं पर उत्पीड़न के. तीन केस भ्रष्टाचार के और एक केस बलात्कार का. यही छोटी-सी सूची है हमारे निरंतर जारी क्रिया-कलापों की. लो, अपनी फौज की कारगुजारी का एक ताजा-तरीन किस्सा तुम्हें सुनाऊं, मेरी जासूस ने आकर खबर दी— गली के नुक्कड़ वाला पंडिता ब्राह्मण का बच्चा अपने दो बेटों के साथ हेरोइन, चरस वगैरह का धंधा करता है. रात के अंधेरे में गाहक आते हैं, पुड़िया खरीदते हैं, और कभी-कभी लंबा हाथ मारा जाता है. हजारों के वारे-न्यारे हो जाते हैं पंडिता के...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन डूबे, शाम के झुटपुटे में, तकरीबन बीस लड़कियां, गली के बीच खड़ी, भोंपू लगाकर जोर-जोर से चीख रही थीं, ''जहर के सौदागरों का नाश हो— नाश हो.' 'कौम को मारनेवाले— मुर्दाबाद— मुर्दाबाद' ... 'नशीली चीजों का धंधा करने वाले— मुर्दाबाद— मुर्दाबाद.'

गली में दोनों ओर सारे मकानों की खिड़कियां खुल गयी थीं. लोग-लुगाइयां और बच्चे-कच्चे झांक रहे थे और खुश हो रहे थे. सिर्फ पंडिता की खिड़कियां बंद थीं.—आधा घंटा चीखकर सेना लौट आयी.

...हमने दो दिन प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा की. पता चला— कुछ भी भाव नहीं हुआ है. धंधा-चालू है— तब सी.इन.सी. को फिर बिगुल बजाना पड़ा. परंतु इस बार हमने जो नारे लगाये— बहुत वज़नी थे.

'इन पापियों को कोई दो अंजलिं पानी देने वाला न रहे!' 'जहर के सौदागरों की औलाद को भवानी उठा ले जायें. इनके तन गल जायें— इनका सर्वनाश हो जाये.' — मेरे सैनिक चिल्लाते रहे. कोई रोकने न आया हमें. चीखते-चीखते गले पड़ गये तो चले आये सीना ताने...

और बंधु, दूसरे ही दिन पंडिता की घरवाली मेरी मां के पास भागी-भागी आयी. पैर पकड़ लिये मां के. गिड़गिड़ाकर बोली, ''अपनी बिटिया को रोक लो. हमें ऐसे न सरापें. कन्याओं का शाप

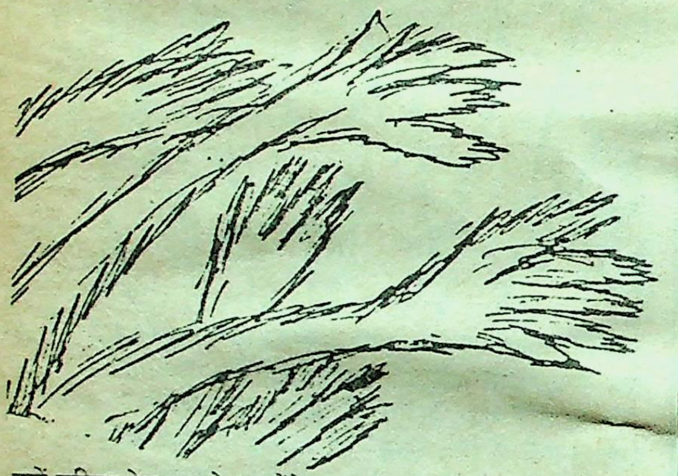

हमें मटियामेट कर देगा. मैंने धुन्नू के बापूका धंधा रुकवा दिया है. गंगा मैया की सौंगंध, धंधा नहीं करेगा वह. दोनों बेटों के सिर की कसम खा रही हूं— उन्हें यह धंधा नहीं करने दूंगी. नहीं करने दूंगी.''

''...और बंधु, अपने मुहल्ले में, हेरोइन—चरस की बिक्री इस तरह बंद करा दी हमने. बहुत छोटा-सा काम हुआ यह. पर कुछ हुआ तो सही. 'बूंद-बूंद से घट भरे'— यों ही बढ़ते-बढ़ते कभी हम बड़े काम भी कर पायेंगे. मैं तो यही विश्वास पाले हूं— आगे ईश्वरेच्छा.''

...सोचा तो बहुत कुछ है— अब जितना कर सकूं. और अगर बीच राह में ही मौत आन पहुंची मेरी अयादत को? तो फिर चले जायेंगे हम, कोई गम नहीं. 'लायी हयात—आये! कजा ले चली-चले अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले.'

''जाऊं, दीदी के कमरे में जाऊं, थोड़ी देर लोट लगाऊं.''— कहकर वह उठ गयी थी. मैं पलंग पर आंखें मूंदे, चित पड़ा यही सोचता रहा कि— कहां से, भोजन के स्वाद से, उसने बात उठायी थी और फिर कहां—मौत पर जाकर बात तोड़ दी.— कैसा अनोखा व्यक्तित्व है यह! आज तक मेरा अनदेखा और अनजाना. सोने की चेष्टा करने लगा. नींद न आयी. उठ बैठा. बाथ-रूम गया. हाथ-मुंह धोकर उधर से लौट रहा था. नजर चली गयी, देखा— दीदी लेटी है, उनके पायंते बैठी सरस्वती कुछ कह रही है. क्या कह रही है? ओट में खड़ा होकर सुनने लगा, ''दीदी, अभी मैं तुमसे श्रीमद्भागवत की बात कह रही थी न, दीदी, दशमस्कंध में भगवान वेदव्यास ने जो प्रभु की रामलीला का वर्णन किया है... उस 'महारास' का रहस्य भला साधारण पाठक कैसे समझ सकता है? रहस्य तो रहस्य होता है— छिपा हुआ ही अच्छा लगता है. दीदी, मैं अल्पबुद्धि जो कुछ जान पायी हूं, वह यही है कि— यह जो आदमी का अहंभाव है— अहंकार की दुर्घटना है— इसका नाश किये बिना प्रभु के निकटस्थ होना असंभव है. तुम चाहे कितने ही भक्ति के राग अलापते रहो— विश्वात्मा से तुम्हारा सायुज्य नहीं ही होगा. यही यह गूढ़ रहस्य है दीदी जिसे भगवान् वेदव्यास ने अपने महाकाव्य के माध्यम से हम अज्ञानियों के कल्याण हेतु गुंफित कर के रख दिया है. और दीदी, बाइबिल पढ़ती रही हूं मैं. आहा, महाप्रभु ईसा की अमृतवाणी मैंने सुनी. गद्गद् हो गई. प्रभु ईसा कहते हैं— 'सारे पापों की क्षमा है, परंतु अहंकार एक ऐसा पाप है, जिसकी कोई क्षमा नहीं.' —देखो तो, कहां भारत भूमि— कहां जेरूसलम! परंतु एक ही वाणी—एक ही स्वर— एक ही ध्वनि— यहां से वहां तक गुंजरित हो रही है. समस्त विश्व एक है, सारे मानव एक हैं. संसार के सारे मानवों के हृदय एक हैं. हाय, यह सब मैंने जिस दिन जाना— विह्वल होकर रोई मैं. ओ मेरे पिता तुम कहां हो? मुझ अकिंचन को ज्ञानदीप दिखाने लगे, तुम कहां चले गये?'' सरस्वती की आवाज रुक गयी. सरस्वती सिसक रही है क्या? मैं कान लगाये खड़ा रहा— खड़ा रहा. और तब अपनी दीदी का मोह भरा स्वर सुन पाया, ''इधर आ, मेरे पास आ.'' सरस्वती दीदी के पास को सरकी है शायद. दीदी ने उसकी पीठ पर हाथ रख दिया है सांत्वना का, या दीदी ने उसे अपने पास लिटा लिया है, अपने कलेजे से सटा लिया है, और फिर दोनों मूक रह गई हैं. मैं कुछ नहीं देख पाया, कुछ नहीं जान पाया. दबे पैरों अपने कमरे में चला आया...

जैसा कि शुक्लाजी ने प्लान बना दिया था.— मैं बाहर गया और दिन डूबते-डूबते लौट आया. घर में घुसा. देखा—दीदी कनस्तर सामने रक्खे आटा छान रही है और सरस्वती पास बैठी चाकू से सब्जी काट रही है. मैं उसी के आगे जा खड़ा हुआ. संदेश सुनाया— शुक्लाजी दिल्ली से नहीं लौटे. ब्राह्मण सेवक के नाम चिट्ठी आयी है— दस-ग्यारह तारीख तक लौटेंगे. आज सात तारीख है.

सरस्वती ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की. उसी तरह चाकू चलाती रही. मैं कमर पर दोनों हाथ रक्खे उसके सामने खड़ा था. कुछ कहे यह... उसने आखिरी आलू के टुकड़े किये. चाकू नीचे रक्खा. फिर दोनों घुटनों को हाथों में लपेट, शांत स्वर में कहने लगी, ''अच्छा हुआ, ताऊजी नहीं आये. अब भाड़ में जाय वह खूसट बुढ़िया और उसका लल्लू-मटल्लू. धूल डालो इस किस्से पर. हो गई सरस्वती के विवाह-प्रकरण की इतिश्री. झमेला खतम 'इट इज आल फार द बेस्ट'— ईश्वर जो कुछ करता है, भला ही करता है. जान बची तो लाखों पाये—लौट के बुद्धू घर को आये. अब आज की रात चैन से घोड़े बेच कर सोऊंगी— फिर कल सबेरे ही अपना कूच है. शाम तक घर पहुंच जाऊंगी. मां को सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाचार सुनाऊंगी. मां जरूर दुखी होगी. उसे समझाऊंगी, 'तकदीर में यही था... मैया मेरी, मत रो, सावन के बादलो!' अरे ये बीच में बादल कहां से आ गये!'' उसने सिर उठाकर आसमान को ताका– आसमान साफ था और वह खिलखिला उठी. हम लोग भी हंसने लगे. हंसी रुकी तो जैसे याद करके बोली, ''दीदी, हरा धनिया तो है न? लाओ, उसे भी काट दूं.''...

...सबेरे सोकर उठा तो पूजा-गृह से एक नहीं– दो मधुर-मधुर गीत ध्वनियां यहां तक बहती चली आ रही थीं. लपक कर उधर गया. देखा– राधाकृष्ण की पावन प्रतिमा के आगे दीदी से सटी बैठी, नहायी- धोयी.सरस्वती, हौले-हौले मजीरे बजाती दीदी के स्वर में स्वर मिलाकर मधुर कंठ से गा रही है– ''मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई.'' प्रतिमा के आगे मंद-मंद दीपक जल रहा है. अगरबत्ती की सुगंध उठ रही है. एक अवर्णनीय श्रद्धाभाव से हृदय उद्वेलित हो उठा इस पवित्र मधुर-परिवेश को देखकर...

याद आया– यह तो इसी सवेरे वाली ट्रेन से कूच करने वाली थी सो क्या हुआ? रुक क्यों गयी? पता चला– दीदी ने रोक लिया है. आज बुधवार है– यात्रा के लिये शुभ दिन नहीं है...

...वह दिन कैसा बीता, क्या सुनाऊं? लगता रहा– सारे घर में, आंगन में, कमरों में– हल्का– हल्का आनंद बह रहा है. उसकी मीठी हरकतें, उसके भाष्य– कभी खुद ही हंस उठती. कभी दीदी को हंसा देती, कभी हम तीनों मिल कर ठहाके लगाते रहते.....

...दिन बीत गया. रात बीत गयी. सबेरा हो गया. आठ वाली ट्रेन से उसे जाना था. उसने जल्दी-जल्दी अपना बड़ा बैग सम्हाला. यात्रा वाला वही ड्रेस पहिन लिया. आंगन में आ खड़ी हुई.

अब दृश्य यह था कि– दीदी खड़ी थी उदास-उदास चेहरा लिये, दीदी के आगे सरस्वती खड़ी थी और उसके पीछे मैं खड़ा था– स्टेशन तक साथ जाने के लिये. तब सरस्वती अचानक ही कह उठी, ''दीदी,बंधु की शादी में मुझे तुम जरूर बुलाना. भूलना मत. एक बार और इस आंगन की सुगंध पा लूंगी, एक बार और छोटा-सा सुख पा लूंगी– यहां दो दिन रह कर. अच्छा दीदी, अब हम चल दिये– 'उड़ चले पंछी– यहां से उड़ चले– तीन दिन तरु पर बसेरा कर चले.' उसने एक बार चारों ओर हाथ जोड़े. अपना बैग कंधे पर लटकाया, पर पैर न उठाये यात्रा-हेतु. और जाने कैसी होकर कह उठी, ''हाय दीदी, यहां से जाने को जी नहीं हो रहा है मेरा– क्या करूं?''

आंखें छलछलायी हुई–होंठों पर बेमालूम सी मुस्कान– दीदी ने मोह से कहा, ''तो मत जा, और दो-चार दिन रहले यहीं, अभी मत जा.''

दुखी स्वर में बोली, ''जाऊं कैसे नहीं, वह जो वहां बैठी है कोसों दूर– मेरी अम्मीजान, मेरे नाम को रोती. आज अगर न गयी तो अकुला कर मर जायेगी.'' कहते-कहते उसने बैग कंधे से उतार दिया. आगे बढ़ी. नीचे झुकी. दीदी के एक चरण से अपना मस्तक लगाया, फिर दूसरे चरण से मस्तक लगाकर उठ खड़ी हुई. दीदी ने उसकी पीठ पर स्नेह भरा हाथ रख दिया. बिना एक शब्द बोले उसने पुनः अपना बैग उठा लिया और बिना किसी ओर देखे, सिर नत किये बाहर को चल दी. दीदी यों ही मूर्ति बनी खड़ी रही. मैंने सरस्वती का अनुगमन किया... ट्रेन में, खिड़की के पास वाली सीट पर उसे बिठा कर मैं बाहर आ खड़ा हुआ. वह मौन बैठी थी. मैं खिड़की पर एक हाथ रक्खे खड़ा था. सहसा उसे जाने क्या हुआ,

लघु कथा

खिलाफ हिंसा के

अशोक गुजराती

अचानक शोर उठा तो मैंने बाहर झांककर देखा. सामने की सिन्धी की दुकान के आगे सात-आठ युवा खड़े चिल्ला रहे थे, ''दुकान बंद करो, दुकान बंद करो!'' पता नहीं उस दुकानदार ने क्या जवाब दिया, एक लड़के ने उसे हाथ पकड़कर दुकान से बाहर खींच लिया. बाकी लड़कों ने उसे हाथ पकड़कर दुकान से बाहर खींच लिया. बाकी लड़कों ने तुरंत उसे घेर लिया.

दुकानदार कुछ समझे इसे पहले उस लड़के ने उसके गाल पर एक जोरदार थप्पड़ जड़ दिया. अब क्या था, चारों ओर से उस पर लात-घूसों की वर्षा होने लगी. तभी एक लड़के की नजर दुकान में पड़ी एक लोहे की छड़ पर पड़ी. उसने झपटकर उसे उठाया और दुकानदार की बांह पर वार कर दिया. दुकानदार ने झट अपनी-अपनी साइकिलें संभाली और नारे लगाते हुए आगे बढ़ गये.

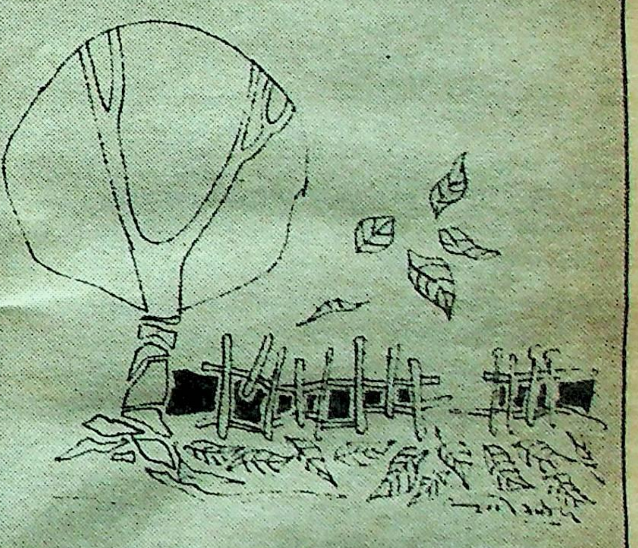

आसपास की दो-तीन बंद दुकानों के सामने खड़े उनके मालिक और मुहल्ले के कुछ लोग दूर खड़े तमाशा देख रहे थे. तभी खिड़की के पास से जा रहे एक परिचित से मैंने पूछा, ''क्या बात है?''

उसने व्यंग्यात्मक लहजे में जवाब दिया, ''हड़ताल है. पंजाब में पिछले दिनों हुई हिंसा की वारदातों के विरोध में.'' फिर सड़क पर दर्द से बिलखते उस दुकानदार की दिशा में देखते हुए वह क्रूर हंसी हंसा, ''हा! हा! हा! हिंसा के खिलाफ!'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने मेरे हाथ पर अपना हाथ रख लिया और हौले-हौले कह उठी, "बंधु, नरेंद्र शर्मा की कविता याद आ रही है— 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे?' कब मिलेंगे प्रश्न—उत्तर कब मिलेंगे?"

मैं कुछ भी न बोल पाया, बोला ही नहीं जा रहा था. उसकी ओर निहारने लगा. पहिली बार उसकी सुंदर आंखें आंसुओं में तैरती देखी. ट्रेन ने सीटी दे दी. ट्रेन रेंगने लगी. वह बहुत दूर तक उन्हीं तरल आंखों से मुझे निहारती, ट्रेन में बैठी, चली गयी...

मन बहुत भारी हो गया था. शहर को लौटना मैं रास्ते भर यही सोचता रहा कि— यह अचानक दो-तीन दिन में क्या हुआ है प्रभु, इतने अल्पकाल में इतनी आत्मीयता ले-देकर चली गयी एक लड़की, हम दोनों भाई-बहिन को पागल करके. कितना आश्चर्यजनक संयोग है यह!

शिथिल तन लिये चला आ रहा था. दरवाजे पर ही पोस्टमैन से भेंट हो गयी. मेरी चिट्ठी पकड़ाकर वह आगे बढ़ गया. भीतर घुसा. सारे घर में सन्नाटा छाया था. कहीं भी कोई आवाज नहीं है जीवन का कोई लक्षण नहीं है, मानो एक विराट शून्य में मेरा घर समा गया है. सामने, अपने कमरे में दीदी मूक होकर लेटी हैं. यह क्या कर गयी सरस्वती?

कमरे में आकर बिना कपड़े उतारे ही चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा. मेरे प्रिय मित्र ने वीसलपुर से लिखा था, "माधुरी के माता-पिता उसे कानपुर लाने को राजी हो गये हैं. मैं भी उनके साथ आऊंगा. बोलो, कौन-सी तारीखें देते हो? तुम्हें कब सुविधा रहेगी?"

मैं वह खुली चिट्ठी लिये दीदी के पास चला आया. दीदी मौन लेटी जाने क्या सोच रही थी. मैंने चिट्ठी उनके आगे रख दी और बिना कुछ बोले चला आया. अपने कमरे में जा लेटा...

तीन साल से भी अधिक हुआ— कानपुर के एक डिग्री कालेज में 'इंटरव्यू' लेने गया था. शिवशंकर भी कैंडीडेट था. मुझे वही सब से योग्य जजा. उसी की नियुक्ति कर आया. इंटरव्यू के पूर्व, जहां मैं ठहरा था, शास्त्री जी के निवास पर, वह मिलने आया था. इंटरव्यू के बाद भी रात को फिर वहीं आ गया था और बहुत देर तक बातें करता रहा था. उससे थोड़ी आत्मीयता हो गयी थी. इस बात को तीन साल हुये या चार— याद नहीं रही. इस बार फिर कानपुर आना हुआ— एम.ए. की वाइवावोसी के लिये, उसी डिग्री कालेज में.

परीक्षा-कार्य समाप्त करके बाहर निकला तो सामने शिवशंकर को खड़ा पाया. चरण छूकर प्रसन्न भाव से बोला, "मैं एक घंटे से आपके इंतजार में खड़ा हूं. मेरे घर चलिये." मैंने बहुत बहाने किये, पर वह ज़िद पकड़ गया. हार कर कहना पड़ा, "अच्छा चलो."...

मैं पान खाने का शौकीन हूं— शिवशंकर जानता था. सो कई बीड़े बनवा लाया था.

वह अपने घर मुझे लाकर अतिशय मुदित था. मुदित मुद्रा से बोला, "आपके आर्शीवाद से कालेज का जीवन बहुत आनंद से कट रहा है. छात्र और अधिकारीगण— सभी मुझसे प्रसन्न हैं. डी.फिल की तैयारी कर ली है मैंने."

"बहुत अच्छा किया. अब अपनी घर-गृहस्थी का हाल सुनाओ."

हंसकर बोला— "गुरू जी, खास तौर पर यही समाचार सुनाने तो आप को लाया हूं. आप तो स्वयं इतने बड़े 'कथा-शिल्पी' हैं, आज जरा मेरी कहानी भी सुन लीजिये एक बार. आप को कुछ मसाला जरूर मिल जायेगा लिखने के लिये."

"सुनाओ भाई, क्या कहानी है तुम्हारी, रुचिपूर्वक सुनूंगा मैं. सुनाओ तुम." — मैंने सोफे पर सासन जमाकर उससे कहा... तब शिवशंकर ने यही 'सरस्वती' वाली कहानी सुना दी मुझे— आदि से अंत तक रस ले-लेकर.

मुझे कहानी बहुत मजेदार लगी. सीधा होकर बैठ गया और कौतूहल से पूछा, "फिर? फिर क्या हुआ? शादी कर ली न तुमने? लेकिन किसके साथ शादी की तुमने? यह तो बताओ. सरस्वती से या माधुरी से?"

तपाक से बोला, "सरस्वती से. माधुरी को तो दीदी ने अपने यहां आने ही न दिया— साफ निषेध कर दिया. लेकिन हमारी शादी के बाद, कुछ ऐसा दुर्योग आया कि साल भर बीतते न बीतते मेरी स्नेहमयी दीदी और सरस्वती की मां— आगे-पीछे दोनों ही स्वर्ग सिधार गयीं. हम दोनों दुनिया में अकेले रह गये. बड़ी दारुण आंतरिक व्यथा सही दोनों ने. फिर मिल-जुलकर अपनी गाड़ी खींचने लगे. मौज से ही कट रही थी, लेकिन फिर एक हादसा हो गया. चार महीने हुये, सरस्वती बीमार पड़ गयी, फिर उसे 'टाइफाइड' हो गया. बड़ा कष्ट झेला उसने. धीरे-धीरे फिर ज्वर से छुटकारा मिला, परंतु मेरा और उसका दुर्भाग्य देखिये कि उसकी वाक्-शक्ति जाती रही— गूंगी हो गयी वह एक दम."

सुनकर स्तब्ध बैठा रह गया कुछ क्षणों तक. फिर बल लगाकर पूछा, "अब? अब क्या स्थिति है?"

दुख मनाता शिवशंकर कहने लगा, "स्थिति यह है कि वैसे काम-काज तो सभी ठीक ढंग से कर लेती है—करती ही रहती है, बस बोल नहीं पाती. एक शब्द का भी उच्चारण नहीं कर पाती. एक गूंगे प्राणी के साथ मेरा दिन रात का जीवन बीत रहा है."

"बड़ी विषम स्थिति है यह तो तुम्हारे लिये." — सांत्वना के ये शब्द मैं कह ही रहा था कि बीच में ही शिवशंकर कह उठा, "देखिये, वह आ रही है."

मैंने चौंक कर देखा— धीमे कदम रखती, हाथों में बड़ी-सी ट्रे

धंधा

रूपक

लंबी लाइन टिकट कटाने के लिए लगी थी. अपनी बारी आने तक ट्रेन नहीं पकड़ी जा सकती थी. तभी भीख मांगती हुई वह मेरे करीब पहुंची. मैंने एक युक्ति सोच उससे कहा, "तुम मेरा टिकट करा दो मैं तुम्हें पच्चीस पैसे दे दूंगा." महिला काउंटर से उसने मुझे टिकट लेकर दे दिया.

कुछ दिनों बाद फिर टिकट लाइन में लगा था, तभी एक महिला मेरे करीब आ बोली, "बाबू टिकस कटा दूं, पच्चीस पैसे दे देना."

मैं उसे तुरंत पहचान गया, यह वही औरत थी जिसने पिछली दफा मेरा टिकट कटा दिया था. जब मैंने उसे उस दिन की याद दिलायी तो वह मुझे दुआएं देती हुयी कहने लगी, "बाबू, आपने तो मेरी जिंदगी ही बदल दी है, अब मैं यही धंधा करती हूं, सिपाही जी और टिकस बाबू को हिस्सा देकर मैं रोज-पांच-दस रुपये आसानी से कमा लेती हूं."□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़े, एक नवयुवती चली आ रही है नयन नत किये. पलक रोक कर देखने लगा. उसने सम्हालकर सामने की गोल मेज पर ट्रे रख दी. मेरी ओर मुड़ी. नीचे झुकी. मेरा चरण-स्पर्श किया और मेरे निकट वाली बेंत की कुरसी पर शालीनता से बैठ गयी सिर नत किये. आहा! यही सरस्वती है! मैं अपलक उसे निहारे जा रहा था— कैसा सलोना-सलोना, सौम्य-शांत मुख है. साधारण-सी वेशभूषा में है, पर लगा— कोई देवबाला हो जैसे. परंतु हाय, बोल नहीं सकती— बेचारी गूंगी हो गयी है. एक अव्यक्त करुण भाव से मेरा हृदय भर उठा.

शिवशंकर ने हौले से ताली बजायी. वह पति की ओर देखने लगी. पति ने हाथों से काफी बनाने के लिये इशारा किया. पर उससे समोसे वाली एक प्लेट मेरे आगे सरका दी. दूसरी पति के आगे कर दी. शिवशंकर प्रसन्न भाव से बोला, "गुरुजी, खाइये, ये समोसे बाजार के नहीं हैं, खुद इसी ने बनाये हैं. खाइये जरा गरम हैं." मैंने एक समोसा उठाया तो फिर जाने कैसी करुणा-सी लगी. गूंगी लड़की के हाथों बना समोसा, मुझसे खाते न बनता था. परंतु शिवशंकर बड़े प्रेम से समोसा खा रहा था.

पूछा— "इलाज तो चल रहा होगा गूंगेपन का: डाक्टर लोग क्या कहते हैं?" शिवशंकर मुंह चलाता बोला, "डाक्टर कहते हैं— दवा खाती रहे. धीरे-धीरे ठीक हो जायेगी. कुछ समय लगेगा."

सरस्वती प्यालों में थोड़ा-थोड़ा दूध डालकर काफी घोलने लगी. मैं सोचने को विवश हो गया कि— अभी-अभी मैंने इसकी इतनी लंबी कहानी सुनी है. काश यह 'मूक' न हो गयी होती. इस प्रबुद्ध लड़की से बातें करके कितना आनंद मिलता! यह दुखियारी जाने कितना मानसिक कष्ट झेल रही है!

सरस्वती ने सुनहली-सुनहली सुगंधित काफी के प्याले आगे बढ़ा दिये. मैं और समोसा न उठा सका. अकारण ही अपने प्याले में चम्मच घुमाता, अन्यमनस्क भाव से पूछने लगा, "वैसे तुम जो कुछ कहते हो, उसे समझ तो लेती है." "सब समझ लेती है. किसी भी काम में गफलत नहीं करती-बस, बोल नहीं पाती." मैं सिर झुकाये चम्मच घुमाता रहा.

शिवशंकर ने तीसरा समोसा उठाते आगे सुनाया, "समय का सदुपयोग करना खूब जानती है."

सरस्वती अपनी चिबुक पर हाथ टेके निश्चल बैठी सब सुन रही थी. शिवशंकर समोसा खाता, आगे सुनाने लगा, "घरेलू कामों से फारिग होते ही मोटे-मोटे पोथे लेकर बैठ जाती है और अपनी थीसिस के नोटस तैयार करती रहती है."

शिवशंकर ने समोसा खतम करके कहा, "उस समय अगर मैं इससे कुछ कहता हूं तो जरूर उजबक की तरह मेरी ओर ताकने लगती है. असल में, यह कुछ-कुछ पोंगा है."

शिवशंकर का वाक्य पूरा होते न होते मेरे कानों में सहसा एक तीक्ष्ण स्वर सुना, "मैं गूंगी नहीं हूं."

बुरी तरह चौंक पड़ा मैं— यह आकाशवाणी कहां से आयी? सिर उठाकर पागलों की तरह उधर-उधर देखने लगा और क्षण भर में ही फिर मानो आसमान से जमीन पर आ गिरा.

मेरे करीब बैठी सरस्वती, मुझी को लक्ष्य करके तेज आवाज में कह रही थी, "गुरुजी, मैं गूंगी नहीं हूं. यह झूठ बोलता है."

मैं तो हक्का-बक्का रह गया. शिवशंकर ने तालीपीट कर एक जोरदार ठहाका लगाया. सरस्वती ने उधर ध्यान न दिया. जल्दी-जल्दी मुझसे कहती गयी उसी टोन में, "इसने मुझसे कहा— गुरुजी आयेंगे. तू उनके सामने जरूर 'बक-बक' करेगी. मेरी बड़ी 'किरकिरी' हो जायेगी. तू आज गूंगी बन जा. मैंने इसका कहना मान लिया. तब से गूंगी का नाटक कर रही थी. और अब यह मुझे 'पोंगा' बता रहा है!" सरस्वती के होंठों पर हल्की सी मुस्कान आ गयी. वही मुस्कान लिये मुझसे कहने लगी, "गुरुजी, मैं पोंगा नहीं हूं!"— उसने हाथ उठाकर पति की ओर अंगुली-निर्देश करके, जल्दी-जल्दी कहा, "यही पोंगा है." और उसकी नजर पति पर पड़ी, जो कुरसी की पीठ पर सिर डुलाता बेतहाशा हंस रहा था और पलक मारते वह स्वयं खिलखिला उठी. और उसी मधुर—मधुर हंसी के बीच कहती गयी, "यही पोंगा है. यही पोंगा है!" और फिर हंसती-हंसती कुरसी में लुढ़क गयी खिलखिलाती. तब मैं अपने को किसी तरह रोक न पाया और ठहाका मारकर हंसने लगा जोर-जोर से.

अब स्थिति यह थी कि— शिवशंकर आंखें मूंदे लगातार उसी तरह बेतहाशा हंसे जा रहा था और कुरसी में लड्डू होकर पड़ी सरस्वती कनखियों से बार-बार उसे देखती बेसाख्ता हंस रही थी. और उन दोनों को यों हंसता देख मेरी भी हंसी रुकती न थी. कमरे में मानो हंसी के फव्वारे छूट रहे थे.

तीन पढ़े-लिखे, सभ्य, सुसंस्कृत व्यक्ति अकारण ही इतनी तीव्रता से हंसे जा रहे थे— हंसे जा रहे थे.

हालत यह थी कि— हम तीनों ही 'पोंगा' बन गये थे.

...यह कहानी बहुत ही हल्की-फुल्की है. करीब-करीब निस्तत्व है. सरस्वती की बक-बक के सिवाय इसमें है ही क्या? कौन भला इसे 'अच्छी कहानी' कहेगा? लेकिन एक बात है, कहानी मजेदार जरूर है... दिन रात अभावों में पिसती, परेशानियों से जूझती जिंदगी, आज निहायत बेरौनक, बेलज्जत, बेमजा और बदरंग हो गयी है. कहीं कोई 'रस' नहीं रहा...

...ऐसे में, 'सरस्वती' से मुलाकात करके शायद थोड़ी देर के लिए उदासी भरे मन 'हरे' हो जायें. शायद सूखे-मुरझाये होंठों पर तनिक-सी मुस्कान आ जाये. यही बहुत है. □

स्वप्न नहीं, हकीकत

सुबह एक वीर भाई हम लोगों के कमरे में आया और पापा से भारत के बारे में पूछने लगा. लगा ही नहीं कि आज 16 बजे (शाम चार बजे) यह देश के लिए मरने जा रहे हैं. मैं इसी वीर भाई को एक टक देखती रही. पापा ने टोका, "क्या सोच रही हो आशा." वह वीर भाई ने कहा, "आशासान जिसे मैं सफलता पूर्वक शत्रु के जहाज में टकरा सकूं इसके लिए आप प्रार्थना करती रहें." मैं कुछ बोल नहीं पायी. चुपचाप एक प्याली चाय आगे बढ़ा कर बैठ गयी. मुंह से शब्द निकालती तो आंख से आंसू जो टपक पड़ता.

पापा को मैं अपना चेहरा दिखाना नहीं चाहती थी कि वे हंसेंगे. पर देखती क्या हूं कि वह भी अपनी आंखें, धीरे से पोंछ रहे हैं. यह विदाई अविस्मरणीय है. मजाक उड़ाते-उड़ाते मरने वाले वीर भाइयों की आत्मा को तृप्ति और शांति देना हमारा धर्म है. मात्र भारत की स्वाधीनता से ही नहीं संसार के सभी गुलामों की मुक्ति से ही उन की आत्मा को शान्ति मिलेगी और यह स्वप्न नहीं हकीकत है. □

(संदर्भ: भारती चौधरी लिखित 'आशा सान की सुभाष डायरी')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शेख की कहानी

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह बछड़े ने अपना चोला छोड़ा और आकर्षक नौजवान बन गया...! इस कहानी का असर यह हुआ कि व्यापारी का एक-तिहायी खून तो जिन्न ने माफ कर दिया.... लीजिये अब पढ़िये आगे की दास्तान कि किस तरह बाकी दो तिहायी खून माफ हो सका?...

जैसे ही पहल शेख की कहानी खत्म हुई दूसरे शेख ने आगे आकर बाअदब, जिन्न से कहा, "जिन्न साहब, मेरे साथ आप जिन दो कुत्तों को देख रहे हैं, वे असल में मेरे भाई हैं. उनकी वजह से मुझे जिन-जिन परेशानियों और मुसीबतों का सामना करना पड़ा है, उसकी कहानी आप सुनेंगे तो आपको यकीन हो जायेगा कि ऐसी दिल दलहाने वाली कहानी आपने पहले कभी नहीं सुनी है. अगर आपको यह कहानी उस कहानी से बेहतर लगे जो अभी-अभी आपने सुनी है तो उसके बदले में इस अभागे व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ़ कर दीजियेगा, बस."

"ठीक है शेख साहब, आप अपनी कहानी सुनायें." जिन्न ने कहा.

दूसरे शेख ने अपनी कहानी इस तरह शुरू की, "जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूं, ये दोनों कुत्ते मेरे भाई हैं. मरते वक्त, हमारे वालिद ने तीन हज़ार दीनार छोड़े थे. इस रकम को हम तीनों भाइयों ने बराबर-बराबर बांट लिया. मैंने अपने एक हज़ार दीनार से एक दूकान खोली, जो अच्छी चल निकली. मेरा एक भाई अपना हिस्सा लेकर व्यापार के लिए विदेश जाने लगा तो मैंने उसे समझाया, "बाहर जाकर तुम एक भारी जोखिम मोल ले रहे हो. बेहतर यही है कि तुम इस रकम से मेरी तरह एक दुकान खोल लो और आराम से बैठकर खाओ." मगर उसने मेरी सलाह न मानी और विदेश चला गया. कुछ दिन बाद वह घर लौटा तो अपनी सारी रकम गवा चुका था और जार-जार रो रहा था. वह मेरे पांवों में पड़ गया और मदद की भीख मांगने लगा. मुझे उस पर रहम आ गया और मैंने उसे अपनी दूकान पर काम करने के लिए रख लिया. शर्त यह थी कि उसके सेवा-काल में जो मुनाफ़ा होगा, उसमें से आधा मैं उसे दूंगा. उसने मेरे सहायक के रूप में एक साल तक काम किया.

"एक साल बाद उसे और दूसरे-भाई को फिर विदेश जाकर व्यापार करने की सनक सवार हुई. वे मुझे भी सब्ज-बाग़ दिखाकर अपने साथ ले जाना चाहते थे लेकिन मैंने उनके साथ जाने से साफ इंकार कर दिया. मेरी दूकान अच्छी चल रही थी और उससे मुझे अच्छा मुनाफ़ा हो रहा था. पिछले एक साल में मुझे एक हज़ार दीनार का फ़ायदा हुआ था. जब मेरे उस भाई ने जो मेरी दूकान पर काम कर रहा था, उसमें से आधा हिस्सा मांगा तो मैंने उसे पांच सौ दीनार देकर उन दोनों भाइयों को विदा किया.

"मगर वे बिना मुझे साथ लिये नहा जाना चाहते थे और अपनी-अपनी रकम से अपना-अपना धंधा करते रहे. उन दोनों की आमदनी काम-चलाऊ थी. नफ़ा सिर्फ मुझे ही होता था. छह साल तक ऐसे ही चलता रहा. वे मुझे विदेश व्यापार करने को कहते और मैं मना कर देता. उनकी निगाह मेरे मुनाफ़े की रकम पर लगी थी. जो छह हज़ार दीनार तक पहुंच चुकी थी और मैं उसे सुरक्षित रखना चाहता था. लेकिन छह साल बाद मैं आखिर उनके साथ चलने को राज़ी हो ही गया. पर जाने से पहले आधी रकम यानी तीन हज़ार दीनार, घर में ज़मीन खोदकर उसमें छिपा दिये और बाकी तीन हज़ार दीनार की रकम तीन हिस्सों में बराबर-बराबर बांट ली. इसके बाद, हम तीनों भाई एक जहाज़ द्वारा तिजारत के लिए विदेशों को रवाना हुए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पहले ही शहर में हमें बेचे गए माल पर दस गुणा फ़ायदा हुआ, जिसे हमने बराबर-बराबर बांट लिया. जब हम बंदरगाह से जहाज पर आ रहे थे तो एक महिला, जो चीथड़ों में थी और काफ़ी परेशान नज़र आती थी, मेरे पास आयी और मेरा हाथ चूम कर बोली "मालिक, मैं आपकी शरण आयी हूं. कृपा करके मुझे स्वीकार कर लो. एक न एक दिन में आपके एहसानों का बदला अवश्य चुका दूंगी." मैंने उस पर रहम खाते हुए कहा, "मैं तुम्हारी भरसक सहायता करने को तैयार हूं लेकिन उसके बदले में तुमसे कुछ नहीं मांगता." उसने कहा, "तब, आप मुझसे विवाह कर लीजिये. उसके बाद मेरा तन और मन दोनों आपके हो जायेंगे." मैं उसे अपने साथ जहाज़ पर ले आया. वहां अच्छा खाना खाकर तथा अच्छे वस्त्र धारण कर वह एक संभ्रांत महिला दिखाई देने लगी. उसकी स्वामीभक्ति के प्रसन्न होकर मैंने उससे शादी कर ली और अपना सारा समय अपने भाइयों के पास बिताने के स्थान पर, अपनी बीवी के साथ बिताने लगा." यह मेरे भाइयों को बिल्कुल नहीं भाया और उन्होंने एक रात जब हम दोनों सो रहे थे,

उन्होंने चुपके से आकर हम दोनों को समुद्र में फेंक दिया, और हमारी सारी माल-पूंजी पर कब्जा कर लिया.

"समुद्र में गिरते ही, मेरी बीवी ने फ़ौरन एक जिन्नी (मादा-जिन्न) का रूप धारण कर लिया और मुझे अपनी कमर पर लादकर एक द्वीप की ओर उड़ने लगी. मुझे द्वीप पर सुरक्षित छोड़कर, रात भर वह न जाने कहां ग़ायब रही. सुबह जब वह वापस लौटा तो भी जिन्नी के वेश में थी. मुझसे पूछने लगी, "मुझे पहचाना नहीं? मैं तुम्हारी बीवी हूं. इससे पहले एक जिन्नी थी (और एक वक्त भी हूं). लेकिन अपना काम पूरा करके मैं फिर तुम्हारी प्यारी बीवी बन जाऊंगी. बीवी के रूप में आने से पहले मुझे तुम्हारे दोनों भाइयों के प्राण लेने हैं. वे चोर और विश्वासघाती ही नहीं, हत्यारे भी हैं. मैं उन्हें ज़िंदा नहीं छोड़ूंगी. मैं कल उनका जहाज़ डुबोकर उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दूंगी."

बड़ी मुश्किल से मैं उसे यह समझाने में कामयाब हुआ कि मेरे भाइयों ने मेरे साथ कुछ भी किया हो लेकिन मैं उनकी मौत नहीं चाहता. अनिच्छापूर्वक, उनके मेरी बात मान ली और मुझसे वायदा कि हालांकि वे जान से मारने लायक हैं, फिर भी वह उन्हें जान से नहीं मारेगी. इसके बाद हम दोनों अपने घर लौट आये. मेरी सारी रक़म मेरे भाइयों ने चोरी कर ली थी लेकिन मुझे याद था कि मैंने अपने तीन हज़ार दीनार कहां गाड़े हैं. मैंने उन्हें खोदकर निकाल लिया और उनसे अपनी पुरानी दूकान को नये सिरे से चलाने का फ़ैसला किया.

"शाम को दूकान से घर लौटा तो देखता क्या हूं कि घर के बाहर बरांडे में दो कुत्ते बंधे हुए हैं. मुझे देखकर वे रोने लगे और मेरे पांवों में सर रखकर लेट गये. मेरी समझ में न आया कि माजरा क्या है?. तब, मेरी बीवी ने आकर बताया, "ये दोनों आपके दगाबाज़ और चोर भाई हैं. आपके कहने पर मैंने इन्हें मारा नहीं लेकिन बतौर सज़ा इन्हें दस साल के लिए कुत्ते बना दिया है. आज उनकी सज़ा के दस साल पूरे होने वाले हैं. मैं उन्हें आख़िरी बार घुमाने के इरादे से बाहर लाया था कि इन अभागे व्यापारी पर निगाह पड़ी और उनके दुख में शरीक होने के लिए उनके पास बैठ गया. कहिये, मेरी सच्ची कहानी आपको कैसी लगी?"

"बेशक, आपकी कहानी लाजवाब है, शेख साहब. मैं अपने वायदे के मुताबिक इस व्यापारी का एक-तिहाई खून माफ करता हूं."

दूसरे शेख जिन्न का शुक्रिया अदा करके, पीछे जाने लगे तो तीसरे शेख ने आगे आकर जिन्न से अर्ज की, "मेरा ख़याल है कि मेरी इन दोनों शेख साहबों की कहानियों से भी ज्यादा दिलचस्प लगेगी आपको, जिन्न साहब! अगर, कहानी सुनने के बाद, आपका भी ऐसा ही खयाल हो, तो आप मेहरबानी करके इस बेचारे व्यापारी का बाकी एक-तिहाई खून भी माफ़ कर दें." जिन्न ने कहा, "ठीक है. आप अपनी कहानी सुनाइये. मैं सुनने को बेक़रार हूं."

तीसरे शेख की कहानी

तीसरे शेख ने अपनी कहानी इस तरह सुनानी शुरू की, "मेरे साथ आप जिस मादा-खच्चर को देख रहे हैं, वह असल में कभी मेरी बीवी थी. एक बार मैं अपने धंधे के सिलसिले में एक साल तक घर से बाहर रहा. जब एक रात को अचानक बिना किसी इत्तला के घर लौटा तो यह देखकर सकते में आ गया कि मेरी बीवी एक हब्शी के साथ सो रही थी. मेरे आने की आवाज़ सुनकर वह उठी. उसने एक घड़े में से पानी लिया, उसके ऊपर कुछ शब्द बुदबुदाये और उसे मेरे ऊपर छिड़कते हुए कहा, "जा, कुत्ता हो जा!" और, मैं कुत्ता हो गया. फिर उसने डंडे से मारकर, मुझे घर से बाहर निकाल दिया. मैं घूमता, घूमता एक कसाई की दूकान पर पहुंचा, और दूकान के बाहर पड़ी हड्डियां चबाने लगा. दूकान बंद करते समय, कसाई ने मुझे देखा और अपने साथ ले गया.

"कसाई की लड़की जादूगरनी थी. उसने मुझे देखते ही बुरका ओढ़ लिया और कसाई से बोली, "जिस कुत्ते को आप अपने साथ लाये हैं, वह असल में एक इज्जतदार और अमीर आदमी है. उनकी कुल्टा बीवी ने उन्हें जादू के ज़ोर से कुत्ता बना दिया है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर के सिर पर

बाई लैंग

जंगल का राजा शेर मक्खी की इस चापलूसी भरी प्रशंसा से बहुत खुश हुआ. उसे वह मक्खी काफी चतुर और समझदार लगी. वह उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हो उठा. उसने मक्खी से कहा, "हो तो तुम हमारे सामने मात्र एक मामूली-सी भुनगा! बहुत छोटी, तुच्छ और बेमानी. परंतु तुम में बातें बना सकने की अद्‌भुत कला है. तुम जानती हो कि किसी शक्तिशाली और साधन-संपन्न व वैभवशाली से कैसे बातें की जाती हैं. उसका कैसे सम्मान किया जाता है. मैं तुम्हारी बातों से बहुत खुश हुआ हूं. तुम मुझे अच्छी लगने लगी हो. अब से तुम मेरे पास ही रहो और ऐसी ही प्यारी-प्यारी बातें मुझसे करती रहा करो! मेरा जी बहलता रहेगा. वर्ना मैं अकेला बहुत बोर होता रहता हूं. ऊब होती रहती है."

...और तब वह मक्खी शेर की विशेष सलाहकार हो गयी. शेर की नाक की बाल हो गयी. उसकी सर्वप्रिय जीव!

नतीजा हुआ, सब जानवर अब उस मक्खी से भी बुरी तरह डरने लगे. शेर तो शेर, अब तो किसी में मक्खी को भी नाराज करने की हिम्मत नहीं रही! अब वह कोई साधारण, गंदी-गलीज और आवारा मक्खी नहीं रह गयी थी, जिससे सब लोग नफरत किया करते थे और कोई अपने पास फटकने तक नहीं देता था.

अब तो वह शेर के सिर पर ही सवार रहती.

कसाई ने कहा, "या खुदा! कैसी कैसी कमीनी औरतें हैं इस दुनिया में. बेटी, तू अपने जादू के ज़ोर से इसे फिर आदमी बना दे. यह आदमी तुझे दुआ देगा." लड़की ने एक बर्तन में पानी लिया, और उस पर कुछ बुदबुदाने के बाद वह पानी कुत्ते पर छिड़क दिया. इस छिड़काव ने उसे कुत्ते से दुबारा आदमी बना दिया.

"जब मैं कुत्ते से आदमी बन गया, तो मैंने कसाई और उसकी बेटी का शुक्रिया अदा किया और घर जाने लगा. मगर, कसाई की बेटी ने मुझे आदर से रोकते हुए कहा, "आपकी बीवी ने आपके साथ निहायत गंदा सुलूक किया था. क्या आप उससे उसका बदला लेना चाहते हैं?" मैंने कहा, "बेशक!" उसने एक बर्तन में कुछ और पानी भरा और उस पर कुछ बुदबुदाने के बाद वह बर्तन मेरे हाथ में देते हुए कहा, "जाकर इस पानी को अपनी बीवी पर जब छिड़कियेगा, जब वह सो रही हो. इस पानी के जादू के असर से आप जिस शक्ल में उसे चाहेंगे वह आ जायेगी." मैं वह बर्तन लेकर जब अपने घर पहुंचा, तो मेरी खुशकिस्मती से वह सो रही थी. मैंने उस पर बर्तन का पानी छिड़कते हुए कहा, "जा, मादा-खच्चर बन जा." और, देखते ही देखते, वह औरत से मादा-खच्चर बन गयी."

जिन्न ने मादा-खच्चर से पूछा, "क्या शेख साहब जो कह रहे हैं, वह सच है?"

मादा-खच्चर ने सर हिलाकर कहा, "जी हां, एकदम सच है."

यह सुनकर, जिन्न को इतनी ज्यादा खुशी और उत्तेजना महसूस हुई कि वह खुशी और उत्तेजना की वजह से कांपने लगा...

तीसरी रात को

कहानी यहां तक पहुंची कि सुबह होने के असार दिखाई देने लगे. शहरज़ाद ने समझदारी से काम लिया और चुप हो गयी.

दुन्याज़ाद ने अपनी बहन से कहा, "जी चाहता है कि आपके मुंह से कहानियां सुनती ही जाऊं. हम तो बड़े शौक से सुन रहे थे मगर आपने कहानी अधूरी ही छोड़ दी..."

शहरज़ाद ने कहा, "यह कहानी आगे चलकर और भी ज्यादा दिलचस्प हो जाती है. लेकिन आगे की कहानी मैं तभी सुना सकूंगी, जब सुबह होने पर जिंदा रहूंगी. यानी, बादशाह-सलामत ने तब मेरा कत्ल नहीं करवाया तो."

यह सुनकर, शहरयार ने मन ही मन कहा, "अल्लाह की कसम, जब तक मैं यह कहानी पूरी नहीं सुन लेता, शहरज़ाद को मरवाने का सवाल ही पैदा नहीं होता."

बादशाह शहरयार का सारा दिन दरबार में लोगों की फ़र्याद सुनते हुए और उन पर फ़ैसले देते हुए बीता. शाम को वे महल में लौटे.

रात होने पर दुन्याज़ाद ने अपनी बहन से कहा, "बहन! मैं कल की अधूरी कहानी सुनने के लिए बहुत बेताब हूं."

"मैं अभी कहानी पूरी करके तुम्हारी बेताबी दूर करती हूं." शहरज़ाद ने कहा.

११ किस्सा-मछुए और जिन्न का

कल मैंने बताया था," शहरज़ाद ने अधूरी कहानी को आगे बढ़ाते हुए कहा, "कि मादा-खच्चर की 'हां' सुनकर इतनी ज्यादा खुशी और उत्तेजना महसूस हुई कि वह कांपने लगा. उसने तीसरे शेख से कहा, "शेख साहब, आपकी कहानी, बिला शक, सबसे अच्छी थी. मैं अब वायदे के मुताबिक आपके दोस्त व्यापारी को पूरी तरह आज़ाद कर, आपके हवाले करता हूं." कहकर जिन्न चला गया. व्यापारी भी तीनों शेखों का शुक्रिया अदा कर अपने घर वापस चला गया. तो व्यापारी और जिन्न का किस्सा तो ख़त्म हुआ, अब शुरू होता है, उससे भी ज्यादा दिलचस्प किस्सा—मछुए और जिन्न का. इस कहानी का मछुआ एक बूढ़ा, गरीब मगर खुदा से ख़ौफ खाने वाला इंसान था. उसके तीन बच्चे थे. वह दिन में चार बार अपना जाल पानी में डालता था. एक दिन, उसने दुपहर के वक्त, अपना जाल पानी में डाला तो उसकी बास्केट इतनी भारी हो गयी कि जाल को खींचना उसके लिए मुश्किल हो गया. अंत में यह देखने के लिए कि बास्केट में कौन सी भारी चीज़ या मछली आ गयी है, वह पानी में कूद पड़ा. बमुश्किलतमाम, वह उस भारी बोझ को किनारे पर ला सका. उसने मोटे और भारी बोरे को देखकर सोचा, आज ज़रूर कोई बेशकीमती ख़ज़ाना हाथ लग गया है. मगर, बोरे को खोला तो, अपना सर पीटकर, रह गया. बोरे में एक मरा हुआ गधा था." जैसी अल्लाह की मर्जी, "कहकर वह अपना जाल साफ़ करने लगा." □

अगले अंक में

मछुआ और जिन्न... यानी दिलचस्प दास्तानों का रोमांचक सिलसिला.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1964, पटना.
मंचीय नाटकों की प्रस्तुति के अतिरिक्त रेडियो व टेलीविजन के जरिये नाटक गीत, ग़ज़ल व भजनों का प्रसारण.
संपर्क : 15 यू.एफ. तानसेन मार्ग, नई दिल्ली.

□ संगीता सिंह

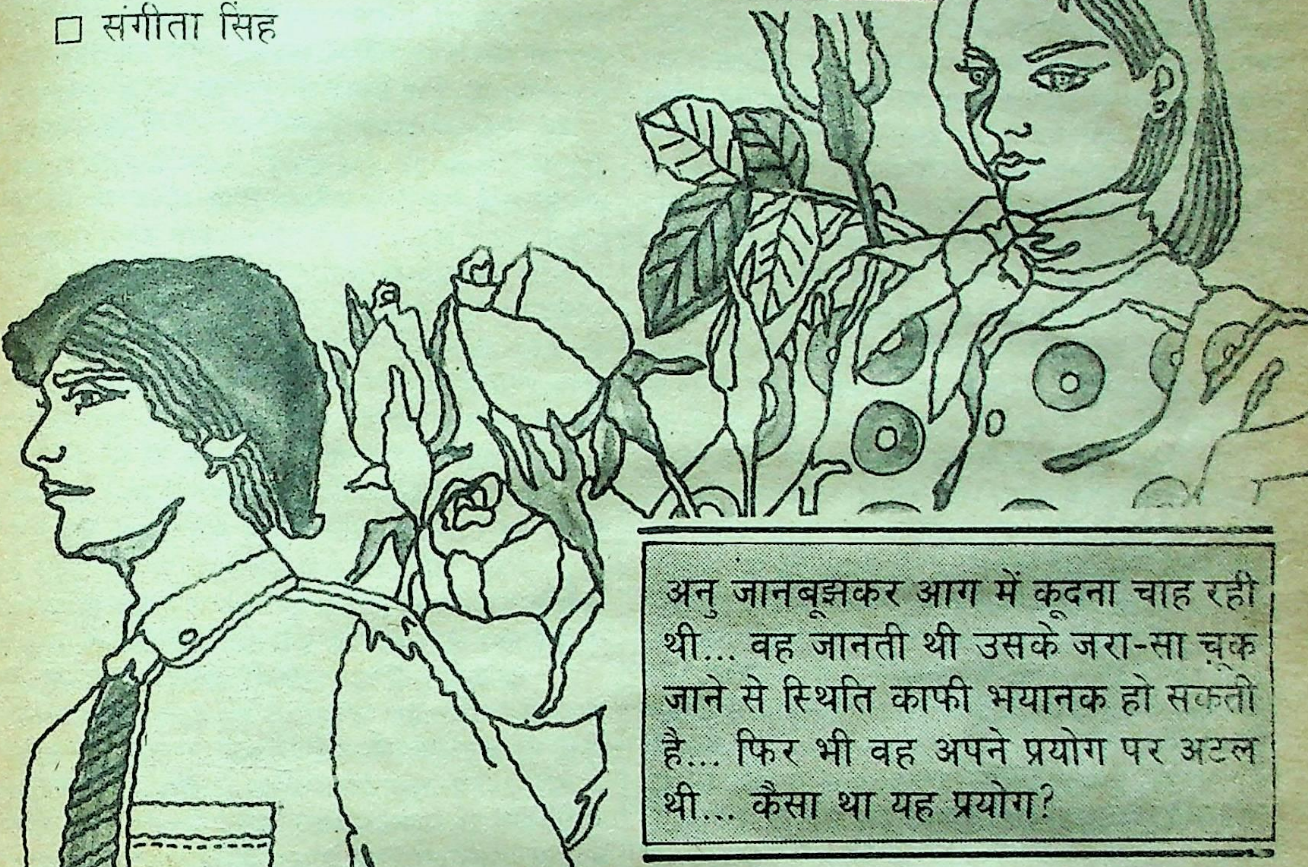

अनु जानबूझकर आग में कूदना चाह रही थी... वह जानती थी उसके जरा-सा चूक जाने से स्थिति काफी भयानक हो सकती है... फिर भी वह अपने प्रयोग पर अटल थी... कैसा था यह प्रयोग?

अनुभूति

उसने आज से सोचना बंद कर दिया है. कुछ देर पहले तक वह सोचती रही है. काफी दूर तक की सोचती रही है. इसके बारे में, उसके बारे में, शायद संबके बारे में... बड़ा उबाऊ-सा लग रहा था सोचना. या ऐसा लग रहा था मानों सोचने को कुछ बचा ही नहीं हो... या वह थक गई थी सोंचते-सोचते. यही सोच कर छोड़ दिया है सोचना.

न जाने किस समय, किस घटना का प्रभाव मन पर पड़ा और लगी उथल-पुथल होने. घटनाएं तो अनगिनत घटतीं हैं जीवन में, लेकिन कुछ घटनाएं अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं और इस घटना से घटित होने के काफी समय बाद शुरू होता है सोचने का क्रम...

थोड़ी देर पहले एक घटना घटी उस कमरे में. शायद उसी घटना के कारण उसका मन विचलित हो उठा था. घटना अप्रत्याशित थी कि अनु को ऐसा महसूस हो रहा था मानो वह शून्य में भटक-सी गई हो. उस घटना का जिक्र वह किसी से कर भी नहीं सकती थी. उसे चुपचाप इस जहर को पीना था...

मन के द्वंद्र को बिल्कुल भूलने के लिए उस बात या घटना को मन से निकालना पड़ता है, जो कारण हैं हम अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं को तत्काल महत्व नहीं देते हैं. फलतः बाद में उसे गंभीर रूप में लेना पड़ता है.

उस व्यक्ति के अनु के घर आने से भला अनु को क्या इतराज हो सकता था? चलो नई जगह है—नया परिवेश है, उसका साथ रहेगा तो नई जगह से तालमेल बिठाने में आसानी होगी. शायद यही सोचकर उसे प्रश्रम दिया था. शुद्ध गृहस्थ व्यक्ति; एक पत्नी तथा दो फूल जैसे बच्चे. वाह, बड़ा मजा आया सुनकर. चलो, एक अच्छे परिवार से मुलाकात तो हुई.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारिवारिक मित्रता बढ़ती गई.

अनु की रुचियों और पसंद को महत्वपूर्ण समझकर धीरे-धीरे वह व्यक्ति उसके दिल और दिमाग पर छा रहा था. अनु उसके साथ घंटों बातें करती—विषयहीन. *कभी-कभी* ऐसा महसूस होने लगता जैसे वह काफी अकेला है—*थका* हुआ और हारा हुआ. बस यहीं गलती हो गई अनु से. *शायद*, यह बहुत बड़ा मकड़ी का जाला उसके सामने आ *गया*. नहीं चाहकर भी अनु उलझती चली गई. उसके कोमल मन पर धीरे-धीरे असर होता गया.

उस व्यक्ति का अनु के जीवन में आना अपने आप में कोई मायने रखता हो—ऐसा उसने तब महसूस किया, जब पहली बार उसकी हरकतों को ध्यान से देखा. अनु ने सोचा था, वह व्यक्ति शादी-शुदा है, आम लड़कों से अलग होगा. उसकी जिम्मेदारियां भिन्न होंगी, एक कुंवारे लड़के की जिम्मेदरियों से. लेकिन, अनु के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही—जब उसकी वह खास हरकत अनु के सामने आयी. वह व्यक्ति उसे अकेला समझकर गलतियों पर गलतियां करता चला गया. धीरे-धीरे, उसका असली रूप अनु के सामने आया. वह बौखला उठी. अब उसकी नजरों में एक अजीब घिनौनापन दिख रहा था. होंठों की मुस्कान कितनी कुटिल और भयावह थी. उफ... ब्यान करना तो दूर की बात, इस विषय में सोचना भी अनु के लिए मुश्किल हो रहा था.

बडी ही खूबसूरत शाम थी. वह काफी खुश थी. घर में अकेली और अपने खयालों की भीड़ में खोई बैठी थी. अचानक उसकी तंद्रा टूटी. घंटी बजी. यंत्रवत उसने दरवाजा खोल दिया—बिना कुछ पूछे कि कौन है...

वह आया था. अनु के चेहरे पर मुस्कान थी. शायद वह उसके चेहरे पर खेलती उस मुस्कान का अर्थ नहीं समझ पाई. वह पुरुष था उस वक्त और अनु एक स्त्री. उस समय अनु के मन में उसके प्रति कोई भाव नहीं था. बिल्कुल सपाट था उसका मन. सामान्य होने के लिए अनु ने "हैलो" कहा और उसे बैठने के लिए कहा. वह बैठ गया और धीमे-धीमे कुछ गुनगुनाने लगा. वह अब तक कुछ समय नहीं पाई थी. वे दोनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे. जैसे ही बातचीत शुरू होने वाली थी कि वह अचानक उठ खड़ा हुआ. वह धीरे-धीरे अपनी जगह से चलता हुआ अनु के समीप आ गया. ऐसा लग रहा था मानो, अनु के शरीर का सारा रक्त किसी ने निचोड़ लिया हो और उसकी टांगें थर-थर कांपने लगी. चाहकर भी वह उठ नहीं पाई. अचानक उसके फौलादी हाथ अनु के कंधों पर आ टिके. एक भयानक शिकारी कुत्ते के पंजे मानो किसी मालूम मेमने को खाल समेत जकड़े हुए हों.

अनु की आंखें विस्मय से फट पड़ीं. गले से कोई आवाज नहीं निकल पा रही थी. पूरा बदन पसीने में सनता चला जा रहा था... पूरा जोर लगाकर अनु ने उसके हाथों को झटकाने की कोशिश की. लेकिन वह हार गई. अनु के असफल प्रतिरोध के साथ-साथ हौसला भी बढ़ता चला जा रहा था. अनु समझ नहीं पा रही थी कि, और किस प्रकार से वह प्रतिरोध करे...

"देखो अनु," अचानक उसका फटा स्वर अनु के कानों से टकराया... "मुझे गलत मत समझो. मुझे तुम बहुत अच्छी लगती हो... इसलिए मैं चाहता हूं... तुम मुझे और भी अच्छी लगो." कहता हुआ अनु पर झुकने की कोशिश करने लगा...

"लेकिन आप तो शादी-शुदा हैं—और इतनी अच्छी है आपकी पत्नी." "पुरुष और नारी सिर्फ पुरुष और नारी ही हैं. वह सभी अपनी ही जगह पर हैं. इसके लिए तुम इतनी भोली और मासूम हो... तुम्हें तो..." कहता हुआ वह और भी झुकता चला गया.

अचानक न जाने कहां से अनोखी शक्ति अनु के जिस्म में आ गयी और उसने पूरी ताकत लगाकर उसे झटक दिया. वह हड़बड़ा गया. बस वही अवसर अनु के हाथ आया और वह दरवाजा खोलने में कामयाब हो गई.

उसके बाल बिखरे हुए थे. चेहरा सुर्ख हो गया था... बिल्कुल बौखलायी हुई अनु सीढ़ियों से नीचे उतरी और गेट खोलकर बाहर सड़क पर आ गई... स्थिति को सामान्य होने में काफी देर लग गई. अनु कुछ समझ नहीं पा रही थी... और उस कमरे में घटित उस घटना का सीधा प्रभाव पड़ रहा था अनु के मन पर...

अनु, धीरे-धीरे विश्वास करती जा रही थी कि चाहे कुछ भी हो... सभी पुरुष एक जैसे होते हैं... ऑल मेन आर एलाइक... क्या पुरुषों ने शुरू से ही नारी को त्रिया-चरित्र नहीं कहा है?... एक मापदंड दे दिया है—शायद उसी प्रकार अनु ने भी दे दी एक परिभाषा पुरुष वर्ग की. सभी पुरुष मौका मिलने पर नीच से नीच हरकत पर उतर आते हैं... उनके मन का शैतान हर वक्त मौके की तलाश में रहता है. वह न जात देखता है, न देश-काल, न ही दुनिया. बस अवसर हाथ आते ही उस मौके का नाजायज फायदा उठाकर चलता बनता है...

अनु की सोच कुछ दूर तक जाकर रुक गई थी. अनु, जो कि जीवन में प्रवेश करने वाली थी... जीवन के पहले कदम पर ही घबरा गई. उसके अनुसार उसका अनुभव ही सब कुछ है.

धीरे-धीरे वक्त बीतता गया और सब कुछ सामान्य होता गया. अनु, वह बड़ी-बड़ी हंसती आंखोंवाली अनु... अब काफी चुप-सी रहने लगी थी. आंखों के कोर अब न जाने किस चीज की तलाश में रहते थे. रह-रहकर न जाने कहां खो जाती थी अनु अंदर-बाहर से बिल्कुल उदास और तन्हा...

आखिर ऐसा कब तक चलेगा... नहीं, मुझे अपनी इस मानसिकता को बदलना होगा... अनु ने निश्चय किया. शाम का वक्त था. ड्राईंगरूम में घर के लोग बैठे थे. शायद कोई आया था. बातचीत की आवाज आ रही थी कि अचानक अनु का बुलावा आया. अपने खयालों में खोई-सी अनु पहुंची. सामने साधारण व्यक्तित्ववाला एक औसत व्यक्ति बैठा था.

अनु... यह नवल है... अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है और अब रिसर्च कर रहे हैं. "हैलो"... बातचीत का सिलसिला बढ़ता चला गया.

अनु ने सोचना शुरू कर दिया. पूरी रात इस उधेड़बुन में काट दी कि क्या इस व्यक्ति पर प्रयोग किया जा सकता है. पढ़ा-लिखा, मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ और सबसे बड़ी बात, जिन-जिन चीजों में अनु की रुचि थी, उसमें नवल दक्ष था, निपुण था. बस फिर क्या था... अनु ने पहन ली केंचुली और निकल पड़ी उस प्रयोगात्मक यात्रा पर.

धीरे-धीरे मुलाकातों का सिलसिला बढ़ता चला गया. मानसिक रूप से अनु निश्चिंत थी... वह जानती थी चाहे कुछ हो वह इस व्यक्ति से भावानात्मक संबंध नहीं रखेगी. उसे तो बस एक प्रयोग करना था, वह कुछ खोज रही थी उसी साधारण व्यक्तित्व में...

"आपको मेरी सबसे अच्छी चीज क्या लगती है?"... अनु ने बड़े प्यार से उसकी आंखों में झांकते हुए कहा... नवल की आंखें अनु

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चेहरे के मुखौटे को नहीं देख पा रही थी... बस तरंग में नवल कहता चला जा रहा था... "अनु, तुम्हारी आंखें बहुत ही खूबसूरत हैं... और तुम्हारे हाथ... क्या बात है... तुम इतना अच्छा खाना बना लेती हो... आज के युग में ऐसा मिलना नामुमकिन है... तुमसे मिलकर ऐसा विश्वास होने लगता है कि आज की लड़कियां भी काफी रुचि रखती हैं गृहस्थी में...नहीं तो न जाने किस दिशा में भाग रही हैं... ये नारी-मुक्ति की बातें करनेवाली स्त्रियां?

बड़ा अच्छा लगा अनु को यह सब सुनकर—लेकिन कोई नयापन नहीं था इन बातों में. अनु इस सत्य को समझती थी, पुरुष चाहे कितने भी अपटुडेट हो, पढ़े-लिखे हों—औरत की परिभाषा उनके जबान से होकर सीधे पेट में उतरती है. घरेलू लड़कियां हर पुरुष की कमजोरी हैं शायद... साथ ही जरूरत भी...

अनु उससे प्रभावित हो रही थी. वह चाहती थी, नवल के करीब आए... उसे आजमाये. मुलाकातों का सिलसिला बढ़ाने के लिए अनु ने नवल से एक आग्रह किया.

"मैं आपसे अकेले में कुछ बातें करना चाहती हूं..."

"क्यों..." नवल ने पूछा...

"ऐसा ही..." अनु को कुछ नहीं सूझा... उसने झूठ का सहारा लिया... मैं कुछ लिखना चाहती हूं... वही कि मनुष्य समाज में रहकर भी क्या कुछ क्षण अकेले रह सकता है..."

"मतलब?"—नवल समझ नहीं पाया... अनु बातों को अलंकृत करती गई... "क्या मन का रिश्ता अनाम नहीं हो सकता है... क्या पत्नी, प्रेमिका, बहू-बेटी, बहन... यहां तक की दोस्त... सभी मान्य रिश्तों को समाज में रखता है? क्या ऐसा संबंध नहीं हो सकता है जो अपने-आप में महज दो व्यक्तियों तक ही अपने औचित्य और अनौचित्य के साथ परम गोपन हो". शायद अनु नवल को समझा नहीं पाई.

अनु जानबूझकर बेवकूफियां करती रही नवल के सामने. बच्चों की तरह हरकत... दो चुटिया बना कर, इतरा कर, नवल के सामने, कभी-कभी तो उसके कुछ-एक दोस्तों के सामने भी चली जाती. वह महसूस करती-नवल के आंखों में नफरत के भाव उतर आते बड़े ही दार्शनिक भाव में-नवल कह उठता... यू आर स्टिल ग्रोइंग..." अनु मन ही मन हंस पड़ती. उसका मुखौटा असर कर रहा था...

नवल का दोस्त शिवा आया था. बहुत ही अच्छा गाने वाला... काफी चर्चित. नवल को यकीन हो जाये कि अनु को गलतफहमी हो गई है... यानि अनु उसके प्रति आकर्षित हो चुकी है... काफी दूर तक...

"आप, अपने दोस्त को मेरे पास क्यों नहीं भेजते है?"... अनु ने शिवा से कहा... शिवा की समझ में शायद कुछ नहीं आया. "आपके मित्र के पास दुनिया के लिए वक्त है लेकिन मेरे लिए जरा-सा भी नहीं... हमेशा मुझे टाल जाते हैं" अनु की आंखों में शराफत थी... वह जानती थी कि इसके बाद उसे बड़े ही गलत ढंग से लिया जाएगा... शायद नवल और शिवा आपस में बातें करें, उसकी बखिया उधेड़ें... अनु ने इसकी परवाह नहीं की. नवल और शिवा की स्थिति में कोई भी ऐसा कर सकता था... यदि उसकी मानसिकता स्वस्थ होती तो...

आज अनु ने तय कर लिया था. उसकी आंखों में दृढ़ निश्चय के भाव झलक रहे थे. न ही उसकी टांगें कांप रही थी... न ही बदन पसीनों से सना था.

दिल धड़क रहा था...अनु जानबूझ कर आग में कूदना चाह रही थी... वह जानती थी, उसके जरा-सा चूक जाने से स्थिति काफी भयानक हो सकती है... अर्थ का अनर्थ हो सकता है... फिर भी वह अपने प्रयोग पर अटल थी.

बड़ी ही खूबसूरत शाम थी. आज अनु अपने घर में अकेली थी. वातावरण शांत था. अनु ने अपने आप को पूरी तरह से तैयार कर लिया था. साथ ही अपने इर्द-गिर्द जाल भी बुन लिया था...

नवल आया. अनु पूरी तरह से सतर्क हो उठी. उसके चेहरे पर मुस्कान थी शायद वक्त अनु एक स्त्री थी, नवल एक पुरुष. नवल शायद स्थिति को समझ नहीं पाया. सामान्य होने के लिए उसने "हैलो" कहा. दोनों चुपचाप खड़े थे. धीरे-धीरे अनु नवल के समीप आ गई. नवल इस अप्रत्याशित हरकत से चौंक उठा. फिर भी वह मुस्कुराने की कोशिश करने लगा. लेकिन वह पसीने से लथ-पथ हो गया... अनु उस पर झुकती चली गई और पूरे वेग से उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया. नवल बिल्कुल बौखला उठा. उसका दिल पूरे रफ्तार से धड़क रहा था... अनु के दिल की रफ्तार से कहीं ज्यादा...

अनु की आंखें नवल के चेहरे पर जा टिकी. नवल की आंखों में अजीब से भाव थे... आश्चर्य और पिपासा एक साथ झलक रहे थे. मानो इच्छा और मर्यादा में एक भयानक अंतर्द्वंद्व चल रहा हो... अचानक उसके फौलादी हाथ अनु के कंधों पर जा टिके... और पूरे वेग से नवल ने अनु को झटक दिया...

"आपके पास अवसर है... आप इस मौके का नाजायज फायदा क्यों नहीं उठाते हैं... क्यों नहीं वैसा करते है जो कि एक पुरुष ऐसे अवसर पाने का करता है?"... अनु ने अपनी तरंग में पूछा...

नवल के अधरों पर एक विचित्र-सी मुस्कान आई... आंखों में एक अजीब-सी चमक... "पुरुष सिर्फ अवसर और संवेग मात्र नही है—वह समाज का नियामक भी है, और रिश्ते हमेशा सामाजिक न्याय के लिए प्राथमिक सूत्र हैं. इसलिए अनु... तुम यह सोचो कि मेरा और तुम्हारा यहा होना, एक एकांत, एक संवेग क्या दो प्राणियों के मनोविकारों की लीला मात्र है... या कि इसकी कोई महती मानवीय ऐतिहासिक प्रक्रिया होनी चाहिए... तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो और मैं चाहता हूं कि तुम मेरे मन में निरंतर ऊंची उठो... ऊंची उठो... समझी अनु!" उसने होंठों पर निश्छल हंसी उभर आई थी... जैसे लहरों के निरंतर संघर्ष से समुद्र के होंठों पर दूधिया फेन उभर आता है.

...चूल्हे पर उबलते हुए चावल के बर्तन में से एक चावल को देखकर पूरे पकने वाले चावल की स्थिति का अंदाजा हो जाता है... लेकिन अनु ने अनुभव किया कि वह मुहावरा मनुष्य के लिए अक्षम है, क्योंकि पुरुष पतीले का उबलता हुआ मात्र एक चावल तो नहीं... उसकी अपनी अनुभूति भी तो होती है. □

चलते-चलते

प्रसिद्ध हास्य-अभिनेता जैक ल्योनार्ड बहुत मोटा है. एक दिन उसे, अपनी कार न होने पर, किसी जरूरी काम से टैक्सी में जाना पड़ा. वह घर से निकला ही था कि सामने सड़क पर एक छोटी टैक्सी देखकर जल्दी से उसके पास गया, और बड़ी कठिनाई से उसमें दाखिल हो कर सिमट कर बैठ गया.

"कहां जाना है?" टैक्सी-ड्राइवर ने पूछा.

"किसी बड़ी टैक्सी के पास, जैक ल्योनार्ड ने कहा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश फाइलों का दर्पण है!

उसने ले जाकर मुझे एक अंधेरे कमरे में खड़ा कर दिया. वहां दिन में बत्तियां जल रही थीं और फर्श से छत तक फाइलें ही फाइलें अटी थीं.

"ढूंढ लो अपने चाचा को," उसने कहा और जाने लगा.

"पर मेरे चाचा तो जबलपुर में हैं," मैंने उसे सूचित किया.

"तुमने ही तो बताया था कि तुम्हारे चाचा इसी विभाग से रिटायर हुये हैं. सरकार में पहले दिन से हर कर्मचारी फाइल बन जाता है. एक बार फाइल खुली तो उसके मरने के बाद ही बंद होती है. तुम्हें और तुम्हारे चाचा को यही शिकायत है न कि उनकी फाइल गुम होने से उन्हें पेंशन कम मिल रही है. यह रिकार्ड रूम 'कान्फिडैन्शियल' स्थान है. प्रशासन ने यहां आने की इजाजत देकर तुम्हारे साथ खास रियायत बरती है. अब तलाशो अपने चाचा को!" कहकर चला गया.

इतने में पास के रैक से दो चमकती आंखों ने मुझे घूरा. मेरी चीख निकल गई. चार-पांच लोग सुनकर दौड़े आये. एक ने टार्च उधर फेंकी. रैक के ऊपर एक तख्ते पर लिखा था 'योजनाबद्ध विकास'. दिलासे का स्वर गूंजा, "डरिये नहीं. चूहे नियोजित विकास को कुतर रहे हैं. आपको नहीं काटेंगे, बस आप चीखें-चिल्लायें नहीं आप अपना काम करिये, उन्हें उनका करने दीजिये."

मेरे चेहरे की निराशा को पढ़कर फाइल-खोजू-टोली के एक युवक ने मुझसे हमदर्दी जताई– "आप बेकार परेशान हैं. आपको चाचा की फाइल मिले न मिले, उन्हें पेंशन तो मिल रही है. मेरे पिताजी इसी रिकार्ड रूम में काम करते थे. एक बार बाढ़ आयी तो अंग्रेज़ों के वक्त अपनाये गये राहत के उपायों की फाइल की खोज शुरू हुई. वह सीढ़ी लगाकर रैक के ऊपरी शैल्फ तक पहुंचे ही थे कि पैर फिसल गया. बस ऐसा गिरे कि फिर उठे ही नहीं. तब मैं सोलह साल का था. उसी समय यह निर्णय हुआ कि दो साल बाद करुणामूलक आधार पर मेरी नियुक्ति कर दी जायेगी. अठारह वर्ष की आयु से अपनी फाइल की मृग-मरीचिका में उलझे-उलझे अब मेरी चौबीसवीं वर्षगांठ होने को है. कई अर्जियां दीं. अधिकारियों से मिला. पता लगा कि सरकार में एक ही विषय पर दो फाइलें नहीं खुलतीं, जब तक कि कोई खास बात न हो. बड़े बाबू का कहना है कि मेरी बेरोजगारी, मेरी मां-बहन का रो-धोकर गुजारा करना, हमारी गरीबी, ऐसी विशेष परिस्थितियां नहीं हैं कि दूसरी फाइल खुलने की छूट मिल सके. उनके अनुसार आज के आम हालात ही ऐसे हैं."

इस फाइल-गाथा को सुनकर मुझे अंदर से खुशी हुई. यहां अपने पैर में तो सिर्फ कांटा चुभा था. इस असहाय के तो पैर ही गायब थे. ज़ाहिरा तौर पर सबने उसके साथ सहानुभूति जताई. तय हुआ कि टार्च की बैटरी चुकने के पहले अपनी-अपनी फाइल की सम्मिलित तलाश की जाये. रिकार्ड रूम से पुश्तैनी ताल्लुकात रखने वाले नौजवान ने बताया कि एक विषय की फाइलों को एक ही जगह रखा जाता है, "व्यक्तिगत मिसिलों में आपके मतलब की फाइलें होंगी." टार्च की रोशनी दुर्घटनावश एक रैक पर पड़ी. वहां लिखा था 'सर्विस रिकार्ड.'

नयी खोज के उल्लास में आशा और उत्साह से सब लोग उधर दौड़े. हर रैक में चूहों की बीट, दीमक चटे कागज और उल्टे टंगे चमगादड़ नजर आये. "क्या यही सरकार के सेवकों का भविष्य है! भैया प्रत्याशी! आप क्यों इस दशा को प्राप्त होने के लिये रात-दिन एक कर रहे हैं," हममें से किसी ने युवक को चेताया.

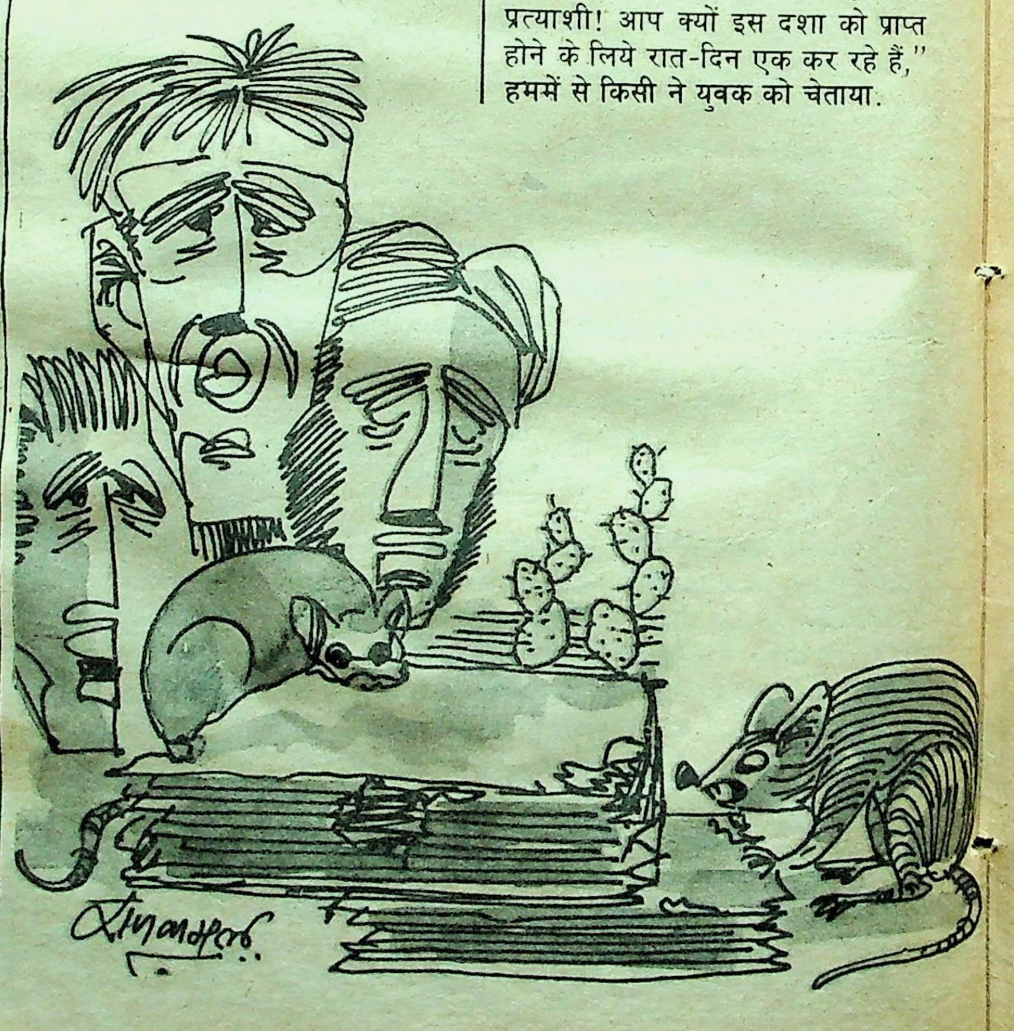

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप अपने नहीं, अपने रिश्तेदारों के कागज खोज रहे हैं. कुछ न होने की दिक्कत आप क्या समझें! दीमक-चटे कागज बनने के लिये लाखों-करोड़ों का क्यू है. एक बार अंदर घुसकर अधिकार की कुर्सी पर उल्टे टंगने के इच्छुक हजारों प्रतियोगी हैं. आप जाना चाहें तो जायें. मैं तो अपनी फाइल ढूंढकर ही दम लूंगा."

हमने उसे सुझाया कि वह पान की दूकान खोल ले. कागजों पर बीट करने से ग्राहकों के चूना लगाना कहीं बेहतर है. वर्ना पंप खरीदकर साईकिल के पंक्चर जोड़े, उनमें हवा भरे. कम से कम खुली हवा में तो रहेगा. उसने हमारी एक न सुनी. अपने हित-अहित का सवाल न हो तो बौद्धिक बहस अकसर रोचक और लंबी हो जाती है. उसने झल्लाकर मुझे बताया कि पान खाना देश के हित में नहीं है. सिगरेट से फेफड़ों का और पान से मुंह के कैंसर का खतरा है. सरकार की नौकरी करके वह अपने मुल्क, जनता की खिदमत करना चाहता है. "इनका इरादा व्यापक स्तर पर कैंसर फैलाने का है," किसी ने चोट की. चर्चा के दौरान टार्च की बैटरी चल बसी. कमरे के बाहर दोपहरी की धूप चढ़ी थी और अंदर ट्यूब लाइटों के प्रकाश के बावजूद अंधेरा. हम लोगों के पास वहां से कूच करने के अलावा कोई चारा न था.

"हमें यहां के अधिकारी से मिलकर शिकायत करनी चाहिए." एक सुझाव आया.

"साहब के यहां जरूरी मीटिंग चल रही है. उनकी मेम साब उनके पास बैठी हैं," चपरासी ने हमें इंतजार करने की सलाह दी और कमरे के बाहर जलती हुई बत्ती की ओर इशारा किया. हमने देखा कि पूरे बरामदे में कतार से अफसरों के कमरे थे और पूरा बरामदा 'रेड-लाइट एरिया' बना हुआ था. "क्या ये सारे अधिकारी ऐसी ही मीटिंगों में व्यस्त हैं," मैंने जानना चाहा. "और नहीं तो क्या! अभी मीटिंगें चल रही हैं और फिर लंच चलेगा. फिर मीटिंगें," उसने सिलसिला बताया.

उसने खैनी पीटी. "और आप लोग क्या करते हैं," मैंने इस अनंत कार्य-व्यस्तता की प्रक्रिया में उसकी भूमिका दरयाफ्त की. "हम भी सेवा करते हैं. कागज इधर-उधर ले जाते हैं ओवर-टाइम कमाते हैं. कभी चाय का इंतजाम कभी कॉफी का. आप लोगों को साहब से मिलना है न," उसने विषय बदला. हम सबने कोरस में कहा "हां."

"हमें क्या मिलेगा",

"कितना चलेगा," मैंने रेट पूछा. "जो भी हुजूर दे दें. हम तो बस ईनाम के भूखे हैं घूस-कमीशन तो हमारे बड़े खाते हैं," उसने अपनी नैतिक-श्रेष्ठता बयान की. सौदा पांच रुपये में पटा. कुछ देर बाद हम सब साहब के मंदिर में हाथ जोड़े खड़े थे.

"देखिये! आप लोग बिना पूर्व सूचना के आये हैं. अपनी बात जरा जल्दी कहिये. हम जनता के सेवक हैं इसलिये आपसे मिल लिये. आप जितना वक्त लेंगे, देश का उतना काम रुकेगा. हां, तो बताइए क्या बात है," अफसर ने तकरीर की. कमरे में अब तक विदेशी फरफ्यूम गमक रही थी. "मैं अपनी फाइल खोज रहा हूं," बेरोजगार युवक बोला. "हम लोग अपने रिश्तेदारों की," हम सब बोले, "तो मैं क्या करूं. आप लोग रिकार्ड के अनुभाग अधिकारी से मिलें. उसके अफसर से मिलें. अंडर-सैक्रेटी से बात करें. मेरे पास क्यों आये हैं," साहब ने हमें हड़काया.

फाइलों की इफरात हो और स्टाफ की कमी तो रिकार्ड रूम जैसे गोपनीय कक्ष में जनता को ले जाये बगैर काम कैसे हो सकता है...?

"हम सबके चक्कर काट चुके हैं. अंडर सैक्रेटी ने हमें खुद रिकार्ड रूम जाकर फाइल तलाश करने की अनुमति तो दे दी पर वहां न काफी रोशनी है, न कोई बताने वाला कि कहां क्या है," युवक ने वस्तुस्थिति बताई.

"यहां कौन-सा उजाला है," साहब ने दीवाली से जगमग अपने वातानुकूलित कक्ष का रोना रोया. "हमारे यहां फाइलों की इफरात है और स्टाफ की कमी. वर्ना रिकार्ड रूम ऐसे गोपनीय कक्ष में आपका जाना कतई गैर-कानूनी है."

नवयुवक ने उन्हें बीच में टोका, "सर! स्टाफ कम है तो मुझे ले लें. रिकार्ड की सेवा तो हमारा खानदानी पेशा है."

"आपको कैसे ले लूं! वैकेंसी नहीं है, नये पद बन नहीं पा रहे फायनेंसवाले मानें तब न. अब दस फाइलों पर एक कर्मचारी होना चाहिये. हमारे यहां हजारों पर एक है. वह तो हमारे कर्मचारी मेहनती और निष्ठावान हैं और मुझे अपना आदर्श मानते हैं, इस कारण काम चल रहा है नहीं तो सब ठप्प हो जाता," साहब अपने को शाबाशी दे रहे थे कि उनका ड्राइवर आ गया. उसने बताया कि वह मेमसाब को सकुशल घर पहुंचा आया है और अब 'बाबा' को क्रिकेट प्रैक्टिस के लिये ले जायेगा.

मैंने मौके का फायदा उठाकर साहब को फाइलें कम करने की सलाह दी. "यही देखने मैं हारवर्ड गया और फिर टोकियो. उनसे हमारी व्यवस्था किसी मायने में कम नहीं है. बस उनकी आबादी कम है तो फाइलें भी कम हैं. अब अपना प्रशासन कोई एक-तंत्र का फ्यूडल शासन तो है नहीं. हम लोग आपके सेवक हैं. आप एक पत्र लिखते हैं तो एक फाइल खुल जाती है. करोड़ों लोग हैं और फिर सबको शिकायती चिट्ठियां लिखने की बुरी आदत है. रोज सैकड़ों फाइलें खुलती हैं. आप ही बताइये हम क्या करें. आप यों समझिये कि देश की तरक्की फाइलों से जुड़ी है. अब अगर झुमरी तलैया में लगा नलकूप काम नहीं करता या भौंगांव में बनी पुलिया टूट गयी है तो निर्णय तो फाइल पर ही लेना पड़ेगा," साहब कुछ और प्रवचन करते कि उनके अवसर सचिव पधारे

"सर! डिस्कशन के केस हैं."

"आप देखते नहीं कि हम पब्लिक की शिकायतें सुन रहे हैं. ऐसे आपने इन लोगों की रिकार्ड-रूम में जाने की 'परमीशन' देकर ठीक नहीं किया पर हम आपके खिलाफ 'एक्शन' नहीं लेंगे. प्रशासन में जनता का प्रवेश यों ही संभव है." साहब हमारी तरफ मुखातिब हुये, "देखिये! हम यहां निर्णय लेने के लिये हैं, फाइल तलाशने के लिये नहीं. आप लोग फाइल खोज निकालिये, हम तत्काल निर्णय ले लेंगे. क्यों वर्मा?"

अवर सचिव अब तक भीगी बिल्ली बन चुके थे. उन्होंने हां में हां मिलाई, "बिल्कुल सर! अपने यहां तो 'डिले' का सवाल ही नहीं है. फाइल आयी और उसे दूसरी मिनिस्ट्री को 'रैफर' किया."

"पर सर! फाइलों में तो दीमक लग गई है," नवयुवक ने एतराज किया. "आप बहुत बोलते हैं," साहब ने डांटा. "जब देश में दीमक लग रही है तो फाइलों में क्या चंदन लगेगा. आखिर देश फाइलों का ही तो दर्पण है," साहब बोल गये! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाही उपन्यास तीसरी किस्त

□ दास्तोयेव्स्की

रुपहली रातें

मैं उसके बगल में बैठा था. यथासंभव गंभीर मुद्रा बनाकर मैंने धीरे-धीरे कहना शुरू किया जैसे कोई रटा-रटाया पाठ सुना रहा होऊं.

"शायद तुम्हें ज्ञात न हो नास्तेंका, लेकिन इस पीटर्सबर्ग में कुछ अंधियारे कोने भी हैं. सारे नगर को प्रकाशित करने वाला यह सूरज इन कोनों तक कभी नहीं पहुंचता. वहां तो एक दूसरा सूरज अपना प्रकाश लुटाता है, जो विशेषत: इन कोनों के लिए ही बना है और जो प्रत्येक वस्तु को एक बिल्कुल ही अलग और विशेष प्रकार की रोशनी में रंग देता है. इन दूरस्थ कोनों का जीवन, एक दूसरी ही दुनिया है. जिसकी नगरवासियों की इस व्यापक और सामान्य जिंदगी से कोई समता नहीं. उसे देखकर लगता है कि ऐसा जीवन हमारी इस धरती के गंभीर और बोझिल जीवन से कहीं दूर किसी सुंदर और रहस्यमय लोक में ही होना संभव है. और यह जीवन आदर्श और कल्पना का एक अद्भुत मिश्रण है. लेकिन दूसरी ओर यह जीवन बिल्कुल साधारण, महत्वहीन और अनाकर्षक भी है."

"ओ हो, हे ईश्वर, क्या भूमिका बांधी है. मैं तो चकित हूं कि मैं कथा सुनने जा रही हूं?"

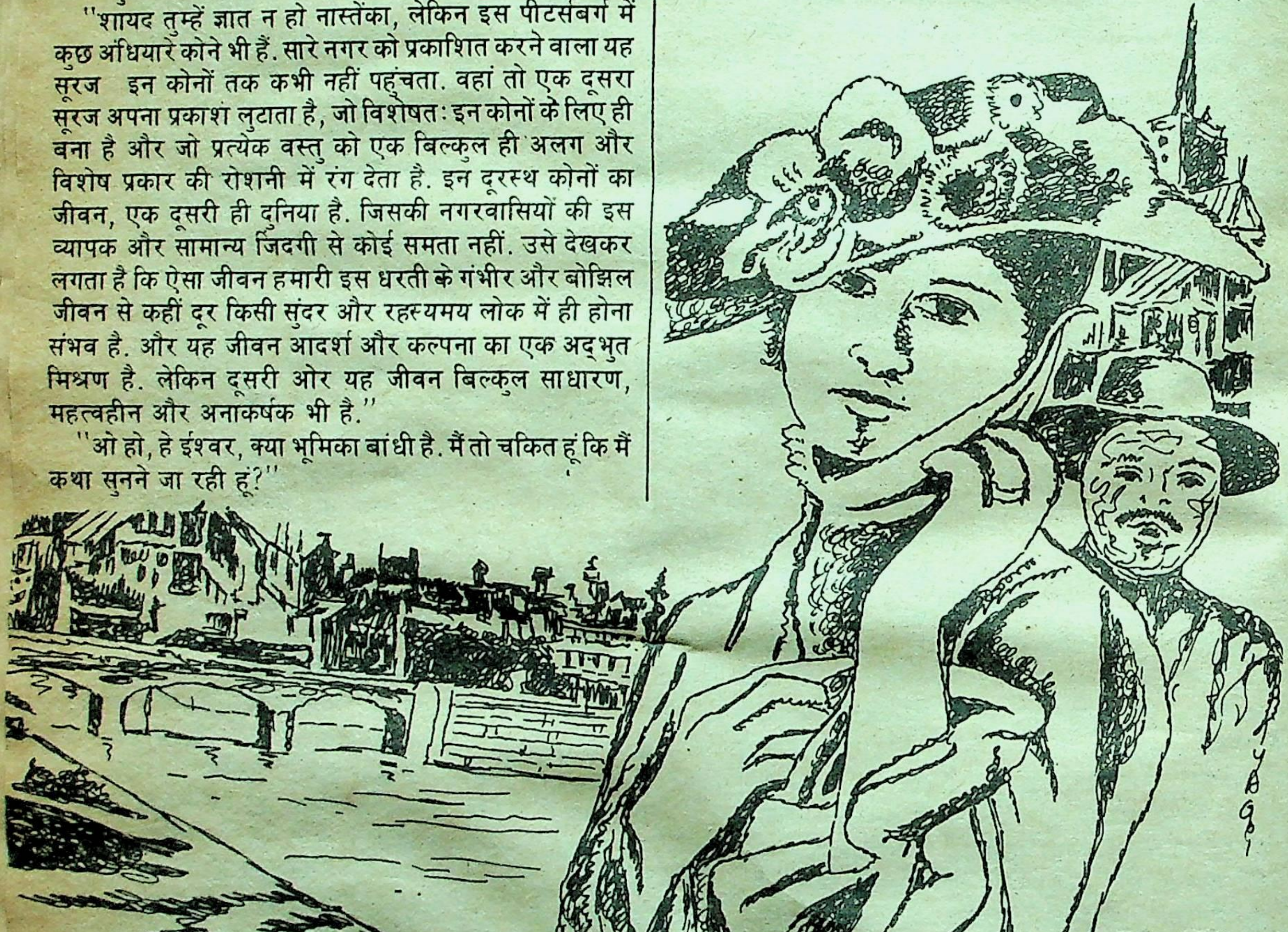

"नास्तेन्का (मैं सोचता हूं कि मैं तुम्हारा नाम लेते-लेते कभी न थकूंगा) नास्तेंका, तुमने सुना हो या न सुना हो, कि इस घनी बस्ती से दूर इन कोलाहल शून्य कोनों में एक अजीब किस्म के लोग रहा करते हैं– स्वप्नदर्शी. अगर तुम इस शब्द की ठीक-ठीक परिभाषा जानती हो – तो तुम्हें यह भी ज्ञात होगा यह स्वप्नदर्शी मनुष्य नहीं मनुष्येतर प्राणी होता है. यह प्राणी अधिकतर किसी ऐसे कोने को अपना नीड़ बनाता है, जहां कोई न पहुंच सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है कि अपने को दिन के प्रकाश से बचाना चाहता हो. और जैसे ही एक बार उसने अपने इस खोल में प्रवेश किया कि वह घोंघे की तरह चिपक जाता है. और इस दृष्टि से वह मजेदार प्राणी कछुए से बहुत कुछ मिलता-जुलता है जो एक ही साथ स्वयं जीव और घर दोनों है. क्या तुम बता सकती हो कि वह अपने कमरे की चार-दीवारों को जिनका रंग अक्सर हरा होता है और बरसों की धूल और धुएं से जो धुंधली और बेरौनक हो गयी होती हैं— क्यों इतना चाहता है? ऐसा क्यों होता है कि एक-एक करके उसके सारे दोस्त उससे नाता तोड़ लेते हैं? क्यों ऐसा होता है कि जब कभी इसका कोई दोस्त उसे आकर पुकारता है, तो यह उपहासास्पद व्यक्ति बदहवास और घबड़ायी हुई हालत में उसका स्वागत करता है और उस समय उसके चेहरे पर उड़ती हुई हवाइयों को देखकर लगता है कि गोया कभी-कभी उसने इस कमरे की चार दीवारों के अंदर कोई जघन्य अपराध कर डाला हो, या वह जाली नोट बनाते हुए पकड़ लिया गया हो, या वह कोई कविता रच रहा

...पिछले अंक में आपने पढ़ा कि किस तरह नायक और नायिका में परस्पर संवाद ने संकोच की जंजीरें तोड़ी और वे उन्मुक्त होकर देर तक बातचीत करते रहे... इस बार पढ़िये संवाद की अगली कड़ी जो कहीं गहरे में दोनों को और करीब ला खड़ा करती है.

हो, जिसे वह एक गुमनाम पत्र द्वारा किसी पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए डरते-डरते भेजेगा और उस पत्र में कहेगा कि इस कविता का प्रणेता कवि मर चुका है लेकिन चूंकि वह उसका मित्र था इसलिए उसकी उस रचना को मरणोपरांत प्रकाशित कराना अपना पुनीत कर्तव्य समझता है, इसलिए उसने इसे भेजा है? बताओ नास्तेंका कि उन दोनों दोस्तों के बीच होनेवाली बातचीत इतनी औपचारिक और नीरस क्यों होती है. क्यों वह विस्मयविमूढ़ आगंतुक न तो कोई मजाकिया फिकरा कसता है और न उसकी अट्टहासी हंसी सुनायी पड़ती है जबकि स्वभाव में वह खासा हंसोड़ और मन मौजी आदमी है और अगर कोई दूसरा मौका होता तो वह स्त्रियों के बारे में या किसी और दूसरे हल्के-फुल्के विषय की चर्चा जरूर छेड़ बैठता? आखिर क्यों, उसका नया दिखायी पड़ने वाला यह दोस्त, जो कि पहली बार उससे घर पर मिलने आया था, इतना सकते में आया हुआ और अवाक् होकर रह जाता है और अपने स्वागतकर्ता के परीशांहाल चेहरे को देखकर अपनी सारी वाक्पटुता भूल जाता है? और इधर दूसरी ओर उसका मेजबान बिल्कुल बदहवास-सा बड़ी कोशिशों के बाद इस मौन को तोड़ने का प्रयास करता है और बातचीत का रंग जमाने के लिए अपनी प्रवृत्ति से कोसों दूर, स्त्रियों के बारे में कोई चलती-फिरती राय पेश करके यह दिखाने का दावा करता है कि सामाजिक आचार-व्यवहार में वह मंजा हुआ है, और इस तरह अपने आफत के मारे गलती से भटककर अचानक मिलने चले आने वाले दोस्त को खुश करने की नाकाम कोशिश कर रहा होता है? ऐसा क्यों होता है की आगंतुक को सहसा ही कोई काल्पनिक अत्यावश्यक काम याद आ जाता है और जबकि उसका मेजबान यह दिखाने की हरचंद कोशिश कर रहा होता है कि वह लज्जित है और स्थिति को सुधारने के प्रयत्न में है— वह उसके कांपते हाथों में से अपना हाथ मुक्त करके, झटके से अपना टोप उठाकर धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियां उतरकर सीधे सड़क पर पहुंच जाता है? किस लिए कमरे से बाहर निकलते ही आगंतुक की रुकी हुई हंसी फूट पड़ती है और वह वहीं और उसी जगह कसम खाता है कि अब कभी इस विचित्र प्राणी से मिलने न आयेगा, जबकि सही बात यह है कि वह विचित्र प्राणी बहुत ही भला और निश्छल व्यक्ति है? लेकिन आगंतुक दोस्त को इतने ही से संतोष नहीं होता. इसके साथ ही वह अपनी कल्पना की दौड़ रोकने में भी स्वयं को असमर्थ पाता है. उसे अपने दोस्त के मुख की बिल्ली के उस नन्हे और मासूम बच्चे से तुलना करने के मुख की बिल्ली के उमड़ आती है, जिसे कुछ शरारती बालकों ने चालाकी से बंद करके हर तरह से सताया, डराया और पीड़ित किया हो, और वहां भयाक्रांत और रोमांचित खड़े हुए हांफते-हांफते दोनों पंजों से अपना चोट खाया हुआ मुख सहलाते हुए उसे घंटा भर रहना पड़ा हो. इसके बाद कहीं देर हो जाने पर बाहर निकल कर वह डरते-डरते चारों तरफ देखता है और साहस करके अपने मालिक की मेज पर रखे हुए रोटी के टुकड़ों पर निगाह डालता है जिन्हें घर की दयालु नौकरानी ने उसके लिए बचा रखा था."

नास्तेंका, जो अभी तक आश्चर्य में डूबी हुई खुले हुए होंठों ओर विस्फारित नेत्रों से मुझे सुन रही थी, फूट पड़ी, "मैं कहती हूं, मैं कहती हूं कि मेरी तो खाक भी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर, ऐसे हास्यास्पद प्रश्न तुम क्यों मुझसे पूछ रहे हो, और यह सब क्यों घटित हुआ? लेकिन इतना निश्चित जानती हूं कि शुरू से लेकर-आखिर तक ये सारी बातें तुम्हारे साथ ही हुई हैं."

"निःसंदेह," मैंने अत्यंत गंभीर स्वर में उत्तर दिया. "अगर यही बात है तो फिर आगे बताओ, क्योंकि मुझे सबसे ज्यादा उत्कंठा तो इस बात की है कि इसका उपसंहार क्या होगा."

"तो तुम जानना चाहती हो नास्तेंका कि नायक, अथवा मैं, क्योंकि इस कहानी का नायक, मैं, मैं बदनसीब ही था— अपने इस एकांत कोने में कया कर रहा था? जानना चाहती हो कि अपने दोस्त के अप्रत्याशित आगमन ने मुझे क्यों असंतुलित करके विक्षिप्त-सा बना दिया? तुम जानना चाहती हो कि सहसा दरवाजा खुलते ही मैं इस कदर चौंककर इतना बदहवास क्यों हो गया? क्यों अतिथि सत्कार की इस पशोपेश के नीचे दबा होने पर भी मैं अपने आगंतुक दोस्त का स्वागत सत्कार करने में असफल हुआ और बिल्कुल दयनीय बनकर रह गया?"

"हां, हां, यही तो," नास्तेंका ने उत्तर दिया, "यही तो मैं जानना चाहती हूं. देखो, तुम बड़े सुंदर ढंग से यह वर्णन कर रहे हो, लेकिन क्या तुम इसे कुछ कम सुंदर नहीं बना सकते क्योंकि तुम्हारी बातें सुनकर आभास होता है कि तुम कोई पुस्तक मुझे पढ़कर सुना रहे हो."

मैंने बड़ी कठिनाई से अपनी हंस पड़ने की इच्छा को दबाया और यथासंभव गंभीर स्वर में उत्तर दिया, "मेरी अच्छी नास्तेंका, मैं जानता हूं मेरा संभाषण मनमोहक है, लेकिन दुख है कि और किसी ढंग से मैं बोल भी नहीं सकता. इस समय तो, नास्तेंका प्रिये, मैं सम्राट सोलोमन के उस प्रेत की तरह हूं जिसे सात ताले जड़कर संदूक में बंद कर दिया गया हो. और आखिरकार उसने वे सातों ताले तोड़ लेने में सफलता प्राप्त कर ली हो. नास्तेंका मैं तुम्हें युग-युगांतर से जानता हूं, और तुम्हारी तलाश में भटक रहा हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुम मेरी परिचिता हो, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि हमारा तुम्हारा यह मिलन एक पूर्वनिश्चित संयोग है— और जब इतने लंबे अर्से के वियोग के बाद हमारी भेंट हुई है तो लगता है कि मेरे मस्तिष्क के हजारों स्रोतों के द्वार एक साथ खुल गये हैं और अगर मैं उन्हें अभिव्यक्ति नहीं देता तो वे मुझे समूचा डुबो देंगे और सांस घुटने-घुटने से मैं मर जाऊंगा. इसीलिए नास्तेंका, मैं तुमसे याचना करता हूं कि मुझे बीच में रोको मत, बल्कि गंभीरतापूर्वक और ध्यान देकर मेरी बातों को सुनो, नहीं तो मैं बस अभी चुप हो जाऊंगा."

"नहीं, नहीं, नहीं, ओह, नहीं तुम बोलो. मैं एक भी शब्द नहीं कहूंगी."

"अच्छा, तो आरंभ करूं. मेरी प्यारी मित्र नास्तेंका, दिन भर में एक समय ऐसा होता है जिसे मैं असाधारण रूप से पसंद करता हूं. यह विशेष समय तब होता है, जब सारा काम काम, नौकरी-चाकरी और व्यापार-धंधे से छुटकारा पाकर हर आदमी सायंकालीन भोजन, एक मीठी नींद, किसी सुहानी जगह संध्या बिताने, रात्रि में आमोद-प्रमोद करने और अपना बाकी समय तरह-तरह के शुगलों में गुजारने के बाद में सोचता हुआ घर की तरफ जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता जाता है. इसी समय हमारा नायक भी (नास्तेंका, मुझे अनुमति दो कि मैं यह सारी कथा तृतीय पुरुष के माध्यम से सुनाऊं, क्योंकि अगर मैंने प्रथम पुरुष का प्रयोग किया तो मारे संकोच के मैं यही गड़ कर रह जाऊंगा) इसीलिए, हां तो हमारा नायक भी, जो निश्चय ही कोई नाकारा नहीं, सबसे साथ जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता है. लेकिन उसके पीले और बीमार से दिखायी देने वाले चेहरे पर इस समय एक अद्भुत आनंद की छटा झलक रही होती है. वह सेंट पीटर्सबर्ग के शीतल आकाश के सागर में धीरे-धीरे डूबते हुए सूरज को औरों की तरह निरपेक्ष भाव से नहीं देखता है. परंतु, जब मैं कहता हूं कि वह देखता है तो यह झूठ होता है. दरअसल वह उसे देखता नहीं, बल्कि जैसे किसी बड़े आकर्षण में डूबा हुआ वह अनायास और असंपृक्त भाव से उस पर दृष्टि डालता है, क्योंकि इस समय वह संसार को केवल एक उड़ती हुई निगाह से एक क्षण को देखने की फुरसत भर में ही है. वह इसलिए खुश है कि अपने नीरस और उबा देने वाले काम काज से कल तक के लिए वह मुक्त हो गया है. वह इस समय उस स्कूली लड़के की तरह महसूस कर रहा है जिसे अपने मनचाहे खेल खेलने और शरारतें करने के लिए कक्षा से छुट्टी दे दी गयी हो. जरा उसकी ओर देखो तो नास्तेंका, तुम्हें तुरंत मालूम हो जायेगा कि इस खुशी ने उसके सुकोमल भाव-तंतुओं और संवेदनशील कल्पनाशक्ति पर कितना अच्छा प्रभाव डाला है. देखो, अब यह विचारों में खो गया है. क्या तुम समझती हो वह रात के डिनर के बारे में सोच रहा है? या संध्याकालीन मनोरंजन के? वह इस तरह निमग्न होकर किसकी तरफ देख रहा है? क्या उस आकर्षक व्यक्तित्व वाले संभ्रांत व्यक्ति की तरफ, जिसने हवा से बात कर रहे घोड़ों वाली विक्टोरिया पर सवार उस महिला को देखकर बड़े नाटकीय ढंग से सिर झुकाकर अभिवादन किया है? नहीं नास्तेंका, ये सब छोटी-मोटी बातें भला अब उसके आगे क्या अर्थ रखेंगी? वह तो अपने उस विशिष्ट संसार की उपलब्धियों से भरा-पूरा है, जिसका बोध यकायक उसे उस समय हुआ जब अस्ताचलगामी सूर्य की विदा लेती हुई किरणें उसके सम्मुख एक अनोखी प्रसन्नता से थिरक उठीं और उसके सुप्त हृदय में अनगिनत कल्पनाओं की लहरें आलोड़ित कर दीं. सामने वाला वह रास्ता, जहां क्षण भर पहले कोई छोटी-सी बात भी उसे चौंका देने के लिए पर्याप्त थी. अब उसके आगे से लुप्त हो गया है. ऐसा इसलिए हुआ कि कल्पना देवी ने (तुमने अगर जुकोव्स्की को पढ़ा है तो तुम समझ लोगी नास्तेंका) उन्मन होकर अपना सुनहरा धागा उठा लिया है और उसके लिए स्वप्नों के झीने लहराते हुए आंचल बुनने लगी है. एक कल्पना प्रसूत सतरंगे जीवन के सपने और कौन जानता है कि उसी ने हमारे नायक को अपने जादुई हाथ के स्पर्श से पत्थर की उस पटरी से उठाकर नक्षत्र-जटिल सातवें आसमान पर पहुंचा दिया हो— जिस पर होकर वह घर की ओर जा रहा था. अगर तुमने इस समय उसे टोककर अचानक यह सवाल पूछा होता कि इस समय वह किस स्थान पर है और इस सड़क का क्या नाम है, तो शायद वह कुछ भी न बता पाता और अपनी परेशानी से झेंपता हुआ लाज बचाने के लिए कोई न कोई कथानक गढ़कर सुना देता. और यही कारण है कि जब सड़क के बीचोंबीच एक सम्मानित वृद्ध महिला ने सहसा उसे रोककर रास्ता पूछा तो वह घबराकर लगभग चीख पड़ा और विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर सशंकित होकर देखने लगा. क्षुब्ध होकर झुंझलाता हुआ अब वह लंबे-लंबे डग भर रहा है. उसे इस बात का जरा भी ध्यान नहीं है कि लोग उसे मुड़-मुड़ कर देख रहे हैं या उस पर व्यंग्यभरी मुस्कानें फेंक रहे हैं. और न उसका ध्यान उस छोटी-सी बालिका की ओर जाता है जो डरते-डरते उसका रास्ता काटती है. और फिर उसके फड़कते हुए हाथ और किसी अज्ञात कारण से आयी हुई हंसी से खुल गये होंठों को देखकर हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाती है. लेकिन तब तक कल्पना की देवी ने उसे इन उत्सुक राहगीरों, वृद्ध महिला, हंसी से लोटपोट होती बालिका और फोन्तेन्का के तट पर बिखरे हुए शाम के भोजन में मस्त मछुआरों के बीच से उठाकर पुनः अपने चमकीले पंख पर बैठा लिया है. और उसे उड़ाकर ले चली है. उसने हर किसी व्यक्ति और हर किसी वस्तु को अपना जादू फेरकर एक सुनहरे जाल में इस तरह से बुन दिया है कि जो कुछ भी है, कीड़े-पतंगों की तरह इसमें फंसता ही चला जाता है, और हमारा नायक कल्पना की इस दुनिया को संजोये हुए अपने छोटे से नीड़ में प्रवेश करता है. वह बैठ गया है. मेज पर रखा हुआ रात का भोजन भी वह अनमने भाव से जैसे-तैसे निगल लेता है, और जब सदा गंभीर और उदास दिखने वाली नौकरानी मात्रयोना उसके हाथ में पाइप थमाती है तब वह इन सपनों से जाग उठता है. वह अपने सामने चैतन्य होकर देखता है और तब उसे यह तथ्य मालूम होता है कि बिना भोजन-क्रिया को महसूस किये ही उसने अपना रात का भोजन कभी का समाप्त कर डाला है. □

अगले अंक में

किस तरह स्वप्नदर्शी नायक की कल्पना पुनः खड़ी होकर नयी उड़ान भरती है... और सहसा एक बिल्कुल नया संसार उसकी आंखों के सामने कौंध जाता है... कैसा है यह संसार?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन के दिन

28 वर्षों तक धर्मयुग का संपादन करके डा. धर्मवीर भारती ने हिंदी की साप्ताहिक पत्रकारिता को नया स्वरूप और दिशा प्रदान की. उनकी अगुवाई में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने लाखों नये पाठक बनाये, उनमें पढ़ने की आदत डाली. लेकिन इस भागीरथी प्रयास में हमने कथाकार भारती को लगभग खो दिया. 'यह मेरे लिए नहीं' और 'बंद गली का आखिरी मकान' के लेखक को हम जैसे कुछ लोग बराबर ढूंढते रहे. पिछले वर्ष वे संपादन कार्य से मुक्त हुए तो उम्मीद बंधी कि अब ये लिखेंगे. एक नया दौर शुरू होगा, चर्चा-सराहना-विवाद-कटु आलोचना, याने गतिविधियां बढ़ेंगी. भारती लिखें और पाठकों में हलचल न मचे, ऐसा कैसे हो सकता है. लेकिन प्रतीक्षा लंबी होती गयी, कोई खबर नहीं, रचना नहीं. ताज्जुब यही होता है कि सेवा निवृत्ति तो संपादक की होती है, लेखक की नहीं, फिर यह सन्नाटा क्यों?

अब खबर आयी है, भारती लिखने का इरादा बना रहे हैं. हाल ही में रविवार को दिये गये साक्षात्कार में उन्होंने कहा है, "वैसे इरादा मेरा यह है कि पहले एक उपन्यास—अपने मुहल्ले में, जो बचपन बिताया है, उसमें जो लोग मिले हैं, उनकी जो यादें छूट गई हैं, उस समय की जो मूल्य मर्यादाएं थीं, इन्सानी रिश्ते थे, उनको लेकर एक उपन्यास, एक छंदबद्ध नाटक, ये दो चीजें पहले लिखने की इच्छा है."

उम्मीद है कि जो साहित्यकार संपादक भारती से नाराज हो गये थे, वह भी लेखक भारती की वापसी पर प्रसन्न होंगे. हो सकता है इस बार वे प्रगतिशील या जनवादी या कोई ऐसी ही चीज के रूप में नजर आयें.

बचपन के दिन-2

नहीं लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं—ज्ञान रंजन. 'पहल' का संपादन शायद लिखने में आड़े आता हो. उनके न लिखने पर सदके जाते हुए स्वयंप्रकाश ने लिखा है, "जिनके लिए भांग के नियमित सेवन में और कहानी लिखने में कोई फर्क नहीं है, वे लिख ही रहे हैं, लेकिन हर कहानी जिसके लिए एक आविष्कार है-उससे हमें ऐसी गैर साहित्यिक अपेक्षा क्यों करनी चाहिए? और नहीं लिखकर भी क्या वह शख्स चुप है? निष्क्रिय है? चुक या बुझ गया है?" यह भक्तिभाव अपनी जगह. लेकिन ज्ञानरंजन ने नवभारत टाइम्स में संस्मरणात्मक लेख लिखकर कसम तोड़ ही दी है. अपने बचपन के बारे में लिखते हुए उन्होंने जरा भी बचपने से काम नहीं लिया है. बंगलों और बंगालियों की स्मृति वाले अपने इलाहाबाद के बारे में आग्रहपूर्वक कहा है कि, " इसमें पेरिस जैसी अकड़ और गरीबी थी. उत्तर भारत में वह एक सबसे आधुनिक दरवाजा था... साहित्य की जितनी बड़ी आधुनिक कशमकश और हलचल इलाहाबाद में पैदा हुई, वैसी पहले या बाद में कभी नहीं रही. यह दूसरी बात है कि इलाहाबाद अपनी कब्र में सो गया, लेकिन कब्र में सोता हुआ इलाहाबाद दिल्ली, भोपाल, लखनऊ, पटना की खिलंदरी से आज भी ज्यादा सुंदर है."

देखा आपने अद्भुत साम्य! भारती और ज्ञानरंजन दोनों इलाहाबाद में बीते अपने बचपन को कितना याद करते हैं! (संदर्भ : कथानक अंक 11 और रविवार्ता 28.8.88)

बोल मेरी मछली, कित्ता पानी

जनसत्ता ने खबर दी है, हिंदी कहानी के सौ वर्ष पूरे हो गये हैं. इस शुभ अवसर पर उसने हिंदी कहानी की खबर भी ली है. भारतीय रेल के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में एक शताब्दि एक्सप्रेस चलायी गयी, जो कि दिल्ली से मंत्री जी के गृहनगर तक जाती है. जनसत्ता की कहानी शताब्दि एक्सप्रेस दिल्ली से शुरू होकर दिल्ली में ही रुक गयी है. अमरेंद्र मिश्र ने दिल्ली के प्रयाग शुक्ल, उदयप्रकाश, रमेश उपाध्याय, रमेश बक्षी वगैरह से सरसरी तौर पर जो बातचीत की होगी उसके टुकड़े पैराग्राफों के रूप में गाड़ी के डिब्बों से जुड़े हैं. रामदरश मिश्र, बक्षी और गंगाप्रसाद विमल को छोड़ दिया जाये तो मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि सौ बरस की हिंदी कहानी में परंपरा प्रेमचंद की, जिससे जुड़े मुक्तिबोध, यशपाल, रेणु, ज्ञानरंजन, उदयप्रकाश और उपर्युक्त महानुभावों को समर्थन देने वाले दिल्लीवासी सभी मित्र. हमें इस तरह के निष्कर्षों पर टिप्पणी करने का भला क्या अधिकार है लेकिन कोई हमें समझाये कि प्रेमचंद की कौन-सी परंपरा है जिसे मुक्तिबोध, यशपाल और रेणु में खोजा जा सकता है. ज्ञानरंजन और उदयप्रकाश जैसी कहानियां लिखते हैं (घंटा, बहिर्गमन, राम सजीवन की प्रेमकथा, तिरिछ) वैसी कहानियां प्रेमचंद के 'हंस' में तो शायद ही स्थान पातीं, राजेंद्र यादव का 'हंस' उनके लिए अधिक अनुकूल है लेकिन किसी माई के लाल ने राजेंद्र यादव का नाम नहीं लिया. अब चूंकि प्रयाग शुक्ल ने हिम्मत जुटाकर कृष्णा सोबती, विजय चौहान, प्रबोध कुमार, विद्यासागर नौटियाल, जितेंद्र और मधुसूदन आनंद जैसे कुछ नाम ले लिये हैं इसलिए उन्हें बधाई देने को जी चाहता है हालांकि इनमें से अधिकतर दिल्ली के ही हैं.

तीन नयी कहानियां

संजय की अद्भुत कथारचना 'भगदत्त का हाथी' पढ़कर आनंद की जो अनुभूति हुई थी उसकी पुनरावृत्ति संजय चौहान की 'एक सिरफिरे की दो कहानियां', (कहानियां : जुलाई 88) को पढ़कर हुई. संजय चौहान की भाषा में जो ताजगी है वह दिनोंदिन लिखी जा रही भरती की कहानियों में दुलर्भ होती जा रही है. उन्होंने इस रचना में शिल्पगत प्रयोग के नाम पर कुछ लटके-झटके ज्यादा ही दिखाये हैं परंतु प्रस्तुतीकरण निर्दोष और युक्तिपूर्ण होने से यह बांकपन अच्छा लगता है. इन दोनों कहानियों से सूरत और सीरत में एकदम अलग एक उल्लेखनीय कहानी है 'त्यौहार' (हंस-संयुक्तांक) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1 फरवरी, सन् 1930
प्रमुख कृतियां : 'पुल पार का आदमी', 'आता हुआ कल' (कहानी संग्रह)
संपर्क : गेल, गेस्ट हाउस, बी/184, निराला नगर, लखनऊ

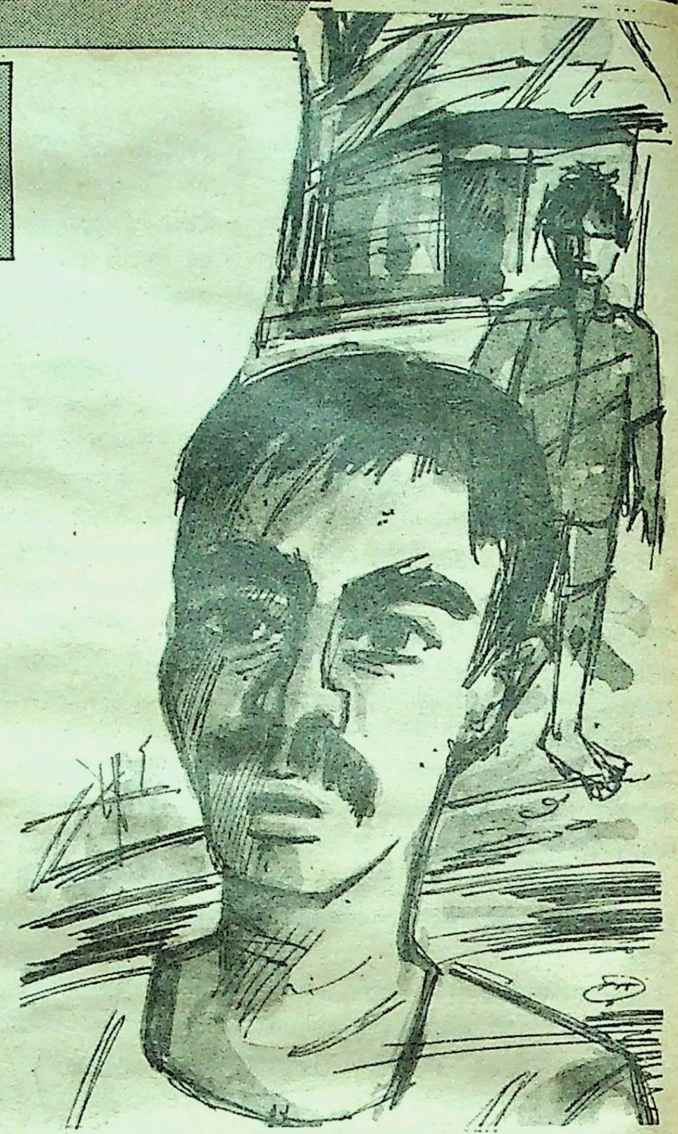

□ हरिहर द्विवेदी

निर्णय

कोई आठ-दस वर्ष के और आज के बचई में इतना अंतर आ गया था कि देखकर पहचान ही नहीं पाया और उसके याद दिलाने पर, "पालागी, बाबा! बचई." मैं अवाक् रह गया था.

बचई जगदीशपुर गांव का सबसे मेहनती, ईमानदार और हंसमुख खेतिहर मजदूर था. जिन लोगों को मजदूरों से काम नहीं कराना पड़ता और जो अपनी खेतीबारी का काम खुद कर लेते हैं, वे भी चाहते, बचई कोई न कोई काम उनके यहां जरूर करे. किंतु अकेला बचई—एक अदद बीवी, दमे की मरीज, एक लड़का जिआवन उम्र पांच वर्ष और एक साल भर की लड़की रमरतिया, यही आठ-दस वर्ष पहले उसका परिवार था. पूछने पर बचई ने कहा, "बस! यही चार परानी हुजूर."

बात-बात पर बाबा, हुजूर, मालिक जैसे शब्दों की अदायगी उसकी मेहनत, ईमानदारी और शख्सियत को कई गुना और बढ़ा देते. कहते हैं कभी किसी से बचई का कोई बिगाड़ तो दूर, कहा-सुनी भी नहीं हुई. जो चार पैसे कम अथवा मरा हुआ अनाज मजदूरी में दे देता उसका भी वह अपनी जुबान से भला ही मनाता.

मैंने पूछा, "बचई काका! इस तरह आपकी कमर झुक गई. चेहरे का रोब जाता रहा, आखिर बात क्या है, कोई रोग तो...?" अभी वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि उसने कहा, "बाबा! हम मजूरों के लिए सबसे बड़ा रोग ज़िनगी खुद है. हमारी चाहत, हमारा विश्वास, हमारी हंसी, हमारा मुस्कराना. सब का सब कोई न कोई रोग ही है. आपसे क्या छिपा है, भगवान ने चार पैसे दिए थे, सोचा थोड़ी जमीन खरीद लूं. कोई बुरा सोचा क्या बाबू?"

"नहीं तो!"

"पहले तो हरिजन को कोई जमीन बेचने को तैयार ही नहीं हुआ. जहां-तहां यह भी सुना कि यह जमीन ले लेगा तो गांव को ऐसा मेहनती मजूर कहां से मिलेगा! खैर! भला हो करीम भाई का कि उन्होंने तीन हजार में दस बिस्वा जमीन दे दी. जमीन उसने दी, पैसा मेरा लग रहा था पर जाने क्या था कि कइयों की आंखें बदगुमा हो गईं. आपसे क्या छिपा है, केवल घिरहुआ ने कुछ पैसे दिए किसी तरह 'रजेस्टली' हो गयी." घिरहुआ का नाम सुनते ही उसका पूरा हुलिया-भरा-भरा चेहरा, चौड़ा सीना, उसके दोष-पाप सभी मेरी आंखों में नाचने लगे. अजीब जीवट का आदमी घिरहुआ, कहे-सुने का कोई असर नहीं. मुझे अब भी याद है कि राप्ती-गौरा के बीच के कछार के अपने गांवों की जिंदगी बाढ़ आयी तो चांदनी रात में नाव पर मजा लिया, फसल गयी तो चार दिन गम भी मना लिए. पर साल माथ पर मई-जून में अगर खेतों से दूब कोड़कर न निकाली जाए तो बरसात के साथ सभी खेतों में जंगल उग जाता है. इसलिए जो खुद कुदाल चला सकता है तो खुद, नहीं तो मजदूर रखकर गोड़ाई जरूर करवाता है. मुझे याद है बचपन मे घिरहुआ, बचई, बलेसर आदि मेरे खेतों में दूब की गोड़ाई के लिये रखे जाते. घिराहू कतार में सबसे आगे रहता. गौर से देखने पर पता चला कि वह दूबों को ऊपर से ही काटकर आगे बढ़ जाता है, उनकी जड़ें नहीं खोदता. एक बार टोकने पर बोला, "हुजुर! यह अन्याय मुझसे न कराइए. आप जानते हैं कि हम आपके ताबेदार हैं. यही हमारी रोजी-रोटी है. यदि दूब महारानी का सर्वनाश कर दूं तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सत्यानाश कर देंगी. कौन देगा नौकरी? सच मानिए, हमारा वंश भूखों मर जायेगा."

मुझे उसकी इस बेबाक टिप्पणी पर गुस्सा आने के बदले मन ही मन हंसी आ गयी. उन दिनों इस इलाके में सोशलिस्ट पार्टी का बड़ा जोर था. मेरे जैसे पढ़े-लिखे नवयुवक 'धन और धरती बंट के रहेगी' जैसे नारों से बहुत प्रभावित थे. सोचा घिराहू कायदन तो गलती कर रहा है पर आखिर ईमानदारी इन्हें दे क्या रही है! लगा, शायद इनकी गरीबी का कारण इनकी ईमानदारी ही है. इसका कतई मतलब यह नहीं कि घिराहू की इस बेईमानी को मैं शह देना चाहता था. कुछ बोलता, इसके पहले ही वह जोर-जोर से कुदाल चलाने लगा और दूब की जड़ें खोदने लगा. ऐसा करते समय वह कहता, "दूब महारानी, मेरे बाल बच्चों पर किरपा रखना, मैं नहीं, मालिक तुम्हारा वंश उजड़ाने पर लगे हुए हैं. मैं ठहरा हुकुमी, कोई रकमी थोड़े ही हूं, 'जय दूब महरानी की" और दूब की पीली अंइठी जड़ें बाहर निकल पड़तीं.

इतना सब जल्दी-जल्दी रील की तरह दिमाग में घूम गया और बचई अपनी सुनाने को आतुर मेरा मुंह जोहता रहा कि पूछा, "घिराहू कैसे हैं!"

"उसके पांचों लड़के कोइलरी में चले गये. कुछ न कुछ हर मास जरूर भेजते हैं. दोनों लड़कियों का हाथ भी पीला कर दिया और हुजूर! अब तो एक बखरी भी बनवा लिया है. अब छप्पर के घर में नहीं रहता साहब! छप्पर के घर में रहता था तो मजूरी के लिए जो भी अढ़ाने आता तो दो लट्ठ छप्पर पर जमा देता और आप तो सब जानते हैं, घासफूस की कालिख में नहाया घिराहू आंखें बचाकर बाहर आकर कहता, "एक ही जान है, मेहरी को चेचक मइया ले गयी. किसके-किसके यहां चाकरी करने जाऊं? और फिर हौले से कहता लाठी नहीं सरकार गंडासा लेकर आइये और अलगा दीजिए मूंड, बांह, पांव. सभी अलग-अलग एक-एक सबके यहां चल देंगे."... और लोग बड़बड़ाते हुए चले जाते.

"अच्छा! समझा, इसलिए उसने जमीन लेने के लिए पैसे दिए."

"जी हुजूर! किसी की नेकी-बदी भला कभी भूली जाती है! साहब, थोड़ी खेती लायक जमीन हो जाने पर सोचा चकबंदी में ग्राम समाज की जो जमीन हरिजनों को मकान बनाने के लिए छोड़ी गयी है उसमें मैं भी बच्चों के सिर छुपाने के लिए एक बखरी बना लूं. आपसे क्या छिपा है सास-ससुर, बेटी-दामाद और जहां-तहां के हितर-मितर से कुछ ले देकर पिछले साल तीन कमरों की खपरैलों की एक बखरी भी छवा लिया. सोचा, बाबू लोगन की किरपा हुई तो पंचन के बीच हमारे बच्चे भी मनई की तरह रह लेंगे. लेकिन बाबू! आप तो जानते हैं किसका बिगाड़ा है हमने. लइका परानी लेकर सबकी सेवा में जुटा रहता हूं. हां, पहले की तरह जरा फुरसत कम है. अपनी भी जमीन है, पर किसी को निराश नहीं किया. ऊपर से तो कुछ नहीं कहा, मगर लगता है कुछ लोग मन ही मन कुढ़ने लगे. अब नाम किसका लूं साहब! किसी ने माचिस खुरच दी. बखरी

पोंछने के लिए जब आंसू तक न बचे... तब? कितना असहाय बेचारा और रीता हो जाता है आदमी...?

धू-धू कर स्वाहा हो गयी. चौधुरी ने आग बुझाने के लिए अपने कुएं से पानी भी नहीं लेने दिया. उधर गौर्रा का बंधा टूटा कि खेत बालू हो गया. तभी से बाबा बचई मन ही मन टूट गया. कमरा क्या पूरा जिनगी ही झुककर कमान हो गयी है."

वह हांफने की स्थिति तक आ गया था. थोड़ी देर तक उसके चुप रहने के बाद मैंने पूछा, "और बच्चे?"

"जिआवन नौवीं में पढ़ता था. यह सब देख-सुन तीन महीने हुए जाने कहां चला गया, न चिट्ठी न पतरी. उसकी मां के भीतर अइसा लुक्क समाया कि बिस्तर पर पड़ी तो फिर उठी ही नहीं. रमरतिया अब दस बरस की हो गयी है. जूठ-पानी दे देती है.वह भी कब तक रहेगी, परायी संपत्ति."

इतना कहते-कहते उसकी आंखों से जहर बुझे आंसू रिसने लगे. बीच-बीच में हाथ उठाकर पोंछता और कहता, "साहब आंसू हों तो पोछना ही पड़ता है पर मेरे जिम्मे तो अब वे भी नहीं बचे, महज हाथ उठाकर फर्ज अदायगी कर लेता हूं, नहीं तो लोग मगरूर कहेंगे न बाबू!"

इसके साथ ही मुझे लगा अपनी सारी व्यथा, सारी उम्मीदें उड़ेलते हुए वह जोर-जोर से बिलखता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ना चाह रहा है कि उठाकर बाहों में भर लिया. पहली बार एक पराए कंधे का सहारा पाकर उसकी सारी अंतर्वेदना भभक उठी. न जाने कहां से,कब से पथरा गयी उसकी पुतलियों सें आंसू छलछला आये. मेरे कंधों पर वह इस तरह अहक रहा था जिस तरह छोटे बच्चे बाहर मार खाकर मां के आंचल में मुंह छिपाकर बिलख उठते हैं.

इतने में देखा कि पीछे से घिराहू आकर सामने खड़ा हो गया है.

"खैर! करना तो यहीं और तुम्हीं लोगों को पड़ेगा. ऐसा नहीं कि आज शहर में जाकर भी कोई चैन की बंसी बजा पाएगा."

"ठीक महाराज! मेरे एक बेटे ढेलारू को कोइलरी में खाली पांच रुपया खातिर जान से मार दिया ठेकेदार के गुंडों ने." घिराहू ने भी मेरी बातों का समर्थन करते हुए कहा किंतु आगे कुछ सुझा नहीं सका.

"ठीक है देखा जाएगा," कहकर गांव घर की बातें करते-करते गांव की तरफ हम तीनों आगे बढ़े. उनका रास्ता अलग होते देख मैंने कहा, "अब मैं शहर नहीं जाऊंगा. सोचता हूं अपने लोगों के बीच यहीं रह कर जिंदगी के शेष दिन काट दूं."

"मेरा चोकट भी आ रहा है. जरा देश-परदेश की खबर जानने लगा है, आप के साथ लगा दूंगा." घिराहू ने बीच में कहा.

मैंने कहा, "और बहुत से लड़के हैं. बहुत अच्छा काम कर रहे हैं: उनसे बात कीजिए तो हर बात का दूध का दूध पानी का पानी आपके सामने बिलगा के रख देंगे. बी.ए.एम.ए. तक पढ़े हैं पर देखोगे तो लगेगा, बिल्कुल गंवई घर का अनपढ़ किसान खैर! अब तो रहना ही है." यह सुनकर दोनों के होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गयी थी. वे आपस में कुछ गुपचुप बातें करते अपने अपने घरों की ओर चले गये.

मैंने गांव में रहने की बात महज फर्ज अदायगी के लिए नहीं कही थी किंतु अब लगता है कि निर्णय ने गांव घर के सारे हल्के-फुल्के प्रसंगों को गुरु-गंभीर गट्ठर की तरह बांधकर मेरी आंखों के सामने पहाड़-सा टिका दिया है जिसे हटाने के लिये लोगों के बीच जाना ही होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहसन

महाराज कृष्ण काव

नियम नहीं है

(साहब घंटी बजाते हैं)

साहब : परसराम?

(साहब फिर घंटी बजाते हैं)

साहब : (चिल्लाकर) परसराम? कहां चले गये? (बार बार घंटी बजाते हैं. दरवाजा खुलता है)

दरसराम : यस सर?

साहब : दरसराम, परस राम कहां है?

दरसराम : सर, अभी-अभी गया है.

साहब : कहां गया है?

दरसराम : सर, बाथरूम गया है.

साहब : अच्छा, अच्छा. आये तो भेज देना.

दरसराम : जी, बेहतर.

साहब : ज़रा सुपरेंडेंट साब को बुलाओ.

दरसराम : जी अच्छा.

(दरवाजा बंद होता है. फिर धीरे-धीरे खुलता है)

युवती : (मिठास से) क्या मैं अंदर आ सकती हूं?

साहब : हां, हां, हां, आइये, तशरीफ रखिए, कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?

युवती : सर, मेरा नाम कमलेश है. आपके विभाग में जिला स्तर पर काम करती हूं. मेरा केस पांच साल पहले यहां भेजा गया था.

साहब : पांच साल पहले?

कमलेश : जनाब, तबसे मैं पचास चक्कर काट चुकी हूं, मगर बेकार.

साहब : पचास चक्कर?

कमलेश : बिल्कुल, सर. मेरा केस सुलझने की बजाए उलझता हो जा रहा है.

(दरवाजा खुलता है. दरसराम अंदर आता है)

साहब : कहां गये थे?

दरसराम : सर, चाय पीने.

साहब : चाय? लेकिन मुझे तो बताया गया कि कैंटीन में आज चाय नहीं मिल रही.

दरसराम : यह ठीक है सर. पानी नहीं है.

साहब : तो सुपरेंडेंट साहब कहां गये हैं?

दरसराम : सर, अशोक होटल.

साहब : अशोक होटल? कहां? दिल्ली?

दरसराम : नहीं सर. दफ्तर के बाहर एक ढाबे का नाम है, सर.

साहब : अच्छा, ऐसा करो, चौहान को बुलाओ.

दरसराम : जनाब.

(जाता है)

साहब : अच्छा तो कमलेश जी, आपका केस है क्या?

कमलेश : सर, मैं पहाड़ी चशमा सुपरवाइजर हूं. मेरे वेतनमान का झगड़ा है. मुझे 400-15-600 दिया गया है जबकि मैं 450-25-650 मांग रही हूं.

(दरवाजा खुलता है. चौहान अंदर आता है)

चौहान : सर, आपने बुलाया?

साहब : हां, देखो चौहान, यह मिस कमलेश हैं. इनके वेतनमान का केस है.

चौहान : यस सर.

साहब : आप डील कर रहे हो?

चौहान : यस सर.

साहब : तो पांच साल से उसका फैसला क्यों नहीं हो रहा?

चौहान : सर, यह बहुत पेचीदा केस है.

साहब : क्या पेचीदा है इसमें?

चौहान : सर, यह दस बार फाइनांस को गया है. वह मानते ही नहीं.

साहब : क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौहान : सर, यह तो मुझे याद नहीं है. मैं फाइल लाता हूं.
साहब : जल्दी लाओ.
(दरवाजा बंद होता है)
कमलेश : सर, मैं आपको तकलीफ दे रही हूं.
साहब : नहीं, कोई बात नहीं. यह तो हमारा काम है. अब देखना, मैं इस दफ्तर में क्या काया पलट करता हूं.
कमलेश : सर, आप तो अभी आये हैं.
साहब : जी हां, दो महीने पहले. मैं इस सारे विभाग को कंप्यूटरायज करना चाहता हूं. फिर कोई केस पांच साल तक नहीं रुकेगा.
कमलेश : ओह, यू आर ग्रेट.
(दरवाजा खुलता है)
सुपरेंडेंट : सर, आई एम सॉरी. मैं जरा बाथरूम तक गया था.
साहब : आइये सुपरेंडेंट साहब. लेकिन दरसराम तो कह रहा था आप चाय पीने गये हैं.
सुपरेंडेंट : (हकलाकर) हां, हां, सर. उधर से ही मैं फिर चाय पीने भी चला गया था. मेरे सर में दर्द होता है सर. डाक्टर ने एडवाइज किया है कि दो-दो घंटे के बाद चाय पिया करूं. यह मेडिकल सर्टीफिकेट है, सर....
साहब : रहने दीजिए. सर्टीफिकेट देखकर क्या करूंगा? आप कह रहे हैं तो ठीक ही कह रहे होंगे. यह मिस कमलेश हैं.
कमलेश : नमस्कार.
सुपरेंडेंट : नमस्ते. आप यहां क्यों आयी हैं? चलिए, मैं आपका केस देखता हूं.
साहब : नहीं, नहीं, सुपरेंडेंट साहब. यह बहुत पुराना केस है. पांच साल पुराना केस. मैं सारी बात खुद सुनना चाहता हूं. चौहान फाइल लाने गया है. आप बैठिए.
(चौहान अंदर आता है)
चौहान : सर, यह फाइल है.
साहब : कहां?
चौहान : वह परसराम और दरसराम दोनों उठाकर ला रहे हैं, सर पांच साल में फाइल थोड़ी भारी हो जाती है.
(दरवाजा खुलता है. दरसराम अंदर आते हैं)
चौहान : हां भई ले आओ. धीरे-धीरे, शाबाश, आराम से. यहां टेबल पर रखो. ध्यान से रखना, चोट न आए.
कमलेश : यह मेरी फाइल है?
चौहान : जी हां, कमलेश जी. यह आपकी ही फाइल है. देखिए ना, आपके केस पर कितना विचार हुआ है?
कमलेश : लेकिन फैसला नहीं हुआ.
चौहान : फैसला? हं हं हं, फैसला अगर आसान होता तो इतनी देर क्यों लगती? लेकिन विचार तो बराबर हो रहा है.
साहब : चौहान, अब बताओ, इस केस में पेचीदगी क्या है?
चौहान : सर, यह केस अपनी किस्म का पहला केस है. इसके बारे में कोई नियम नहीं है.
साहब : क्या कहा? नियम नहीं है?
सुपरेंडेंट : जी, ठीक कह रहा है, सर. इसके बारे में कोई नियम नहीं है.
साहब : क्या कह रहे हैं, सुपरेंडेंट साहब? क्या कोई नियम नहीं है?
सुपरेंडेंट : जी नहीं, सर.
साहब : जी.आर.,सी.आर.,टी.आर.,पी. आर.,एफ.आर., किसी में नहीं?

> अगर सरकारी काम में भी दिमाग का इस्तेमाल होने लगे तो...? इस बार पढ़िए सरकारी काम-काज में कर्मचारियों का हाल-बेहाल...

सुपरेंडेंट : जनाब. जनाब. ए.आर.,बी. आर.,एक्स.आर. और वाई.आर. में भी नहीं, सर.
साहब : यह तो बहुत अजीब केस है. ऐसा क्यों है?
चौहान : सर, इस किस्म का यह पहला पद है. इससे पहले पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का कोई पद नहीं था.
साहब : ओ. ऐसा कोई पद नहीं था. इसलिए कोई नियम नहीं है. हूं. लेकिन फिर ऐसे केस में क्या करना चाहिए?
सुपरेंडेंट : सर, ऐसे केस में जहां नियम नहीं हो वहां हम प्रीसीडेंट ढूंढते हैं.
साहब : हां, हां, प्रीसीडेंट. तो इस केस में प्रीसीडेंट क्यों नहीं ढूंढा?
सुपरेंडेंट : ढूंढा, सर, ढूंढा. दस साल पहले एक पहाड़ी कुआं सुपरवाइजर का केस हुआ था.
साहब : अच्छा, अच्छा. फिर?
चौहान : फिर सर केस फाइनांस को गया.
साहब : तो?
सुपरेंडेंट : उन्होंने 6 महीने के बाद वापिस कर दिया.
कमलेश : मगर क्यों?
चौहान : बहिनजी, उन्होंने बहुत सारे सवाल पूछे. कुआं सुपरवाइजर क्या काम करता है और चश्मा सुपरवाइजर क्या? कहीं ऐसा तो नहीं कि कुआं सुपरवाइजर गहराई में जाकर सुपरवाइज करता है और चश्मा सुपरवाइजर का निरीक्षण उथला और सतही रह जाता है? इस पद को सृजित *क्यों किया गया? क्या* यह सही नहीं कि पहाड़ी चश्में सूखते जा रहे हैं? यदि उनकी संख्या कम होती जा रही है तो इसकी जिम्मेदारी किस पर है? सुपरवाइजर के नियुक्त होने से तो कम नहीं हो रहे? और अगर उनकी संख्या घट रही है तो सुपरवाइजर के पद की आवश्यकता क्या है.
कमलेश : हे भगवान! वेतनमान देना तो अलग रहा, यह तो मेरे पद के पीछे ही पड़ गये.
साहब : घबराइए नहीं. पद सृजित करना जितना आसान होता है उसे खत्म करना उतना ही कठिन.
सुपरेंडेंट : सर, खत्म हम कहां होने देंगे? हमने तो अलग से दस ऐसे पद और मांगे हैं.
साहब : आपने फाइनांस के सवालों का जवाब दे दिया?
चौहान : यस, सर. चार साल पहले.
कमलेश : तो फिर क्यों नहीं हुआ?
सुपरेंडेंट : काफी हुज्जत के बाद वह यह तो मान गए कि पद को रहने दिया जाए. फिर उन्होंने पूछा कि पंजाब पैटर्न क्या है? वहां ऐसे पद का वेतनमान क्या है?
साहब : तो आपको पता करके बताना चाहिए था.
चौहान : सर, यही तो किया. हमने पंजाब सरकार को चिट्ठियां लिखीं, तारें भेजीं, फोन किए, वहां आदमी भेजे.
कमलेश : उन्होंने क्या कहा?
सुपरेंडेंट : उन्होंने जवाब ही नहीं दिया. फिर एक बार मैं गया. पता चला वह सारे पत्र अभी सचिवालय में एक शाखा से दूसरी शाखा को आ जा रहे थे.
साहब : क्यों?
सुपरेंडेंट : सर, वहां किसी को पता ही नहीं चल रहा था कि पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का पत्र किस शाखा में डील होना चाहिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब : फिर?

सुपरेंडेंट : सर, बड़ी मुश्किल से मैंने उनको समझाया कि यह पानी के चश्मे की बात हो रही है और आकाशवाणी व जन स्वास्थ्य ब्रांच में केस पहुंचाया. मगर वहां जब कागज डील हुआ तो एक और गुल खिला.

कमलेश : अब क्या हुआ?

सुपरेंडेंट : मिस, पता चला कि पूरे पंजाब में अब कोई पहाड़ी चश्मा ही नहीं रहा. इसलिए पहाड़ी चश्मा सुपरवाइजर का वहां बहुत ढूंढने पर भी कोई पद नहीं मिला.

साहब : तो आप उनसे यह लिखवा लाये?

सुपरेंडेंट : जनाब, वह लिखवा लाया और केस फिर फाइनांस को भेजा.

कमलेश : तब तो उन्होंने कर दिया होगा.

चौहान : कहां मिस? उन्होंने कहा पंजाब में न सही तो क्या, आस-पास के अन्य प्रदेशों से पूछो.

कमलेश : तो.

चौहान : हमने पूछा. कहीं ऐसा पद न था. एक साल के बाद केस फिर फाइनांस को गया.

साहब : अब के क्या बोले वह?

चौहान : सर, फिर उन्होंने कहा कि देश के किसी भी राज्य से पता करो. हमने यह भी कर देखा. पूरे भारतवर्ष में यह अपने किस्म का एक ही पद है.

साहब : अच्छा? हूं. तो अब आप क्या कर रहे हो?

सुपरेंडेंट : सर, हमने फिर फाइल फाइनांस को भेजी. अब उन्होंने पूछा है कि विश्व में कहीं से भी ऐसे पद का वेतनमान ढूंढकर बताओ.

कमलेश : हे भगवान.

सुपरेंडेंट : तो आपने क्या किया है?

चौहान : जनाब पूरा एक्शन लिया है. दुनिया में जिस भी देश में भारत का दूतावास है उन सबको पत्र जा चुके हैं. 165 में से 53 के तो जवाब भी आ गये हैं.

साहब : क्या कहते हैं वे तिरपन जवाब?

सुपरेंडेंट : वही कहानी, सर. मुझे तो सर इस केस से डर लगने लगा है. अगर 3-4 साल में यह पता चला कि दुनिया के किसी भी मुल्क में ऐसा पद नहीं है तो कहीं फाइनांस यह न पूछ बैठे कि ग्रहों और उपग्रहों की जानकारी लाओ.

साहब : तो क्या हुआ? तब तक तो चांद को पैसीजर सर्विस शुरू हो चुकेगी. अगर जवाब नहीं आया तो मैं एक टूर लगा आऊंगा.

चौहान : वैसे जनाब, मौका तो इस वक्त भी बुरा नहीं है. जिस-जिस देश के दूतावास से उत्तर नहीं आया है, उनके उत्तर वहां जाकर भी तो लाये जा सकते हैं. आखिर मिस कमलेश का केस है. इतनी देर हो गई है. अब तो कुछ अर्जेंट एक्शन लेने से ही काम चलेगा.

साहब : तुम ठीक कहते हो. मैं आज ही अपना टूर प्रोग्राम भिजवाता हूं.

कमलेश : सर, एक गुजारिश है.

साहब : मिस कमलेश, आप देख रहीं हैं कितनी इन लोगों ने आपके केस पर मेहनत की है, कितनी मोटी फाइल है आपकी, कितनी बार इस पर विचार हुआ है. आपको तो संतोष होना चाहिए कि इस कार्यालय ने पूरी कोशिश की है.

कमलेश : सर, मैं आप सबकी बहुत मशकूर हूं. लेकिन सर, एक छोटी-सी बात है. मेरे केस का सर फैसला तो नहीं हुआ ना?

चौहान : फैसला? वह तो नियम के अनुसार ही होगा ना?

सुपरेंडेंट : नियम नहीं होगा तो प्रीसीडेंट के आधार पर.

साहब : और उस प्रीसीडेंट को हम सारे विश्व में तलाश कर ही रहे हैं.

कमलेश : सर, एक मिनट लूंगी. मेरा एक तुच्छ-सा सुझाव है. अगर गलत कह रही हूं तो माफ कर दीजिएगा.

साहब : हां, हां, कहो, कहो.

कमलेश : सर, क्या यह नहीं हो सकता कि जब नियम नहीं है, प्रीसीडेंट नहीं है तो आप लोग स्वयं ही अपने मस्तिष्क का प्रयोग करके कोई फैसला ले लें.

चौहान : क्या? स्वयं फैसला ले लें? वह तो गैरकानूनी होगा.

सुपरेंडेंट : अपने मस्तिष्क का प्रयोग करें? पे-फिक्शन के केस में? हमने मरना है?

साहब : मेरा खयाल है कि आप अपना केस होने के कारण कुछ भावुक हो रही हैं. सरकारी काम अपने मस्तिष्क का प्रयोग करके नहीं होता. अगर हम यह करने लगे, फिर तो हर एक अफसर अपनी ही ढफली बजाएगा. अच्छा मिस कमलेश, आप चलें. आप इत्मीनान रखें, आपका केस बहुत जल्दी हो जाएगा (घंटी बजाता है)

दरसराम : यस सर?

साहब : देखो, जरा पी.ए. साहब को बुलाओ. मैंने अपना टूर प्रोग्राम डिक्टेट करवाना है.

कमलेश : सर, मैं फिर अपने केस के बारे में कब पता करूं?

साहब : अरे आप क्यों तकलीफ करती हैं? हम आपको बहुत जल्द खबर कर देंगे, बहुत जल्द, बहुत जल्द.... □

सर, क्या आप हरामी हैं?

प्रस्तुति : हंस

घोटालों का पर्दाफाश करने वाले एक भारतीय समाचार-साप्ताहिक ने एक समाचार प्रकाशित किया कि उस काल के एक प्रमुख दैनिक के मुख्य संपादक ने, अपनी जवानी के दिनों में, जब वे पेरिस में पढ़ते थे, उस रकम में से थोड़ी अपने पास रख ली थी, जो एक नामी राष्ट्रीय नेता ने विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों की सहायतार्थ दी थी. नेता को चूंकि भारत वापस लौटने में विलंब होने वाला था, इसलिए यह रकम इस विद्यार्थी को, जो शीघ्र ही भारत छुट्टियों में लौटने वाला था, दे दी थी और कहा कि वह एक क्रांतिकारी नेता को दिये हुए पते पर दे दे.

भारत आने पर जब राष्ट्रीय नेता को मालूम पड़ा कि क्रांतिकारी नेता को पूरी रकम नहीं मिली तो वे उस छात्र पर, जो भारत के एक नामी व्यक्ति का बेटा था, बहुत नाराज हुए. लेकिन बाद में बात आयी गयी हो गयी.

जब समाचार-साप्ताहिक ने वर्षों पूर्व घटी इस घटना को संबंधित व्यक्ति के नाम के साथ प्रकाशित किया, तो उन्होंने साप्ताहिक पर मानहानि का मुकद्दमा ठोंक दिया, और अपनी याचिका में कहा कि उन्होंने रकम में कोई हेराफेरी नहीं की थी.

मुकद्दमा शुरू हुआ और साप्ताहिक के वकील के पहला प्रश्न पूछने के साथ ही समाप्त भी हो गया. उनका प्रश्न था, "सर, क्या आप हरामी हैं?" संपादक महोदय ने फौरन अपने वकील से मुकद्दमा वापस लेने को कहा. हकीकत यह थी कि वे एक ऐसी फ्रैंच महिला की संतान थे, जिसके साथ उनके पिता ने बाकायदा विवाह नहीं किया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अच्छा साहित्य पढ़ते हैं और स्वय लेखक बनना चाहते हैं... पर कहीं कुछ ऐसा अवरोध आ जाता है कि आप लिख नहीं पाते. इस स्तंभ के अंतर्गत ऐसे अनुभव प्रकाशित किये जायेंगे जो 'नयी पौद' की दिक्कतों को सामने रखें. आप क्या और क्यों लिखना चाहते हैं... स्पष्ट करते हुए अपनी कठिनाइयां चित्र सहित 300 शब्दों में लिख भेजिए. लिफाफे पर यह कूपन चिपकाना न भूलें.

'नयी पौद' स्तंभ
सारिका
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

यथार्थ जरूरी है

प्रकाश शेंडे, उज्जैन

आज दृष्टि उठाकर देखें तो पायेंगे कि चारों ओर अराजकता और शोषण का साम्राज्य है. पग दर पग भ्रष्टाचार का बोलबाला है. आतंक मानवता को सुईयां चुभोकर लहूलुहान कर रहा है. और फिर जहां संवेदना का प्रश्न आता है; लेखक खून को स्याही बनाकर कागज पर निचोड़ देना चाहता है. आज का युवा किस-किस शोषण चक्र से नहीं गुजरता! लेखक हुआ तो आज सौंदर्य, प्रेम और विरह जैसे विषयों को कोसों दूर छोड़ आता है. त्याग और आदर्श जैसे शब्द सिर्फ किताबी लगने लगते हैं. एक चित्रकार होने के नाते ये विषय महज अय्याशी लगने लगते हैं मुझे. उसी को कागज पर लिखना चाहता हूं. उसी को कैनवस पर बनाना चाहता हूं जो कुछ कदम-दर-कदम भोगते आये हैं... एक दम कटु सत्य के रूप में... यथार्थ को नग्न स्वरूप में... ताकि अर्थ, सत्ता और विलासिता के मोह में हमने मानवता की जो झूठी परतें ओढ़ रखी हैं, उसमें हमारा नंगा रूप दिख सके.

आज मुझे शैली से ज्यादा 'यथार्थ' जरूरी लगता है. मैं कुछ भी लिखूं, चाहे वह कविता हो, कहानी हो या समाचार-पत्र में छपने वाला संपादक के नाम वाला ही क्यों न हो...

अवरोध आता है उस 'अवस्था' का जो हर किसी के हाथों में खेल रही है. आवाज उठाने के लिए सैकड़ों मंच हैं, पर पूछता हैं या नहीं? पता नहीं. लेखक को अपना नाम 'लेबल' बनाने में कितना लंबा रास्ता और क्या-क्या पापड़ बेलने लगते हैं. उस पर सही चीज की उपेक्षा हो जाए तो कुंठित होने का भय अलग सा लगता है. 'मंच' अपना अस्तित्व क्रूर व्यवस्था से, बचाने के लिए लेखक को उसके शब्दों में नहीं बोलने देता. जरूरी है कि उसकी भाषा छंद-अलंकार के षटरस से युक्त हो ताकि मंच की भी कुछ प्रतिष्ठा हो सके.

जीवन का ध्येय

निशीथ बोस, इलाहाबाद

हिंदी भाषा व साहित्य के प्रति मेरा रुझान, बंगाली परिवेश में पालन-पोषण होने पर भी, बाल्यकाल से ही विकसित हुआ, जिसका श्रेय मेरे पिता को है. एक लेखक बनने की तीव्र अभिलाषा को प्रोत्साहन मुझे किशोरावस्था में 'नंदन' पत्रिका के 'बड़े भैया' द्वारा प्राप्त हुआ. मेरी पहली रचना प्रकाशित हुई. परंतु जीवन के महत्वपूर्ण उद्देश्य अर्थात एक अदद नौकरी के लिये आवश्यक शैक्षणिक योग्यताओं की पूर्ति के लिये मुझे लेखन छोड़ पठन-पाठन से समझौता करना पड़ा, साथ ही छूट गयी कुछ 'अलग से कर दिखाने की तमन्ना.' सोचा था नौकरी मिलने के पश्चात खूब लिखूंगा और 'लेखक' बन कर रहूंगा, परंतु अच्छी रचनाओं और साहित्य के अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ न कर सका. अपने समस्तरीय रचनाओं के प्रकाशित होने पर उत्साहित तो होता हूं, परंतु यह सोच कर निराश हो जाता हूं कि क्या कोई पत्रिका मेरी रचना का आदर भी करेगी?

प्रश्नों में उलझी मैं

नीला प्रसाद, रांची

कभी अचानक मेरी उंगली पकड़कर चल रही, एक नटखट- बच्ची, जो अपनी कौतूहलपूर्ण आंखों से दुनिया को निहार रही होती है, और-और जिंदगियों की भीड़ में गुम हो जाती है... तब, उस गुमशुदा बच्ची को ढूंढ निकालने को, मुझे बहुत सारा श्रम, परेशानियां और तनाव झेलना पड़ता है.फिर एक दिन, वह मुझे मिलती है और किस्से सुनाती है. दूसरे नजरिए से ये किस्से आसानी से मानव मनों,संबंधों की टकराहटें, परेशानियों, अनुभूतियों की बारीकियों और तनावों में परिवर्तित हो जाते हैं. यह बच्ची मेरे मन-मस्तिष्क का एक हिस्सा है. और कभी-कभी, उम्र की तीन-चौथाई दहलीजें पार कर चुकी, एक निर्विकार प्रौढ़ा मुझे दुनिया को दार्शनिक लहजे में देखने की तहजीब सिखाती है. यह प्रौढ़ा मेरे मन-मस्तिष्क का दूसरा हिस्सा है. मेरी भौतिक उम्र से जुड़ा मेरे मन का तीसरा हिस्सा, बाकी दो हिस्सों से तारतम्य बिठाने की कोशिश में, पेंडुलम-सा गतिमान रहता है... पर कभी ये तीनों मिल नहीं पाते.

नाकामयाबी के ये तनाव भरे क्षण मुझसे अभिव्यक्ति मांगते हैं.

अभिव्यक्ति की कोशिश में, मैं किसी समस्या पर सोचना शुरू करती हूं कि तभी मुझे घर-परिवार, ऑफिस और समाज की दूसरी समस्याएं आ-आकर घेरने लगती हैं. तब, इसी समस्या पर क्यों, किसी दूसरी पर लिखना क्यों जरूरी नहीं? जैसे प्रश्नों के जाल में कहानी उलझ कर रह जाती है.

कभी सारे प्रश्नों को जबरन ठेलकर मैं अपनी बात कहने को कुछ पात्र, घटनाएं और एक वक्तव्य तलाश लेती हूं. लिखना शुरू कर देती हूं कि पाती हूं कि...

— कहानी का वक्तव्य अधिक सुस्पष्ट हो सकने के लिए और आर्थिक विश्लेषण-चिंतन मांगता है.

— भाषा धोखा दे रही है.

— मूलभूत प्रश्न यह है कि लिखना जरूरी ही क्यों है? लेखन से होने वाले सामाजिक-मानसिक परिवर्तनों की बेहद धीमी प्रक्रिया को देखकर, एक जागरूक युवा को लिखने की बात सोच कर भी शर्म आनी चाहिए. और मानव-संबंधों की उलझनें? अहंकारों की टकराहट? लेखन इन्हें शिद्दत से महसूस करा सकता है पर क्या सुलझा सकता है?

प्रश्नों में उलझी मैं, खिलौने वाली रेल-सी अनुभूतियों की वृत्ताकार पटरी पर भटकती रह जाती हूं... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : सितंबर, 1938 (श्रीनगर)
प्रमुख कृतियां : 'ऐलान गली जिंदा है', 'अर्थांतर' (उपन्यास) व 'सलीबों के पीछे' (कहानी संग्रह).
संपर्क : 93, सूर्यनगर, भुवनेश्वर-751 003 (उड़ीसा)

□ चंद्रकांता

यहां वितस्ता बहती है

राजनाथ ने कुछ शौक पाल रखे थे. गुल काका से तो हमने सुना ही है कि "राजा साहब बड़े यारबाश थे." शंकरलाल भी अकसर कहा करते; "अपने राजभाई शौकीन तबीयत के आदमी रहे हैं," अब *'यारबाश'* या *'शौकीन तबीयत'* से आप कोई चालू-सा गूढ़-सा अर्थ निकालें तो यह आपकी मर्जी है. पर 'यारबाश' से गुल काका का मतलब जो था सो यह कि उनके कई चेहते दोस्त थे. जिनके साथ उठना-बैठना, खेलना-खाना उन्हें प्रिय था. दावतें खिलाने का जिक्र भी हम सुन चुके हैं. इसके अलावा उनके खास शौकों में था संगीत सुनने का शौक. यों रेडियो पर बजते फिल्मी गाने वे कम ही सुना करते थे. फालतू वक़्त भी कहां था उनके पास? फिर वे 'आये भी वो गये भी वो खत्म फसाना हो गया' गाने उन्हें छूते भी न थे. पर वह कुंदललाल सहगल की गूंजती आवाज, बेगम अखतर की सोज़ भरी गज़लें, ठुमरियां मल्का पुखराज की नगमा—अभी तो मैं जवान हूं...

जनाबे हफीज़ जालंधरी भी क्या लिख गये कि मल्का पुखराज ने एक एक लफ़्ज़ को ज़िंदा कर दिया. 'ये काली-काली बदलियां/उफक पे हों गयी अयां/वो इक हुजूमे मयकशां/है सूए मयकदा रखां/ये क्या गुमां है बदगुमां/समझ न मुझको नातवां/खयाले जुहद अभी कहां/अभी तो मैं जवान हूं...'

भाई नित्यानंद तो इस नगमे पर, नगमे वाली की आवाज़ पर और नगमे वाली के रूप-सौंदर्य पर कुछ इस कदर फ़िदा थे कि राजनाथ उनकी हालत देख तरस खा जाते.

यों सूफियाना कलाम सुनते राजनाथ भी किसी दूसरी दुनिया में पहुंच जाते. संतूर के सौ तारों पर गूंजते कलाम पूरे माहौल को संगीत से भर देते. "बेदर्द दादे चानि, सूर हो सपदान..." (ओ बेदर्द! तेरे दर्द के कारण राख हुए जा रहे हैं...) सूफी संतों ने प्रेम को ऊंचाइयों तक ले जाकर उस दर्द की इंतहा तक पहुंचा दिया था, वो दर्द जो दिलों को बेआवाज आरे की तरह चीरता लहूलुहान कर देता है. पर वह दर्द कमबख्त है ऐसा ज्यों अफीम का नशा हो, बूंद-बूंद पीने को मन ललचता रहे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलते हुए हालात में लोग देश के बारे में किस तरह सोचते हैं... समय, इंसान और परिवेश की आत्मीय छुअन से सराबोर चंद्रकांता के नये उपन्यास का एक अंश—

वह स्वरों की जादू भरी नगरी थी, जिसमें प्रवेश कर आदमी मैं-तू भूल जाता है. जहां तेरा-मेरा कुछ नहीं रहता. अहं ब्रह्मास्मि! आत्मा-परमात्मा का विलय हो जाता है. चर-अचर एक रूप. एक तान, एक लय हो जाता है. क्या मालूम कैसी स्थिति थी वह, जहां बोल, लहजा तो शुरुआत में याद रहते हैं और फिर केवल संगीत के सात सुरों का गुंफन नस-नस में गूंजता है, अनहद नाद सा!

बात शायद कुछ ऊंची हो गयी. पर राजनाथ दीवाने थे संगीत के, इसमें दो राय नहीं. शास्त्रीय संगीत उन्हें पसंद था, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, सिद्धेश्वरी, बेगम अख्तर को वे शौक से सुना करते. जब कभी दोस्तों के साथ पिकनिक का प्रोग्राम बनता, मुहम्मद वली को मय कारिंदों न्यौता दे आते, "उस्ताद! आज चिनारबाग में आपका कलाम सुनने की ख्वाहिश है. आपको जहमत देने आया हूं."

सच्चे उस्ताद को दाद देने वाले शार्गिद मिल जायें तो और क्या चाहिये? यों उस्ताद भी जानते थे कि 'सजे-धजे ढोगे में झीलों की बहार का सुख लूटने का मजा तो मिलेगा ही, साथ में शाही रोगनजोश और लजीज यखनी का स्वाद भी भरपूर मिलेगा. ऐसी पिकनिकें राजनाथ निशात-शालामार में नहीं मनाते थे, वहां चहल-पहल ज्यादा रहती थी और इर्द-गिर्द मजमा इकट्ठा करना उन्हें पसंद नहीं था. हां, हारवन, गांधरबल में सिंध के किनारे, मानसबल में, या बादाम आड़ू की बरजस्त बौरों की महक तले, हवा से सर-गोशियां करते चिनारों के साये में ऐसी महफिलें सजतीं. दरियां बिछतीं, तकिये सजते, चमचमाते हुक्के ताज़ा होते, गरम-गरम रोगनजोश और खस्ता बाकर खानियों और सीक कबाब के दौर चलते. गला खुलने के लिए गरम कहवा तो चाहिए ही तलख़! उस पर मिसरी कालीमिर्च भी हाज़िर रहती. ऐसे में वली जू को सूफियाना कलाम सुनाने का मूड़ बन जाता. ऊंची आवाज़ में से सुर उठाते, दूर पहाड़ों से टकराकर आवाज़ लौट आती, ज्यों गुंबद में आवाज गूंज उठे—हो! हा! पोश फलि बागस, पोश तय बेली. यंबरजल अज़ यियि, सैलिये...

राजनाथ रस ममर्ज्ञ न भी हों पर रस का आस्वादन करना वे हर आदमी का हक समझते थे. ज़िंदगी को बेहतर ढंग से जीने, भोगने में जो भी शौक साथ दे, उसे बाहें फैलाकर अंकोर लेते. हां, ऐसे शौक उन्होंने नहीं पाले, जिनसे दूसरों का ख़ामखाह परेशानी हो.

आत्मा तक उतरनेवाली ठुमरियां और दादरे सुनने के लिए वे घर में ग्रामोफोन भी लाये. गुल काका के शब्दों में "मेड इन इंग्लैंड-जर्मनी-जापान रेडियो भी राजा साहब के ही घर में आया शहर में सबसे पहले. ग्रामोफून में रिकार्ड के ऊपर सुई घूमना चालू करती तो किसिम-किसिम के गाने सुनने को मिलते. राजा साहब बच्चों को भी सुनवाते ग्रामोफून."

गुल काका तो बच्चों की भीड़ में ही निवास करता था. जाहिर है, वह बच्चा नहीं था, पर रहता उनके बीच इसलिए था कि राजा साहब अकसर सुई चालू कर आराम फरमाते और गुल काका का जिम्मा होता, रिकार्ड पूरा होने पर सुई वाला हैंडल उठाकर स्टैंड पर रख देना, यह ज़िम्मेदारी का काम गुल काका बड़ी शान और अकड़ से निभाता. और बच्चो को ग्रामोफोन से दस-पंद्रह कदम दूर बिठाकर एहतियात बरतता, कहीं चुन्नी-मुन्नी सुई में हाथ न लगायें. बच्चों का क्या, छू-छूकर देखेंगे आवाज कहां से आ रही है. लाऊड स्पीकर के बीच मुंह आंख घुसाकर गानेवाले को बिला वजह ढूंढ निकालने की कोशिश करेंगे और सुई से छेड़छाड़ कर आवाज को लंबा खिचायेंगे. अच्छा भला गाना—"ऐ कातबे तकदीर..." खिचकर तक.. तक.. दी.. SSS र... में खिचकर टूटता जायेगा तो नन्हें शैतान ताली पीट-पीटकर मज़ा लेंगे. अब एक-दो बार तो राजनाथ बच्चों का खिलंदड़ापन सह भी लेते. क्या करते, बड़ी उम्र में बच्चों का मुंह देखा था सो वे कुछ ज़्यादा ही लाड़ के हकदार बन गये थे. पर संगीत तो बच्चों का खेल नहीं है न? इसीलिए गुल काका बाज बनकर मंडराया करता इस काली चिड़िया पर.

संगीत से भी ज्यादा मज़ेदार शौक था राजनाथ का, इतवारोंवाला ताश-पार्टी का शौक. लगभग हर रविवार, उनके यहां ताश की चौकड़ी इकट्ठा होती. एंथोनी साहब कहते हैं, "राजभाई की डायवर्स हॉबीज हैं. रमी खेलना उन्हें न सुहाता था. वैसे लगातार खेलने की लत्त उन्हें बुरी लगती थी. पर चार दोस्तों के साथ दो-तीन घंटा छुट्टी के दिन, वे ट्रंप या ब्रिज खेला करते. रमी के बारे में कहते कि यह तो शोहदों का खेल है." पर ब्रिज में थोड़ी दिमागी कसरत का आनंद आता. ताराचंद वकील के हाथ में तीन इक्के और एकाध बादशाह आता तो वे लिटिल स्लैम से कम तक बिड छोड़ते नहीं. राजनाथ के पार्टनर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनते तो वे ताराचंद के उचकने-चहकने का अर्थ पंद्रह-सोलह पाइंट से ज़्यादा न गिनते. खासकर जब दूसरे लोग भी बिड दे रहे होते. ताराचंद झल्लाते, कुढ़ते, खीजते, पर राजनाथ शांति-पूर्ण मुद्रा बनाये गेम बिड पर सिलसिला *बंद* कर देते. बाद में ताराचंद उलहाना देते, "राजभाई, यों तो *बड़ी हिम्मत है* आप में, पर ताश खेलते जरा डरते हैं."

"डरता हूं? मेरा हाथ देखा है? दो गुलाम हाथ में लिये बैठा हूं. बस! ये तुम्हें ग्रैंड स्लैम *तक* तो नहीं पहुंचा सकते!"

"पहुंचा तो *सकते हैं* भाई साहब! बशर्ते आदमी में थोड़ा 'नेक' हो. काउंट्स को मारिये गोली, दुश्मनों को थोड़ा ब्लफ कर चारों खाने चित्त तो किया जा सकता है, इसी में अपना काम बन जाता है..."

राजनाथ ताराचंद खिलाड़ी से ज्यादा ताराचंद वकील को समझते थे. खेल में भी *अपने पेशे की* चतुराई छोड़ न पाते. वही वकीलोंवाली बहसें! *स्याह को* सफेद सिद्ध करने के लिए कोई न कोई दलील, कोई न कोई पेंच ढूंढ निकालेंगे. पर राजनाथ जब ताराचंद के विरोध में खेलते तो उनके स्लैम पर जरूर डबल-रि-डबल होता. शंकरलाल, नित्यानंद, एंथोनी, जो भी पास होते, चमकती आंखों से देखते और ठहाके लगाते. आवेर बिड करने पर पार्टनर से सवाल-जवाब होते. एक-दूसरे को कठघरे में खड़ा कर दिया *जाता.* दोषी पार्टनर किसी न किसी नियम की दरार से निकल भागने की कोशिश करता.

ताश पार्टियों के अलावा फुरसत के वक्त गप्प-बाजी भी होती. गप्पें ऐसी नहीं की मरी नूरा तो अंतःपुर की नायिका होनी चाहिए. *क्या मेनका-रंभा लगती है... भयया! क्या नूर बख़्शा है* देनेवाले ने कि देखनेवाला नजर भर देखे तो फ्लैट हो जाये... वो चलायें नजर के तीर तो खादिम जख्मी हुए बिना कैसे रहे...? वगैरह-वगैरह! नहीं भई! राजनाथ की मजलिस में ऐसे छिछोरे संवाद नहीं बोले जाते.

मिजाज उनका बड़ा शाइस्ता था. औरतों के बारे में बेहूदा बातें वे नहीं करते. कभी कोई हादसा हुआ भी हो किसी औरत को लेकर, पर यार-दोस्तों में बैठकर उसे रस ले-लेकर बयान करना उन्हें गैरमर्दाना बात लगती. फूहड़पन से उन्हें नफरत थी. यह अपने श्याम भाई की ही खूबी थी कि चार महिलाओं में घुसकर उनके बनाये पकवानों की प्रशंसा से शुरू कर उनके नखशिख वर्णन तक पहुंचकर, कइयों के दिलोदिमाग जीतने की कोशिश करते. राजनाथ को *यह कला आती नहीं थी.*

"लीलावती! ये तुम्हारी मंझली बहू, क्या नाम, तुलसी, क्या खस्ता रोगनजोश पकाती है. मैं तो दंग रह गया देखकर!"

"आपने चखा तो नहीं होगा!" लीलावती शर्मिंदा हो जाती. बहू के हाथ का पकाया खाना अभी कहां खिलाया है उन्हें!

"अरे, वो खाने की क्या जरूरत है, खुश्बू से ही मेरा दिमाग तर हो गया. वाह! वह रंग रूप, शाही मसालों की महक! क्या कहने? चीज अपनी तारीफ आप ही कराती है. ये दीनू, सीता क्या बनायेंगे वैसा खस्ता रोगनजोश! और वह संदली रंग का दानेदार केसरगंध वाला पुलाव. एक-एक दाना ज्यों पुकार!' अब रोगनजोश, कबर गाह को जाने भी दें तो वह कननिका-निका 'वोस्तहाख'. हरा-हरियाला, जो परसों तुमने खिलाया. मैं तो इसका स्वाद भूलूंगा नहीं उम्र भर!"

गरज कि महिलाओं पर अमृत वर्षा करने में कुशल श्याम भाई अपने इर्द-गिर्द महिला मंडल को मंडराता पाते और उनके नरम-गरम हाथों से मनचाहे पकवानों का सेवन करते. लेकिन श्याम भाई को मुस्करा-इतराकर, मना-मनाकर खिलानेवालियां भी राजनाथ से चार कदम का फ़ासला रखतीं. लिहाज-शर्म का परदा करतीं. राजनाथ भी इसी में खुश थे. एक वृहत्त परिवार का अनुशासन रखने में इससे मदद मिलती. और कम से कम उलझनें पैदा होतीं.

श्याम भाई की अपनी जिंदगी थी. राजनाथ इसमें दखल नहीं देते थे. अब यह उनकी खुशकिस्मती थी या कमनसीबी. इस पचड़े में हम नहीं पड़ेंगे क्योंकि गौरी जैसी खूबसूरत प्रेमिका-पत्नी पानेवाले राजनाथ को भृकुटि-कटाक्षों की जरूरत महसूस होती होगी. इसमें हमें जरा शक ही है. बहरहाल!

दोस्तों के साथ करने को तो हजार किस्म की बातें थीं. कई तरह के दोस्त थे, स्वभाव, संस्कार और व्यक्तिगत रुझान के अनुरूप वार्ताएं चलतीं. नित्यानंद वक्त के बदलाव से चिंतित थे. जमाने के दौर के साथ पर्दे में ढकी औरतें, नादिम आदि कवियों के प्रेम गीत यों तो शादियों में छकरियों, तुंबकनारियों पर गाये जाते थे. उसे सुनना अच्छा भी लगता था पर अब आज़ाद साहब का—'त्रावी प्रेनी किस्से तस अफसानय, थावी जेल्य-ज़ेल्य पंजरे तै जोलानय...' (पुरानी कहानियां और अफसाने छोड़ दे सखी. अपने पिंजरे और बेड़ियों को जलाकर बाहर आ) जैसे नगमों पर लड़कियां अमल भी करने लगी थीं. नादिम साहब ने भी औरतों के दिमाग को कम हवा न दी. इधर प्रदेश सहशिक्षा ने सबसे ज़ोर पकड़ा था, नये-नये हादसे होते रहते थे. वे उदाहरण पेश करने में सबसे आगे रहते. राजनाथ-एंथोनी कॉलेजों में पढ़ने के बावजूद इन बातों की उतनी खोज-ख़बर न रखते जितनी नित्यानंद!

उम्र

गुरमेल सिविया

'शाम का समय था. गुलाबी ठंड पड़ रही थी. जंगल का एक चूहा मौसम की रंगीनी का आनंद उठाने के लिए अपने बिल से निकला और इधर-उधर टहलने लगा. कुछ ही देर के बाद उसे हाथी का एक बच्चा दिखायी दिया. उसे देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया. फिर, वह उसका जायजा लेने के लिए उसके गिर्द चक्कर लगाने लगा. आखिर उसने उसके सामने आकर मुंह ऊपर उठाते हुए पूछा, "भला तुम्हारी उम्र कितनी होगी?"

"दो साल," हाथी के बच्चे ने कहा और सिर झुकाकर चूहे को बड़े ध्यान से देखने लगा. तब उसने पूछा, "और तुम्हारी उम्र?"

चूहे ने मुंह मसोसकर उदासी भरे लहजे में कहा, "उम्र तो हमारी भी दो साल ही है, पर हम कुछ बीमार रहते हैं."

अनुवाद : ब.स.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यानंद भी अपनी जगह अपनी सोच से मजबूर थे. उनके खानदान में पीढ़ियों से औरत को कोमलांगी, अंकशायिनी, लाज के पर्दे में ढकी असूर्यपश्या ही माना गया था. अब वे बाजार में सिर उघाड़े, पुरुषों हास-परिहास और मुक्त वार्तालाप करते कैसे देख सकते थे. सदियों से औरत पुरुष को रिझानेवाली सामग्री रही है. पुरुष को अपने नाज़ी अदाओं से रिझती, लुभाती वही तस्वीर नित्यानंद के ज़ेहन में चिपक गयी थी. पुरुष आशिक, स्त्री माशूका-वेमज़ाज को कोट करके कहा भी करते– 'इश्क का जौके नज़ारा मुफ़्त में बदनाम है, हुस्न खुद बेताब है जलवे दिखाने के लिए.' सो इन ढके-छिपे जलवों तक ही वह औरत को महदूद रखना चाहते थे. सह शिक्षा में ही उन्हें घोर अनैतिकता नजर आती. वे दुःखी थे कि अंग्रेजी शिक्षा ने नारी की लाज का पर्दा उठाकर उसे मर्द जात से रूबरू होना सिखा दिया. राजनाथ उन्हें शांत करते. इतिहास, पुराणों से उदाहरण देकर समझाते कि हमारी नारी असूर्यपश्या नहीं रही है. नैतिकता के मानदंड भी समय के अनुरूप बदलते रहे हैं.

''तुमने तो भैया सुना होगा लीलावती का नाम. विद्याधरी ने तो आदि शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में हरा दिया था. मंडन मिश्र की यह विदुषी पत्नी क्या 'असूर्यपश्या' थी? और वह गार्गी, मैत्रेयी...''

शंकरलाल जोड़ देते. ''चारित्रिक कुत्साओं की बात करें तो वे घर के अंधेरे बंद कमरों में ज्यादा पनपती हैं. वह चंद्रधर के घर का किस्सा, उधर लड़कियां पर्दों में ही रहती हैं पर हकीम-दाइयों हम भी बहू-बेटी वाले हैं, पर आपकी बात का जवाब है उस घर का किस्सा, उधर लड़कियों पर्दों में ही रहती हैं पर हकीम-दाइयों का आना-जाना बराबर जारी रहता है...''

राजनाथ बात का समापन करते. ''चारित्रिक पतन को सह शिक्षा के साथ जोड़ना ठीक नहीं है नित्या भाई. इसके कारण तो आर्थिक संकट और सामाजिक वर्गभेद हैं. छुप्पन-छुप्पी खेल में पुरुष-स्त्री की एक दूसरे के प्रति अतिरिक्त उत्सुकता बनी रहती है. खुलकर बातचीत करने से एक दूसरे का स्वभाव समझने का मौका मिलता है. एक साफ-सही रिश्ता बनाता है. आपके सामने प्रमाण हैं. भारत कोकिला सरोजनी नायडू को देखिए. स्वतंत्रता संग्राम में वे पुरुषों के साथ बराबर लगी रहीं. गांधीजी भी उनसे प्रभावित हुए, बल्कि गांधीजी ने नारी शक्ति का आवाहन किया स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए. जवाहरलाल के साथ कमला नेहरू ने भी आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लिया.

नित्यानंद का सोच कितना बदला, कितना बिगड़ा, हम नहीं जानते पर राजनाथ की गोष्ठियां उनके तंग सोच के बाहर जगह पाती रहीं. राष्ट्र की बदलती स्थिति के अनुरूप बातों के मुद्दे बदलते रहते थे. जब दूसरा महायुद्ध जोरों पर था. विश्व के कई देश संकट के दौर से गुज़र रहे थे. बात-बात में राजनीति बहस का विषय बनती. शंकर लाल कहते हैं कि राजनाथ भले ही आज़ादी की लड़ाई में शामिल न हुए हों पर उन दिनों उनके दिलोदिमाग पर मुल्क ही छाया रहता था. ताश-पार्टियां, पिकनिकें वगैरह जैसे एकदम छूट गयीं थीं. चार जने मिलते तो अखबारों की बातें करते. रेडियो पर कान लगे रहते. इंगलैंड ने जर्मनी पर हमला कर दिया था और भारत की अंग्रेजी सरकार युद्ध में शामिल हो गयी थी कांग्रेस से पूछे बिना.

हितैषी

एक बादशाह के वजीर ने एक दिन अपने एक कर्मचारी को कहा, ''उन सब लेखकों के नामों की सूची बनाओ, जिन्होंने समाचार-पत्रों में मेरे खिलाफ लिखा हो.''

सूची तैयार करके उसे दी गयी, जिसमें कई सौ लेखकों के नाम थे.

तब वजीर ने कहा, ''अब इनमें से उन लेखकों के नाम चुनो, जिन्होंने मेरी सबसे सख्त आलोचना की हो.''

उन लेखकों के नाम पेश करने पर कर्मचारी ने पूछा, ''अब इन्हें क्या सजा दी जायेगी?''

''सजा? सजा क्यों?'' वजीर ने कहा, ''अब मैं इनमें से खुद अपने सबसे कठोर आलोचक को चुनूंगा और उसे अपने समाचार-पत्र का मुख्य संपादक बनाऊंगा. अनुभव ने मुझे सिखाया है कि मनुष्य का सबसे कठोर आलोचक उसका सच्चा हितैषी होता है.'' □

अनुवाद : बं.स.

राजनाथ उन दिनों बेचैन नज़र आते. तानाशाह हिटलर और मुसोलिनी की महत्वाकांक्षाओं के कारण लाखों जानें कागजी पुतलों की तरह होम हो गयी थीं. रूसियों ने नाजी फौजों का जिस बहादुरी से सामना किया, वह विश्व के इतिहास में एक बेजोड़ घटना थी. लेनिनग्राद में रूसियों का मुकाबला उनके अपार साहस, शौर्य और आत्मशक्ति की बेजोड़ मिसाल थी. उधर अमरीका ने नागासाकी, हिरोशिमा पर अणुबम गिराकर नये आतंक की सृष्टि कर दी थी.

राजनाथ एंथोनी से कहते, ''सब तानाशाही दिमागों का फितूर है भाई. उसी का नतीजा भुगत रही है दुनिया. हिटलर को विश्व विजेता बनने का भूत सवार न होता तो लाखों निर्दोष जर्मन युद्ध में भूने न जाते. महत्वकांक्षाओं की लगाम ढीली छोड़ दी तो यही अंज़ाम होता है. सर्वनाश!

''मगर रूस ने भी सबक सिखाया ज़ालिमों को!'' एंथोनी जोड़ देते, ''मरते-कटते भी जो रूसी फौज़ें डटी रहीं, उनके पास क्या था? आत्मशक्ति ही न? अपने पर विश्वास लड़ो या मरो! राशन के अभाव में भूख, सर्दी और बीमारी से घिरे, उन्होंने क्या न सहा? आदमियों को छोड़कर सब कुछ खाया. भूख कितनी भयंकर चीज़ है, ये वही जान सकते हैं जिन्होंने राशन न मिलने पर चमड़े के जूते तक चबा डाले.''

''वे लोग हार स्वीकार नहीं चाहते थे. उन्होंने हिटलर को बता दिया कि रूस पर आक्रमण कर उसने ज़िंदगी की भारी भूल की है, जिसका नतीजा नाजियों के सर्वनाश में सामने आया.

इस विषय पर ताराचंद थोड़ी बहस ज़रूर कर लेते, इससे विषयांतर हो जाता और कुछ समय के लिए बात का माहौल बदल जाता. लेकिन फिर भी अपने देश की आंतरिक अशांति इस मित्र मंडली को चैन से बैठने न देती.

वर्षों से घर में रोज़ शाम वे लोग झुंडों में इकट्ठा होकर सरकार से रवैये की टीका-टिप्पणी करते रहे, अंग्रेज व्यापारियों के भारत आने से लेकर आज़ादी प्राप्त करने तक अनेकों मुद्दों का विश्लेषण होता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह जो अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस को पूछे बिना हिंदुस्तानी फौज को लड़ाई में झोंक दिया था, इसका नतीजा अच्छा नहीं निकलनेवाला था." एक आदमी बात की शुरुआत करता.

"अच्छा क्या निकलना था भैया, कांग्रेस मंत्रियों ने त्यागपत्र दियें. उन्हें बंदी बनाया गया." राजनाथ सुधारते.

"अंग्रेज जान गये कि कांग्रेसियों को अब गोलमेज कांफ्रेंस के फैसलों से फुसलाया-बलहाया नहीं जा सकेगा."

"तीसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस में हिस्सा भी न लिया.

"1935 में गवरमेंट ऑफ इंडिया एक्ट पास करके, सरकार ने प्रांतों को ऑटोनोमी दी. पर भारतीय इन भीख के टुकड़ों से खुश होने वाले न थे. गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्र में चेतना की नयी लहर जो दौड़ी थी."

गरज यह कि राजनाथ का घर राजनीति की प्रयोगशाला बनी रहती. उन दिनों बच्चे राजनाथ से खेलने को तरसते. ग्रामोफोन किसी कोने में पड़ा धूल चाटता रहता. रेडियो का भाव बढ़ गया था. अखबार तो वेद मंत्रों की तरह नियमित पढ़े जाते. कभी रात के नौ बजे या सुबह आठ बजे के समाचार के वक्त कोई बच्चा या महिला गलती से ऊंची आवाज निकालकर समाचार सुनने में बाधा डालते तो बच्चों को तो डांट पड़ती ही पड़ती, उनकी मांओं को भी दो-चार कड़े बोल सुनने का हकदार होना पड़ता, "कम से कम बच्चों को तो सम्हाला करो भागवंतियो!"

गौरी भी पति से उन दिनों डरी-डरी-सी रहती. वह क्विट इंडिया मूवमेंट, होम रूल या पूर्ण स्वराज की पेचीदगियां नहीं जानती थी. इंग्लैंड ने जर्मनी पर आक्रमण क्यों किया, जापान जर्मनी से किसलिए मिला? पर क्विट इंडिया मूवमेंट में हजारों लोगों की मृत्यु उसे अवसाद से घेर लेती. गांधीजी की वह परम भक्त थी. तभी तो जब गांधीजी बाबा शीतलनाथ में पधारे थे वह राजनाथ की मनाही के बावजूद ठट्ट के ठट्ट लोगों बीच, बचते-बचाती उनके दर्शन को पहुंच गयी थी. यह दीगर बात है कि वहां भीड़ में उनके कंधे छिल गये, किसी का डेजहोरु कट गया, किसी का दुपट्टा छिन गया, यहां-वहां नोचने-मसलने की दास्तानें हुई जैसा कि भीड़-भडक्के में होना लाजिमी था, पर गौरी खुद को बचाती गांधी के दर्शन कर आयी. उसकी उम्र भर की हौंस पूरी हो गयी. कई न समझ में आनेवाली बातें सुनते एक दिन उसने घर भर की चहक के बीच सुना कि देश स्वतंत्र हो गया था.

आज़ादी का दिन उसे यों भी याद रहता. पर उस दिन ऋचा का जन्म हुआ इसलिए वह दिन और भी अहम् बन गया.

देश की आजादी में राजनाथ ने कितना योगदान दिया, यह हम नहीं जानते, क्योंकि वे अपने कॉलेज में बराबर पढ़ाते रहे, जेल जाने का मौका उन्हें न मिला. यों वह देश-प्रेमियों की बातें अक्सर किया करते. उन्होंने कोट-पैंट पहनना छोड़ दिया था. विदेशी वस्त्रों का यों भी उन्हें ज़्यादा मोह न था. गो कि अब उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर थी. चाहते तो शौक पूरा कर सकते थे. जैसा कि उनके दोस्त किया करते थे, पर उन्होंने सूती कपड़े पहनना ही पसंद किया. गर्मियों में कुरता-पाजामा और नेहरूजी से प्रभावित होकर जवाहर जैकेट पहनना उनका शौक बन गया था. एक गुलाब जेब में रखते तो बिल्कुल नेहरू जी लगते सूरत-सीरत से भी उनकी फोटोकॉपी लगते थे.

राजनाथ ने अपने बच्चों को भी सादगी से रहने का चलन सिखाया. वे मानते थे कि यदि देश का हर नागरिक अपना कर्तव्य ईमानदारी से करे तो वही देशसेवा होगी. हरेक नागरिक को युद्धक्षेत्र में जाकर लड़ मरने या जेल जाने का अवसर नहीं मिलता.

लेकिन देश को आजादी मिलने के साथ-साथ जो सदमा पहुंचा, जो खून-खराबा हुआ, उसने राजनाथ के मर्म पर चोट कर दी. उनके कई संगी-साथी लाहौर में या तो मारे गये या बेघरबार होकर शहर-शहर भटकते रहे.

बंटवारे के तुरंत बाद कश्मीर पर कबाइली आक्रमण से काफी लोग बेघर हो गये. एक तरफ कबाइली बारामूला दूसरी तरफ शालटेंग तक आ पहुंचे. ये तो वे बेवकूफ जर, जेवर और जोरू के चक्कर में मार खा गये. नहीं तो सीधे दनदनाते हुए राजधानी पर धावा बोल सकते थे. इतना अचानक हमला था वह. प्रदेश के महाराजा ने प्रदेश का भारत से इलहाक करा दिया और स्वयं प्रदेश की सीमा से बाहर चले गये. यह तो शेरे-काश्मीर शेख अब्दुल्ला की सूझ-बूझ, समझदारी व लोगों के प्रति वफादारी थी जो रातों-रात उन्होंने जनता का नेतृत्व किया और भारतीय सेना की सहायता से कबालियों को मुज्जफादाबाद तक पीछे वापस धकेला गया. जिस दिन श्रीनगर वासियों ने बारामूला तक कबालियों के आने की बात सुनी,वह रात पूरे शहर के लिए मौत के सन्नाटे की रात थी. राजा के पलायन के बाद लोग भय और त्रास से घिरे वक्त के पल पल को अपनी छाती पर गुजरते महसूस कर रहे थे. क्या होगा? कैसे होगा? बहू-बेटियों का हश्र क्या अपनी आंखों देख पायेंगे? कई लोगों ने घरों में जेवर,रुपये की पोटलियां बांध रखी थीं. कईयों ने जहर की पुड़िया तैयार रखी थी, घर में जो तीर-तलवार-चाकू-बल्लम थे, उन्हें इकट्ठा कर खुद दो को मारकर मरेंगे, पर बहनों-मांओं को जहर देकर पहले सुला देंगे. लेकिन राजनाथ ने ऐसा कुछ भी न किया. वे बच्चों को दिलासा देते रहे, "सब ठीक होगा." शायद सोचते थे, मरने से पहले क्यों उन्हें मार दें? अगले दिन जब हिंदुस्तान के बमवर्षक विमान शालटेंग तक आये कबाइलियों पर बमबारी कर रहे थे. राजनाथ का पूरा परिवार पांचवीं मंजिल के टॉवर से आग और धुएं की लपटें देख रहा था. राजनाथ बच्चों-बड़ों को समझा रहे थे–"अब तो घबराने की कोई बात नहीं है न? शेख साहब मसीहा बनकर हमारे लिए आ गये हैं!" □

चलते-चलते

फिल्म-निर्देशक एक दृश्य की शूटिंग करते हुए अभिनेता को कई बार बता चुका था कि उसे सीढ़ियों पर से किस प्रकार गिरना चाहिए, लेकिन वह अभिनेता उस प्रकार गिर नहीं पा रहा था.

आखिर निर्देशक ने तल्ख होकर कहा, "बुजदिल हो तुम तो. मैं खुद गिरकर बताता हूं कि यह कितना आसान काम है."

जब उसने गिरकर बताया, तो फर्श पर लेटे हुए ही अभिनेता को कहा, "अब पता लगा?"

"हां."

"तो फिर गिरकर बताओ. लेकिन उसके पहले किसी आदमी को डाक्टर लाने के लिए भेजो; मेरी टांग टूट गयी है, और मैं उठ नहीं सकता." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

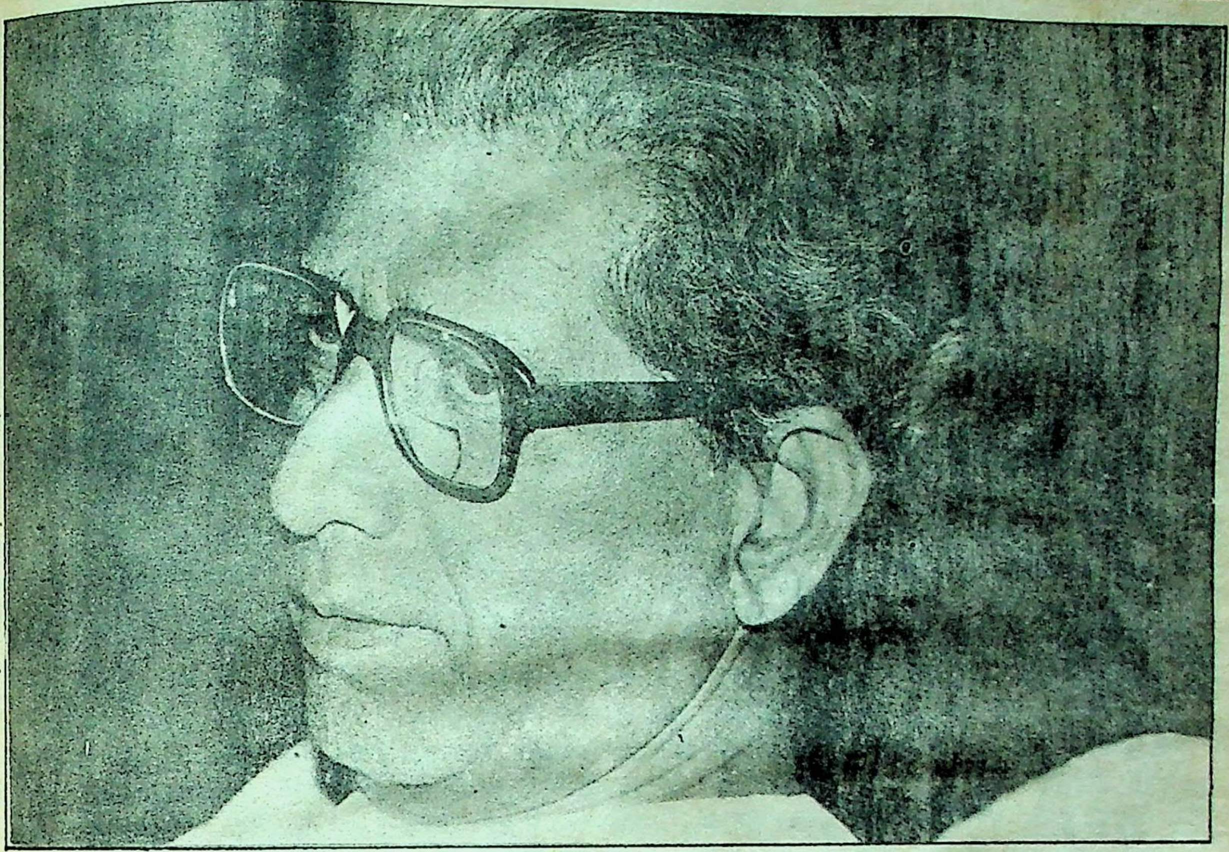

छाया : पवन मेहरा

निर्मल वर्मा 'बाबा वाद' के शिकार हैं

डॉ. नामवर सिंह से उदयप्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत की

पिछले अंक से प्रारंभ इस लंबे साक्षात्कार में इस बार पढ़िये 'परिंदे' से लेकर 'सूखा' तक निर्मल वर्मा की कथायात्रा और गोर्बाचौफ की पेरेस्त्रोइका और भारतीय वामपंथी लेखकों की समस्याओं पर बेबाक बात-चीत...

□ चलिए इस बार शुरुआत फिर निर्मल वर्मा की कहानी 'सूखा' से ही करते हैं. आपने निर्मल वर्मा की ही कहानी 'परिंदे' को पहली नयी कहानी कहा था. अब क्या आपको उन्हीं की कहानी 'सूखा' अंतिम नयी कहानी नहीं लगती? यानी क्या 'सूखा' नयी कहानी का अंतिम जलार्पण नहीं है? और चूंकि राजेंद्र यादव ने अपनी कहानी संबंधी रूढ़ समझ के अनुसार उसे एक श्रेष्ठ कहानी माना था, तो क्या 'सूखा' राजेंद्र यादव की भी कथा संबंधी समझ का अंतिम जलार्पण नहीं है?

देखिए, राजेंद्र यादव ने इस दौरान स्वयंप्रकाश जैसे कई युवा कहानीकारों द्वारा लिखी गयी अच्छी कहानियों पर कोई परिसंवाद आयोजित कराने के बजाय, 'सूखा' पर ही क्यों परिचर्चा आयोजित की, इसके पीछे के उनके इरादे के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा. यह अवश्य है कि जिस तरह की टिप्पणी के साथ उन्होंने उस कहानी को प्रकाशित किया था, उससे साफ था कि उनके मानदंडों में 'सूखा' कहानी श्रेष्ठ ठहरती थी. अब 'हंस' में जो चार टिप्पणियां 'सूखा' पर छपी हैं और चारों में जिस तरह आलोचना का तीव्र स्वर है, तो अगर राजेंद्र यादव सचमुच अपनी मान्यता के प्रति ईमानदार थे तो उनको चाहिए था कि वे स्वयं अंत में 'सूखा' कहानी पर टिप्पणी लिखते. एक संपादक की हैसियत से नहीं, बल्कि एक कहानीकार की हैसियत से. बहरहाल, इन चारों टिप्पणियों ने राजेंद्र यादव की कहानी संबंधी समझ पर प्रश्नचिन्ह तो लगाया ही है स्वयं निर्मल वर्मा की कहानी के लटके, फार्मूले और उनकी तथाकथित जादुई भाषा की कलई भी खोली है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ लेकिन एक जमाने में तो आप खुद निर्मल वर्मा की इसी जादुई भाषा के बड़े प्रशंसक रहे हैं, यह तब और अब में भेद क्यों?

ठहरिए, देखिए अब हमारी कहानी संबंधी चर्चा फिर एक गैरजरूरी चीज पर भटक जायेगी... एक काम तो राजेंद्र यादव ने कर दिया '**सूखा**' पर चर्चा करवाकर, अब वही गलती हम लोग फिर दुहरायें...

□ कुछ अर्सा पहले आपने निर्मल वर्मा की कहानी 'कौवे और कालापानी' के बारे में कहा था कि एक छोटी-सी बात को कहने के लिए निर्मल वर्मा ने अनावश्यक विस्तार और रहस्यात्मकता का सहारा लिया है.

हां, मैंने कहा था. देखिए निर्मल वर्मा की रचनाशीलता, संवेदनशीलता और विचारधारा में सन् 1967-68 से बहुत निर्णायक मोड़ आया है. मुख्यतः चेकोस्लोवाकिया में उनका प्रवास और वहां 'प्राग का बसंत (प्राग स्प्रिंग) का उन पर पड़ने वाला प्रभाव इसका कारण है. यह प्रभाव इतना त्रासद, इतना गहरा था कि उसके बाद उनकी जीवनदृष्टि भी बदली और इसका प्रभाव उनकी परवर्ती कहानियों पर पड़ा. उसी असर का परिणाम है कि निर्मल वर्मा तब से अब तक बार-बार वही अनुभव कहानी में दोहराने लगते हैं. अब अगर कोई एक ही जादू बार-बार दोहराये तो वह पहले वाली बात नहीं रहती. कहावत है—'वहि अर्जुन, वहि बाण'. यानी गांडीव धनुष भी वही है, अर्जुन भी वही है, लेकिन वह पहलेवाली बात नहीं रही. चमकीली धूप, नवंबर का कुहासा, कब्र और गिरजाघर की घंटियां यह सब बहुत दिन नहीं चल सकता. अज्ञेय के साथ नहीं चला तो निर्मल वर्मा के साथ कैसे चल सकता है.

□ क्या इसकी वजह यह है कि अब वक्त बदल गया है और अब यह भाषा पहले की तरह संप्रेषणीय नहीं रही?

नहीं, सिर्फ वक्त की बात ही नहीं है. एक लेखक जीवन भर अपनी भाषा को गढ़ता है, बनाता है और फिर वह उससे लंबे समय तक काम भी ले सकता है. लेकिन तब होना यह चाहिए कि अपनी अंतर्वस्तु के अनुरूप वह अपनी भाषा में वैविध्य, सान्निध्य और नवीनता लाने की कोशिश करे. वैसे निर्मल वर्मा ने इस दौर में भी कुछ अच्छी कहानियां लिखी हैं, जहां उनकी

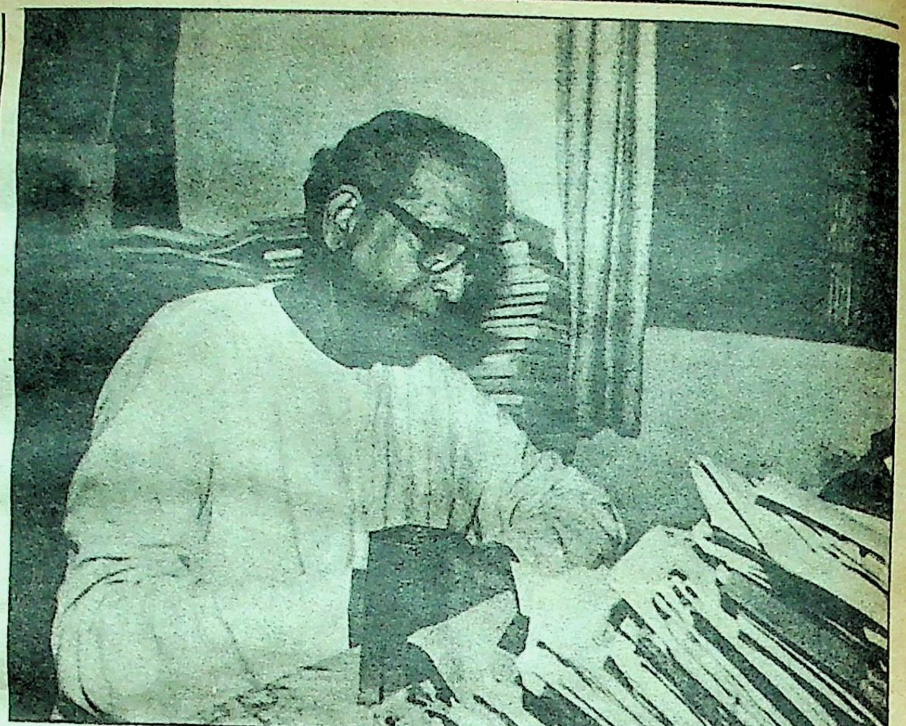

यही भाषा उनका संबल बनती है. मसलन '**एक दिन का मेहमान**' बहुत अच्छी कहानी है. '**बीच बहस में**' भी एक अच्छी कहानी है. लेकिन यह एक संयोग या विडंबना ही है कि निर्मल की वही जादुई भाषा '**सूखा**' में बिल्कुल निष्प्रभावी हो जाती है. डा. देव के चारो ओर एक प्रभामंडल बनाने के लिए वे जितना ज्यादा अपनी जादुई भाषा का इस्तेमाल करते हैं, वहां कहानी और भाषा उतनी ही कमजोर होती जाती है. मुझे तो लगता है कि अगर कोई 'डिकांस्ट्रक्शन' वाला लेखक '**सूखा**' कहानी को उठा ले तो अकेले इस कहानी के जरिये निर्मल वर्मा की समूची जीवन दृष्टि को तार-तार करके रखा जा सकता है. यानी अकेली '**सूखा**' कहानी निर्मल वर्मा के विरुद्ध अनेक प्रमाणों से भरा दस्तावेज बन सकती है. अपनी टिप्पणी में वीरभारत तलवार और उदयप्रकाश ने ऐसा किया था. एक प्रवासी भारतीय के जिस चरित्र को कथानक का मुख्य पात्र बनाया गया है, उसकी स्थिति हमारे भारतीय यथार्थ में हमेशा हाशिये पर है. हाशिये के जीवन और चरित्र को लेकर भी बहुत महत्वपूर्ण कहानियां लिखी गयी हैं. सवाल है 'अप्रोच' का. आपकी सहानुभूति कहां है? आप जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं, उसके लिए 'ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव' कहानी में मौजूद है कि नहीं है? अंग्रेजी पढ़-लिखे एक नितांत भद्र आदमी की छद्म चेतना पर चोट करनेवाली एक बहुत मार्मिक कहानी भी लिखी जा सकती है. ऐसी चेतनावाले चरित्रों पर कुछ कहानियां लिखी भी गयी हैं. असगर वजाहत की कहानी है—'**केक**'.

□ क्या निर्मल वर्मा की इस असफलता के पीछे उनकी जीवन दृष्टि के बदलाव का ही हाथ है?

हां, जीवन दृष्टि का यह परिवर्तन निर्मल की कहानियों में ही नहीं, उनके निबंधों में भी दिखाई पड़ता है. '**कौवे और कालापानी**' के बारे में तो मैंने कहा भी था कि एक नये तरह का 'बाबावाद' उसमें है. एक प्रकार के नये रहस्यवाद और धार्मिक चेतना का प्रभाव उनके कई निबंधों और कहानियों में है.

□ आपने 'प्राग के वसंत' की चर्चा की है. जब निर्मल वर्मा चेकोस्लोवाकिया में थे और जब 'प्राग का वसंत' वहां फलफूल रहा था तब चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष दुबचेक थे. 1968 में सोवियत संघ के हस्तक्षेप से दुबचेक को हटना पड़ा था और इसी घटना का निर्णायक असर आपके अनुसार निर्मल वर्मा पर पड़ा. लेकिन अभी पिछले दिनों सोवियत संघ में गोर्बाचौफ ने जो ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका की शुरुआत की है, उसका समर्थन तो चेकोस्लोवाकिया के सत्ताच्युत दुबचेक ने भी किया है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि दुबचेक ने तो यह कहा है कि 20 साल पहले वे चेकोस्लोवाकिया में वही काम कर रहे थे, जो अब गोर्बाचौफ कर रहे हैं. तो, जो ये नये बदलाव हो रहे हैं, क्या उसमें यह मुमकिन है कि उस समय की घटनाओं से समाजवाद से खिन्न और विक्षुब्ध हो उठे निर्मल वर्मा या मिलान कुंडेरा टाइप के लेखकों में कोई हृदय परिवर्तन होगा? क्या पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त का कोई असर निर्मल वर्मा जैसे साम्यवाद से मोहभंग वाले लेखकों पर पड़ेगा? दूसरी तरफ कहीं ऐसा तो नहीं कि इससे 'नीम वामपंथी' लेखकों में समाजवाद के प्रति एक और बड़ा मोहभंग पैदा हो, क्योंकि 'शीत युद्धवादियों की भाषा में निर्मल वर्मा जैसे लेखक पिछले डेढ़-दो दशकों से समाजवाद के बारे में जो भविष्यवाणियां कर रहे थे, उन्हें इस ग्लासनोस्त से बल नहीं मिलता?

यह तो ठीक है कि निर्मल वर्मा 'आई टोल्ड यू सो' वाली शैली में आज यह कह सकते हैं कि दुबचेक ने चेकास्लोवाकिया में जिस 'मानवीय चेहरे वाले समाजवाद' की स्थापना की कोशिश की थी और जिसे 1968 में ब्रेझनेव ने कुचल दिया था, आज गोर्बाचौफ वही कर रहे हैं, वे तो यह भी कह सकते हैं कि अफगानिस्तान में रूस के हस्तक्षेप का मैंने विरोध किया था, उसके विरुद्ध लेख भी लिखा था, जिसमें मैंने कहा था कि खुद रूसी समाज में इसके विरुद्ध गहरी प्रतिक्रिया है. उस समय भारत के कम्युनिस्ट, जनवादी या प्रगतिशील लेखक मेरी आलोचना करते थे, लेकिन आज उन्हीं बातों को खुद सोवियत संघ ने मान लिया है. यानी इस तरह निर्मल वर्मा कह सकते हैं कि मेरी आलोचनाएं सही थीं. सवाल यह है कि समाजवाद की आलोचना करते हुए निर्मल वर्मा ने रास्ता कौन-सा अपनाया? आज जब गोर्बाचौफ ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका की बात करते हैं तो वे स्वयं और सोवियत समाज भी समाजवाद को तिलांजलि नहीं दे रहा है. गोर्बाचौफ तो स्पष्ट कहते हैं कि हम दरअसल 'ज्यादा समाजवाद' चाहते हैं, 'ज्यादा लोकतंत्र' चाहते हैं. यानी ऐसा कोई नहीं कहता कि समाजवाद अपने आप में बुरा है और उसमें अंतर्निहित खामियां ही ऐसी हैं कि उसमें लोकतंत्र आ ही नहीं सकता, मानवीय समाज बन ही नहीं सकता. निर्मल जी की प्रतिक्रिया यही थी. वे समाजवाद और, मार्क्सवाद की बुनियादी मान्यताओं को ही गलत ठहराते हुए आध्यात्मिकता की, एक विशेष प्रकार के रहस्यवाद की, धार्मिकता की, व्यक्तिवादिता की, अंतर्मुखी प्रवृत्ति की तरफदारी करने लगे थे. यही नहीं एक छद्म और प्रतिक्रियावादी तथाकथित भारतीयता की वकालत भी उन्होंने शुरू की और इस छद्म भारतीयता की नींव उन्होंने गांधीवाद के नितांत लोकविरोधी तत्व पर रखी. गांधीवाद का जो क्रांतिकारी चरित्र था, उससे बचते हुए वे 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' वाले गांधीवाद के प्रवक्ता बने. इसीलिए गोर्बाचौफ द्वारा स्तालिनकाल की समाजवादी व्यवस्था की आलोचना की दिशा कुछ और है और निर्मल जी की दिशा शीतयुद्ध की. कम्युनिस्ट विरोध की प्रतिक्रियावादी दिशा है.

□ **खैर निर्मल जी को छोड़िए. लेकिन रूस में आज जो बदलाव हो रहे हैं, उनका असर हमारे यहां की परंपरागत प्रगतिशीलता पर कुछ न कुछ तो पड़ेगा? पिछले बीस सालों से जनवाद विरोधी या प्रगतिवाद विरोधी खेमा समाजवाद के विरुद्ध यही तर्क तो दे रहा था कि समाजवाद एक लोकतंत्र विरोधी तानाशाही व्यवस्था है, कि स्तालिन काल में सोवियत जनता और बुद्धिजीवियों का भयावह दमन हुआ. डा. धर्मवीर भारती की किताब 'मानव मूल्य और साहित्य' तो ऐसे कथनों से भरी पड़ी है. ऐसे दौर में डा. रामविलास शर्मा और स्वयं आपकी जो स्थिति और भूमिका थी, क्या आज वह संदिग्ध और भ्रामक नहीं हो उठी है? क्योंकि आज तो पश्चिम का पूंजीवादी प्रचारतंत्र ही नहीं, स्वयं सोवियत रूस का प्रेस कह रहा है कि स्तालिन युग में दमन हुआ, लोग मारे गये, तानाशाही पनपी. क्या नहीं लगता कि एक विभ्रम की स्थिति, एक 'कनफ्यूजन' की स्थिति आज तीसरी दुनिया के तमाम वामपंथी संगठनों और लेखकों-बुद्धिजीवियों के बीच फैल सकती है?**

जून के अंत में जब सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 19वीं कांग्रेस मास्को में हुई, संयोग से 10-15 दिन पहले मैं मास्को में मौजूद था. वहां के लेखकों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों से बातचीत करके, वहां वे जिस अनुभव से गुजर रहे हैं, उसकी एक झलक मुझे भी मिली. उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि स्तालिनवाद और स्तालिन पर बहस तो पेरेस्त्रोइका का सिर्फ एक अंग है. वह लक्ष्य नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधन है, उसके द्वारा मानसिक मुक्ति का जो एहसास आया है....

□ यानी इसके पहले सोवियत समाज में 'मानसिक मुक्ति' नहीं थी? यानी वे आरोप जो लगाये जा रहे थे, वे सही थे?

हां, वे आरोप सही थे. उस समाज में लोकतंत्र की कमी थी. उस समाज में व्यवस्था की मुक्त आलोचना के प्रति एक झिझक थी... दबाव थे...

□ लेकिन प्रगतिशील चिंतकों, लेखकों, आलोचकों ने तो पिछले कई दशकों से लगातार ऐसे आरोपों के विरुद्ध सोवियत संघ को 'डिफेंड' ही किया था. क्या वे सब गलत थे?

यह एक अलग ब्यौरा है. मैं उस पर भी बात करूंगा. लेकिन आप सोचिए कि जिस देश में इतनी बड़ी समाजवादी क्रांति हुई हो, जहां शिक्षा और साक्षरता शत-प्रतिशत हो, जहां राजनैतिक चेतना अत्यधिक हो... यह आप मत भूलिए कि सोवियत जनता के पास सूचनाओं की कमी नहीं थी...

□ सूचनाओं की कमी क्यों नहीं थीं? उसे तो एक लोहे के पर्दे वाला बंद समाज कहा जाता था?

नहीं. सोवियत समाज व्यवस्था कोई ऐसी 'टोटैलिटेरियन' व्यवस्था नहीं थी, जहां सारी जनता को कैद में रखा गया हो? लोगों के पास सूचना हासिल करने के अनेक स्रोत और माध्यम थे.

□ यानी कम से कम विरोधियों का यह आरोप तो गलत था...

लेकिन जिस तरीके से वे ये सूचनाएं हासिल करते थे, वह बहुत खुला तरीका नहीं था. इसके बावजूद विदेशी पुस्तकें पहुंचती थीं उनके पास. लोगों का बाहर आना-जाना लगा रहता था. विश्व साहित्य से भी उनका संपर्क था. लोहे की वह दीवार इतनी सख्त और अभेद्य नहीं थी, जैसा कि प्रचारित किया जाता है. मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि एक ऐसी समाज व्यवस्था, जो क्रांति के बाद 70 वर्षों में परिपक्व हुई हो, उसमें ऐसी चेतना और संवेदनशीलता थी जो किसी दूसरे गैर समाजवादी समाज से कम नहीं थी. इसका प्रमाण तो वहां का साहित्य ही है जो इन 70 वर्षों में रचा गया, तमाम दबावों के बीच, मेरा तो मानना है कि जब कि राष्ट्र, जाति या देश में एक गहरा आत्मविश्वास पैदा होता है, तभी आत्मालोचना और आत्मसमीक्षा की शक्ति भी पैदा होती है. अपने अतीत की भूलों को निडर होकर स्वीकार करना कोई साधारण काम नहीं है. अब साहित्य की ओर देखें. एक जमाने में 'समाजवादी यथार्थवाद' वहां की सरकारी सौंदर्य-शास्त्रीय जरूरत था. कुछ लोग हिंदी में भी उसकी लीक पीट रहे थे. आज भी पीट रहे हैं. जब उस दौर में सोवियत लेखकों से पूछा जाता था, तो वे हंसते थे और कहते थे कि 'क्या आप सचमुच इस विषय को बातचीत के लायक समझते हैं? बताइए वासीलेई शुक्सिन... मिखाइल बुल्गाकोव जैसे लेखक जिस भाषा में रहे हों, जो 'समाजवादी यथार्थवाद' के शिकंजे के बाहर थे... आज ऐसे लेखकों, नाटककारों को पहचाना जा रहा है. हम लोग तो सिर्फ वोज्नेसेंस्की और येव्तुशेंको जैसे एक-दो कवियों का नाम लेकर रुक जाते थे. लेकिन यह तो आइसबर्ग का सिर्फ एक टिप था. बहरहाल, इस बीच जो चीजें सामने आ रही हैं, उनसे लगता है कि साहित्यिक सृजनशीलता के रास्ते में जो अवरोध अब तक पड़ा हुआ था, वह हट गया है. तारकोव्स्की का ही उदाहरण लीजिए. उसी देश का इतना महान फिल्मकार जो विदेश जाकर मरा, आज सोवियत समाज में उसी तारकोव्स्की को लेकर एक गहरा पछतावा और सम्मान है. वैसे यह भी नहीं है कि इन रचनाकारों की रचनाओं को सार्वजनिक रूप से सुलभ करके वे सिर्फ उनका गुणगान ही कर रहे हैं, बल्कि वे इन रचनाकारों के प्रति एक गहरी आलोचनात्मक दृष्टि भी प्रकट कर रहे हैं. सिर्फ 'वाह-वाह' का मामला नहीं है.

□ लेकिन इस ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसका संबंध सिर्फ सोवियत संघ के अंदरूनी बदलावों से ही नहीं है, इसकी अंतरराष्ट्रीय परिणतियां भी हैं, साम्राज्यवाद और समाजवाद के बीच के अंतर्विरोध बुनियादी अंतर्विरोध भी रहे हैं. इसी अंतर्विरोध के चलते सोवियत संघ ने अंगोला, मोजांबीक, विएतनाम, क्यूबा, निकारागुआ जैसे देशों में वहां की साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को सहायता दी. क्या बिना समाजवाद की मदद से विएतनाम जैसा छोटा-सा देश 15 साल तक अमेरिका के खिलाफ लड़कर अंत में विजयी हो सकता था. पर आज इस ग्लासनोस्त के दौर में साम्राज्यवाद और समाजवाद के बुनियादी अंतर्विरोधों पर ही पानी डाला जाने लगा है. अफगानिस्तान से रूस हटा. अंगोला से क्यूबा हट रहा है. कल निकारागुआ को मदद बंद की जा सकती है. आप क्या सोचते हैं?

देखिए, मैं एक बात कहूंगा कि जो सोच का यह तरीका है, उसे बदलने की जरूरत है. हमारी जो पिटी-पिटायी धारणाएं हैं, हम अगर उनकी ऐतिहासिक सीमाओं को नजरंदाज करके उन्हीं के जरिये सारी नयी स्थितियों की व्याख्या करने लगेंगे तो क्या होगा? उदाहरण के लिए हमारे कई मार्क्सवादी आलोचक जब हमारे देश की आज की स्थितियों की व्याख्या करने लगते हैं कि आज भी तो हमारा मुख्य संघर्ष साम्राज्यवाद विरोध और सामंतवाद विरोध है. यानी एक नुस्खा बना हुआ है, जो पिछले 100 साल से चल रहा है. सन 1857 में यही था. 1957 में यही था, 1987 में भी यही था. भगवान जाने यह नुस्खा कब तक चलेगा. इसी नुस्खे से प्रेमचंद को भी ये आलोचक जांचते हैं और इसी नुस्खे से उदयप्रकाश को भी जांचते हैं. हमें ऐसे सुविधाजनक नुस्खे छोड़ने पड़ेंगे. देखिए गोर्वाचौफ ने एक महत्वपूर्ण बात कही है कि नयी प्रविधि के बाद, यानी 'थर्ड टेक्नोलॉजिकल रिवाल्यूशन' के बाद वे सारे राजनैतिक पद, जो 19वीं शताब्दी में बने थे, उनमें संशोधन की जरूरत है. यानी आज साम्राज्यवाद वही साम्राज्यवाद नहीं है, जो तीसरी प्राविधिक क्रांति के पहले था. कुछ लोगों ने इस परिवर्तित साम्राज्यवाद को परिभाषित करने के लिए उसके पहले 'न्यू' या 'नियो' प्रत्यय लगा दिया. लेकिन इससे कोई बात बनती नहीं है. इसीलिए तीसरी तकनीकी क्रांति के बाद, जब एक तरफ स्टारवार का खतरा है और दूसरी तरफ तमाम पूंजीवादी देशों में भी शांति आंदोलन चल रहे हैं—ऐसे में हमारी विश्व प्रणाली वही नहीं रह गयी है, जो पहले थी. 'ग्लासनोस्त' इसी बदली हुई विश्वप्रणाली की एक जरूरत है. □

और अगली किस्त में

अगली किस्त में भारत भवन, अशोक बाजपेयी, अपना उत्सव और सरकारी संस्कृति से जुड़े विवादास्पद और विचारोत्तेजक सवाल-जवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

'दहेज' पर एक कहानी लिखो

दहेज एक बड़ी सामाजिक समस्या है. सिर्फ दिल्ली में और सिर्फ सन् सतासी में 1500 औरतें दहेज के लिए मार दी गयीं. कस्बे-कस्बे, शहर-शहर दहेज के लिए मारी जा रही या सताई जा रही औरतों का आंकड़ा नहीं मिलता. बहुत पहले दहेज और उसके कारण अनमेल विवाह की समस्या को लेकर प्रेमचंद ने 'निर्मला' लिखा था. कहते हैं कि जब निर्मला उपन्यास धारावाहिक रूप में छपा तो उसकी प्रशंसा करनेवाले— खासकर औरतों की संख्या लगातार बढ़ती गयी. अनेक लोगों ने उसे पढ़कर दहेज के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाया. ऐसे लोगों ने संपादक को अपने विचार परिवर्तन के बारे में लिखा. पता नहीं क्यों समीक्षकों की नजर में 'निर्मला' एक उपन्यास के रूप में कभी नहीं चढ़ा मगर पाठकों ने हमेशा उसे हाथों हाथ लिया.

आज दहेज की समस्या और भी विकराल रूप धारण कर चुकी है. मगर प्रेमचंद की परंपरा की सौगंध खानेवाले या उनके नाम के प्रभामंडल में चमकने की कोशिश करनेवाले यशःप्रार्थियों की रचना (या समीक्षा) में दहेज अब कोई समस्या नहीं रह गयी है. बड़े से बड़े रचनाकार की बड़ी से बड़ी रचना उठा लीजिए, ऐसा लगता है कि दहेज की समस्या 'निर्मला' के साथ ही समाप्त हो गयी. पता नहीं क्यों मगर यह अजीब-सी सच्चाई है कि हमने जितनी ही यथार्थवाद की बातें कीं, उतना ही वह रचना की आत्मा से गायब होता गया.

यह सच है कि एक जन माध्यम के रूप में दूरदर्शन इस समस्या के प्रति पर्याप्त जागरूकता और समझदारी का परिचय नहीं देता. मगर यह एक 'कष्टकर' सच्चाई है कि जो काम हमारा साहित्य नहीं कर रहा, जो काम हमारा कथाकार नहीं कर रहा, वह (भले ही ऊपरी मन से) काम दूरदर्शन कर रहा है. (ऐसा कथन दूरदर्शन के चरित्रवान होने का सर्टिफिकेट नहीं है.) 'निर्मला' सीरियल और 'बंद फाइल' नामक फीचर कार्यक्रम दोनों ही दहेज पर केंद्रित कार्यक्रम रहे हैं जो हमें एक सामाजिक समस्या के सांस्कृतिक प्रतिफलनों के अध्ययन का मौका देते हैं. यह अध्ययन कथाकार के लिए भी उपयोगी है क्योंकि यहीं से उसकी कथा प्रकृति की नयी चुनौतियां भी निकलती हैं.

दहेज पर लिखने का, सोचने का एक ही तरीका तो नहीं हो सकता. निर्मला सीरियल एक तरीका है तो 'बंद फाइल' दूसरा तरीका है और कई मायनों में निर्मला का पूरक भी. 'बंद फाइल' ने कानपुर की तीन बहिनों की आत्महत्या को दहेज तथा अन्य सामाजिक स्थितियों से जोड़कर इस विषय को न केवल नये ढंग से देखा बल्कि नये सिरे से प्रस्तुत भी किया है. 'बंद फाइल' पर आयी प्रतिक्रियायें बताती हैं कि इस एक कार्यक्रम ने अनेक विज्ञापनों तथा सीरियलों से भी अधिक प्रभाव डाला है और लोगों के सोये हुए विवेक एवं मनुष्यता को जगाया है और दहेज का सवाल एक बड़े फलक पर फिर से उठा है.

यद्यपि यह बहुत मास्टराना लगता है मगर कहा जाना चाहिए कि जब भी हम साहित्य संस्कृति को समाज के प्रति जिम्मेदार बनाने की बात कहते हैं तो मूलतः उसमें समाज की समस्याओं को ही देखते हैं. दहेज एक समस्या नहीं, अभिशाप है. साहित्य में खासकर कथा साहित्य में— और सब कुछ हो और इस अभिशाप का स्पर्श न हो तो हम किस मुंह से कहेंगे कि वह साहित्य है? तमाम तरह के कुलीन लेखक इसे अपनी रचना का हिस्सा नहीं बना पाते तो इसीलिए कि उनकी रचना की भूमिका की मूल समझ समाज निरपेक्ष ही होती है भले ही वे मार्क्सवाद या प्रगतिशीलता का चंदन माथे पर लगाकर घूमते फिरें. ध्यान दें तो ऐसे कुलशील और जन्मना कुलीन लोग जब 'निर्मला' देखते हैं या 'बंद फाइल' देखते हैं तो उन्हें 'निर्मला' का संदेश या 'बंद फाइल' का संदेश नजर नहीं आता. वे उसे बातों-बातों में दो कौड़ी का कह सकते हैं या अपने-अपने ईर्ष्या-द्वेष पाल सकते हैं.

निर्मला की खूबी सीरियल में उभरती है. आज से पचास वर्ष पहले की पीढ़ी को आंदोलित करनेवाला यह अनमोल उपन्यास अगर आज दिखाया जाता है तो दूरदर्शन के जरिए तत्काल लाखों के बीच 'निर्मला' का संदेश पहुंचता है. निर्मला का संदेश यह है कि आप कितने भी आदर्शवादी हों, भले हों, मगर जब तक आप जीवन में कोई भला काम नहीं कर सकते, आप आदर्शवादी नहीं हो सकते.

'बंद फाइल' इससे आगे की कहानी है. वह उस यथार्थ का तीखा बयान है जिसमें 'हृदय परिवर्तन' यथार्थ नहीं रह गया वह अति नाटकीय बन जाता है. या धोखा नजर आता है. यह कार्यक्रम सन् 88 का सच कहता है जिसमें लगातार तिरस्कृत हुई लड़कियां आत्म हत्या करती हैं. वे अपने परिवारों के परंपरागत संस्कारों, उनके सामंतीय ढांचों का शिकार होती हैं. वे दहेज के लिए अपमानित हैं और जला दी जाती हैं, ऐसी परिस्थितियों में 'निर्मला' पैदा नहीं की जा सकती, न ऐसे डाक्टर ही मिल सकते हैं जो बिना दहेज के छोटे भाई की शादी करायें और यों अपने अपराध को परिमार्जित करें. आज के दहेजवादियों को शर्म-हया नहीं, कोई अपराध बोध नहीं. वे ठंडे मिजाज के कसाई बन गये हैं. निर्मला के जमाने की 'दहेज प्रथा' आज के पूंजीवादी संकट में और भी संहारक बन गयी है. अब 'निर्मला' बूढ़े के साथ रहने को राजी नहीं मगर उसके पास दहेज भी नहीं है. अब वह आधी शिक्षित, आधी आधुनिक बन गयी है, 'बंद फाइल' की 'सीमा' की तरह प्रेम विवाह को ठीक नहीं समझती मगर परंपरागत दहेज को भी ठीक नहीं समझती. वह इसी दुविधा में विश्वास करती है.

'दूरदर्शन' को धिक्कारनेवालों का ऐसे कार्यक्रमों के बारे में क्या कहना है? □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इश्क की पुरवाइयां

> इश्क की हदें भी बांधी जा सकती हैं भला? किस्मत जब प्रेमियों पर मुस्कराने लगे तो फिर एक-लौ होने में क्या देर लगती है?

निजाम हैदराबाद का दीवान महाराजा सर किशन परशाद बहादुर, जी.सी.आई.ई. यामीन उस्सल्तनत. उसके वंश-वृक्ष में शायद सभी वजीर बने थे—उसके पूर्वज राजा टोडर मल बादशाह अकबर पर छाये रहे. और जब हैदराबाद की रियासत तराशने आसफ जाह प्रथम दिल्ली से चले थे तब उनके साथ भी इसी वंश-वृक्ष का एक वजीर आया था—राय मूल चंद. फिर महाराजा सर चंदू लाल सन् 1809 से 1842 तक हैदराबाद के पेशकार रहे. वैसे महाराजा सर किशन प्रसाद महाराजा चंदूलाल के पौत्र महाराजा नरेंद्र परशाद के पौत्र थे. और सर सालार जंग ने ही तो महाराजा किशन प्रसाद को अनुशासन एवं विदेशी शिक्षा-प्रणाली की छेनी-हथौड़ी से तराशा था. फिर महाराजा किशन प्रसाद निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा के दाहिने हाथ बने थे. अजीब जोड़ी बन गयी थी दोनों की—नौकर वफदार था तो मालिक कद्रनशां मानो काबा और कलीसा एक ही चहारदीवारी में पनप रहे हों.

महाराजा किशन प्रसाद हरफन मौला थे—संस्कृत, फारसी, उर्दू, हिंदी, संगीत, चित्रकला, शायरी सब में दखल था. यहां तक कि वे जब मचलकर कुम्हार का चाक चलाने लगते तो इतनी खूबसूरत मिट्टी के बरतन बनाते कि कुम्हार चकरा जाता. और रही बात खाना बनाने की—इस फन में वे इतने मजे हुए थे कि एक तरह की दाल को बावन तरीकों से बना सकते थे. और उम्र की दहलीज लांघकर जब वे जवानी के आंगन में आये तब उन्हें एहसास होने लगा कि इश्क की पुरवाइयां धीमे-धीमे चलने लगी हैं जो उन्हें कुदरत अपनी शराब पीने को उकसा रही है. वैसे उनके बुजुर्ग गधा-पच्चीसी की बदमस्तियों से वाकिफ थे और तभी तो उन्होंने किशन प्रसाद को दांपत्य के खूंटे से फौरन ही बांध दिया था. पर भला एक ही खूंटे से हैदराबाद जैसी रियासत का दीवान बांधा जा सकता था. देखते ही देखते उनकी कई रानियां बन गयीं. पर 'बड़ी रानी' के रुतबे की लाज उन्होंने हमेशा रखी.

जब वे शिमला 'जी.सी.आई.ई.' का खिताब लेने गये थे तब वे अपनी कार में 'बड़ी रानी' और उनके बच्चों के साथ बैठे थे. बाकी की रानियां अन्य कारों में पीछे-पीछे चली थीं. सलीका उनकी जिंदगी का उसूल था. अकसर 'मीर' का शेर भी दोहराया करते थे:—

शर्त सलीका है हर इक अम्र में
ऐब भी करने को हुनर चाहिये

वैसे तो वे स्वयं भी एक मजे हुए शायर थे— फारसी और उर्दू दोनों के. तखल्लुस (उपनाम) था 'शाद'. उन्होंने एक उर्दू की पत्रिका भी निकाली थी 'महबूब उल कलाम' जिसकी पहली गजल स्वयं निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा की होती और फिर शाद एवं अन्य शायरों की. उनकी शायराना तबीयत ने जब उड़ान भरी तो उनकी जिंदगी एक जलसे की तरह गुजरने लगी. और फिर इश्क की पुरवाइयां भी तो धीमे-धीमे चलकर उन्हें एक उद्दंड प्रेमी बनाए डाल रही थीं. लिहाजा उन्होंने हिंदू रानियों के अतिरिक्त मुसलमान बेगमें बनायीं पर उनके नाम नहीं बदले और उन्हें हरेक मुस्लिम त्यौहार मनाने की छूट ही नहीं दी बल्कि थैलियों में अशर्फियां भी दी जातीं. उस त्यौहार में वे स्वयं शिरकत करते और उनकी मुसलमान रानियां एक क्षण को भूल जातीं कि महाराजा किशन प्रसाद हिंदू हैं.

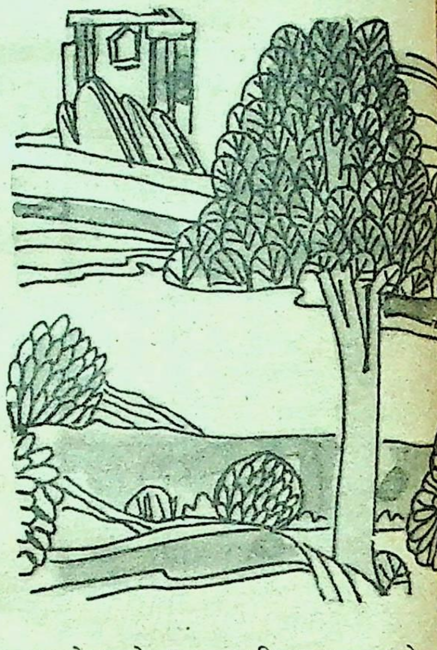

सबसे पहले महाराजा किशन प्रसाद को अपने मालिक निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा की दरिया दिली का तब पता चला जब वे एक मुसलमान जागीरदार की लड़की पर रीझे थे. उस दिन महबूब अली पाशा के हरम के खेमे बागे-आम में लगे हुए थे. जब महाराजा किशन प्रसाद उधर से गुजरे तो एक खेमे से शायद उस दिन भी इश्क की पुरवाई चल रही थी जो हवा ने एक पल को बारीक चिलमन को पलट दिया और दूसरी तरफ खड़ी वह जागीरदार की लड़की एक झलक दे गयी मानो बिजली कड़ककर काले बादलों में समा जाये. किशन प्रसाद के दिल पर यकीनन उस दिन गाज पड़ी और उन्होंने उसे फिर देखने की इच्छा प्रकट की. इसका मतलब समझते हुए उस जागीरदार को देर नहीं लगी और उसने बाकायदा उनसे लिखत-पढ़त करवा ली कि शादी होने पर उस लड़की के नाम कितनी जायदाद कर दी जायेगी. शर्तनामा लेकर वह जागीरदार फिर निजाम हैदराबाद की मां के पास पहुंचा था—शिकायत करने और उस कागज को देखकर निजाम की मां भी भड़क गयीं और अपने बेटे को फटकारा 'ऐसे फिसलती तबियत के शख्स को नौकरी पर क्यों रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो.' हैदराबाद में अफवाहों के बादल जगह-जगह छा गये. 'दीवान को निकाला जायेगा', 'दीवान को बरख्वास्त करा जा रहा है.'' सबसे पहले उस अंग्रेज कर्नल रेजीडेंट ने भविष्यवाणी की थी 'उसको निजाम नहीं निकालेगा क्योंकि किशन प्रसाद से बढ़कर काबिल दीवान और वफादार दोस्त उसे कहीं भी ढूंढे नहीं मिलेगा'. और वही हुआ. निजाम ने अपनी मां के रूबरू 'हूं हां' तो की पर किया कुछ भी नहीं.

महाराजा किशन प्रसाद ने एक बार फिर इश्क के आसमान में उड़ान भरी और अब की बार तो वे स्वयं नीम बिस्मिल हो गये. हैदराबाद के एक दकियानूसी मुसलमान खानदान का ही चिराग थी गौसिया बेगम. बेले जैसा रंग, गजल जैसी आंखें, मोरछली जैसा कद—गौसिया चलती फिरती कयामत जैसी थी. और भला इश्क की हदें भी किसने बांधी हैं. जब किस्मत उन पर मुस्करायी तो दोनों तरफ एक लौ उठी और फिर धीरे-धीरे वे एक-लौ हो गये. हद तो तब हुई जब वे दोनों ही आग के दरिया में तैरने की जुरअत करने लगे. छुप के किशन प्रसाद गौसिया के यहां जाते, मिलते, और लौट आते. और कभी स्वयं गौसिया पर्दे की कैद से भागकर अपने 'किशन' के पास आती. इश्क की बेल जब बढ़ी तो समाज की दीवार पर भी चढ़ने लगी. बात खुली. पहले दबी जुबान चर्चे हुए और फिर दुनिया वालों ने अपना मोहरा भी बढ़ाया. बात गंभीर थी क्योंकि गौसिया अच्छे खानदान की लड़की थी और एक हिंदू से गठ-बंधन होना भी टेढ़ी खीर था.

अब? अब क्या हो.

फिर मशविरे आये. दीवान बहादुर की हालत देखकर उन्हें भरोसा हो चुका था कि किशन प्रसाद अब 'मन-जुनून' हो गये हैं, उनके जुनून ही हदें बहुत बढ़ चुकी हैं. पर गौसिया? उसके सर भी तो कोई मीठा जादू चढ़ गया था जो लाख उतारे नहीं उतर रहा था. और तभी किशन प्रसाद ने फैसला कर डाला 'गौसिया एक शरीफ मुसलमान की बेटी है. उसकी बदनामी मैं बरदाश्त नहीं कर सकता और ना ही उसके बगैर मैं रह सकता हूं. बस अब तो एक ही घर बचा है शह बचाने के लिये. मैं मुसलमान हो जाऊंगा.' इस खबर ने हैदराबाद को चौंका दिया. जिधर देखो उधर ही चर्चे—'दीवान बहादुर महाराजा सर किशन प्रसाद 'शाद' मुसलमान बन रहे हैं—गौसिया की खातिर.'

और जब गौसिया के खानदान ने भी यह बात सुनी तो वे खुश हुए. 'अब हमें गौसिया को सौंपने में कोई उज्र नहीं.' वे जानते थे कि दीवान बहादुर कोई ऐरे-गैरे तो हैं नहीं.

लाखों की जायदाद, पदवी, शानो-शौकत-क्या नहीं था उनके पास. जब दीवान बहादुर अपनी कार से बाजार से गुजरते तो एक प्यादा रास्ते भर चांदी के रुपये लुटाता चलता था. उस दीवान बहादुर के घर का चरण बनने जा रही थी गौसिया. और गौसिया पर क्या बीती? उसे इस अफवाह में अपनी शिकस्त का एहसास हुआ. उसका 'किशन' उसके लिये 'करीम' हो जायेगा— सिर्फ उसकी आबरू के लिये, उसकी मुहब्बत के लिये.

बात फैलते ही दोनों का ही मिलना बंद हो गया था. अब तो तोड़-फैसले के इंतजार था सबको. और तभी यह बात निजाम महबूब अली पाशा के कानों में भी जा पड़ी. वे मुस्कराये 'शाबास किशन प्रसाद, तुम गौसिया की आबरू रखना चाहते हो—इतनी बड़ी कीमत अदा करके.' बात सच थी. चकबस्त ने बहुत बाद में इसी आबरू के नुक्ते को कैसा उभारा है:

'आबरू क्या है—तमन्ना-ए-वफा में मर जाना'

किशन प्रसाद की वफा ने निजाम महबूब अली पाशा को मुअत्तर कर दिया. और फिर दोनों दीवान बहादुर को तलब किया. इश्क का गुनहगार उनके सामने सर झुकाकर खड़ा हो गया. निजाम बोले 'हम तुम्हारे हौसले की कद्र करते हैं किशन प्रसाद. पर एक बात समझ लो. सदियों से इस रियासत का पेशकार एक हिंदू होता आया है और होता रहेगा. मैं तुम्हें सोचने के लिये वक्त देता हूं. गौसिया या पेशकारी—किसी एक राय को चुन सकते हो.'

एक लंबी सांस भरकर दीवान बहादुर सोच-विचार करने चल दिये. सबसे पहले उन्होंने गौसिया की सहेली निकहत को अपना फैसला सुनाया था 'मैं गौसिया लूंगा.' और जब गौसिया को दीवान बहादुर का फैसला निकहत ने बतलाया तब उसी दिन निकहत ने देखा कि जब हुस्न बगावत करता है तो आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचता. घर के सब बंधन और थोथी आबरू के अंबार छोड़कर गौसिया उस रात भागी थी—अपने किशन प्रसाद के पास. और जब इसकी खबर निजाम को लगी तो वे एक बार फिर मुस्कराये 'शाबाश गौसिया मैंने पहली बार दरे इश्क पर हुस्न को सर झुकाते हुए देखा है.'

और उन्होंने फौरन ही गौसिया के चचा को बुलवाया. उनके साथ एक काजी भेजते हुए हुक्म दिया 'जाओ, गौसिया का निकाह मेरे हिंदू दीवान और दोस्त के साथ पढ़वा दो. और दीवान से कहना कि शादी के बाद मैं दावत खाने आ रहा हूं.' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद

आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकार प्रेमचंद विश्व के उन बहुत कम रचनाकारों में एक हैं जिनका विश्व की सभी भाषाओं में समान रूप से सम्मान होता है. कहानीकार के रूप में प्रेमचंद शोधार्थियों के लिए आकर्षण का विषय इसलिए अधिक रहे हैं कि उर्दू और हिंदी दोनों ही भाषाओं में उन्होंने कहानियां लिखीं. हिंदी में अब तक अनुपलब्ध उनकी कुछ रचनाएं प्रेमचंद-साहित्य के विशेषज्ञ डा. कमल किशोर गोयनका ने 'सारिका' के लिए खास तौर पर जुटायी हैं. प्रेमचंद के पुण्यतिथि माह के अवसर पर प्रस्तुत है कथा-रचना 'दरवाजा' और एक दुर्लभ लेख जो तात्स्ताय के उपन्यास 'अन्ना' पर आधारित है.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

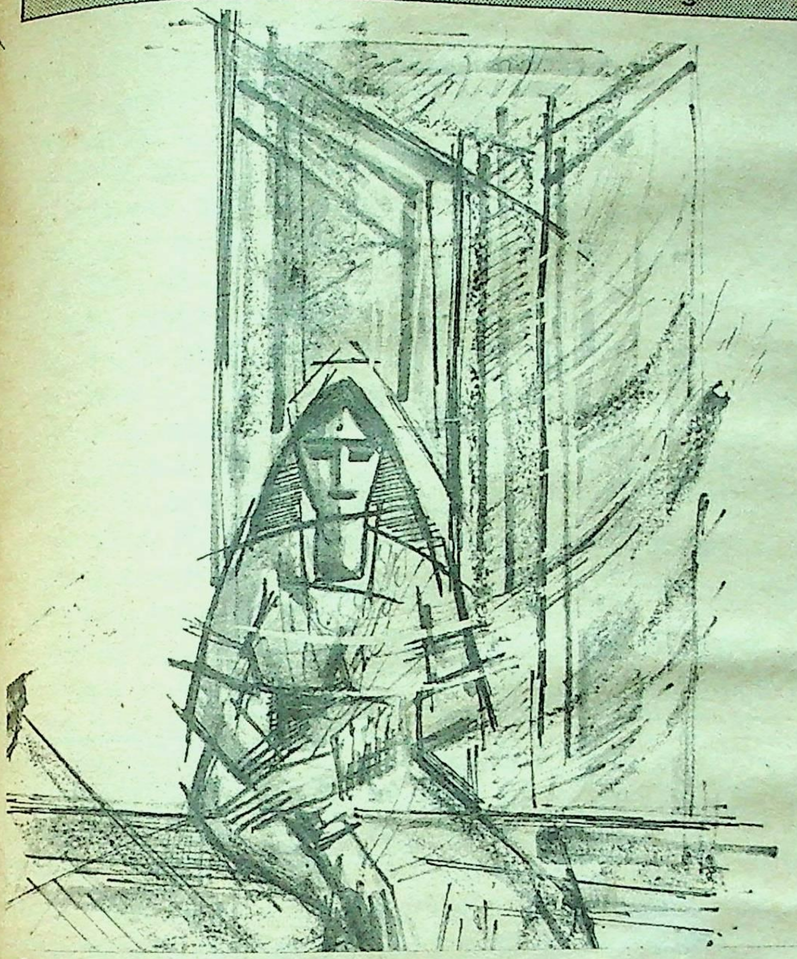

दरवाजा

मेरी जान हमेशा आफत में रहती है. अव्वल तो घर के लड़के दम नहीं लेने देते. मेरे दोनों पट्टों को जोर से टकराना उनका खेल है. मेरी पसलियां चूर हो जाती हैं. दूसरे हवा के तेज झोंके और भी बलाये जां इस बेरहमी से मुझे जेरोजबर (अस्त-व्यस्त) करते हैं कि अलामान (परमात्मा खैर करे). इस पर तुर्रा ये कि मेरी फुगाने दर्द (दुःखभरी चीख) पर साहबेखाना (गृहस्वामी) को भी तरस नहीं आता. वह उल्टे मुझी पर नाराज होते हैं. मैं घर का राजदार हूं और जाहिरदारी (दिखावा) को निभाना मेरा काम है. अक्सर घर में साहबेखाना के मौजूद होने पर भी मुझे बंद कर दिया जाता है. खासकर किसी चंदे की वसूलियां, बजाज के तकाजे के दिन मुझे बंद कर दिया जाता है और वे अपना-सा मुंह लेकर लौट जाते हैं. मैं सीनासिपर (छाती. तानकर) अपने आका को नकामत (लज्जा) और हीलासाजी (चालबाजी) से बचा लेता हूं. मगर पिछले दिनों जब मुझे बंद देखकर डाकिया मनीआर्डर वापिस ले गया तो साहबेखाना मुझी को कोसने लगे. मेरी नेकियों का नाम कोई भी नहीं लेता. मगर बुराइयों पर सबके सब बरहम (क्रोधित) हो जाते हैं.

जमाने का अजब ढंग है. मुझे अपने फराहिजे मंसबी (कर्त्तव्यों का पालन) देने में कितनी गालियां खानी पड़ती हैं. मुझे बंद पाकर लुक्माये लजीज (स्वादिष्ट भोजन) की ख्वाहिश से बेताब कुत्ते कितने बरहम (क्रुद्ध) हो जाते हैं और कितने मायूस, और चोर तो मेरी जान के गाहक हैं. कभी बग़ली घूसे मारते हैं, कभी चूल खिसका देते हैं. कभी कुछ हत्ता (यथा) के गदागरों (भिखारियों) को भी मुझसे बुग्ज (अप्रकट द्वेष) है. मुझे बंद पाकर कोसते हैं और नाकाम वापिस लौट जाते हैं.

आह! उम्रे रफ्ता (व्यतीत आयु) की याद कितनी हसरतनाक (दुःखपूर्ण) है? मैंने कभी अच्छे दिन देखे हैं. वह दिन नहीं भूलता, जब मालिका नयी-नवेली दुल्हन बनी, गहनों से लदी, शर्म से सर झुकाये पालकी से उतरी थीं, उस वक्त पहले मैंने ही उनके रुखरोशन (मुख-दीप्ति) का नजारा किया था और उनके कमल के से नाजुक पैरों का बोसा लिया था. एक रोज जब बाबूजी शाम को किसी वजह से घर नहीं आये तो इंतजार में बैठे-बैठे उकताकर वह नवेली दुल्हन हया से गर्दन झुकाये दीवारों से लजाती मेरी गोद में आकर खड़ी हो गयी और कितनी देर तक मेरे पहलुओं में लिपटी हुई सामने के वसीह मैदान की तरफ ताकती रही. उसके दिल में उस वक्त कैसी धड़क थी और आंखों में कितना फिकर आमेज इश्तियाक (चिंतापूर्ण उत्कंठा). बाबू साहब को आड़े से आते देखकर वह किस तरह खुशी से उमड़ी हुई जल्दी से घर में चली गयी, यह पुरमजा (आनंदपूर्ण) बातें कभी भूल सकती हैं. बाबूजी ज्यूं-ज्यूं बूढ़े होते जाते हैं, उन्हें मुझसे उनस होता जाता है. अब वह अक्सर मेरे पहलुओं में बैठे रहते हैं, शायद उन्हें मेरी जुदाई का गम सताया करता है. अभी जब वह बीमार थे तो मालिकन कितनी बार मुझसे लिपट-लिपटकर रोयी थीं. मालूम नहीं क्यों?

इस घर में कौन कदम रखेगा, अगर उसे मालूम हो जाये कि उसे कभी यहां से जाने का अख्तयार नहीं है. मैं घर और बाहर के बीच की कड़ी हूं. बाहर कितना वसीह (विस्तृत) मैदान है. कैसे सुहाने सब्जाजार (हरियाली ही हरियाली), कैसी मुस्कराती हुई आबादियां, कितनी वसीह दुनिया. घर महदूद है, बाहर की कोई इंतहा नहीं. महदूद (सीमित) और गैरमहदूद (असीमित) के दरमियान रिश्ता ए इत्तिसाल (मिलन का संबंध) हूं. कतरे को बहर से मिलाना मेरा काम है. मैं एक किश्ती हूं, फना (मृत्यु) से बका (जीवन) को ले जाने के लिए. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ना की भूमिका

तालस्तोय के विश्व प्रसिद्ध उपन्यास का पहला हिंदी अनुवाद पं. छविनाथ पांडेय ने किया था और उसे विनोदशंकर व्यास ने अपने प्रकाशन संस्थान पुस्तक मंदिर, काशी से सन् 1933 में प्रकाशित किया था. अब यह अनुवाद अनुपलब्ध है, पर यह सच है कि प्रेमचंद इस अनुवाद से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने इस अनुवाद की भूमिका लिखी थी. प्रेमचंद ने लगभग 1913 में 'अन्ना' उपन्यास अंग्रेजी में पढ़ा था और वे चाहते थे कि वह हिंदी पाठकों को भी उपलब्ध हो सके. जब पं. छविनाथ पांडेय ने इसका अनुवाद किया और इसकी भूमिका लिखने का आग्रह किया तो उन्होंने सहर्ष इसकी भूमिका लिखी. यह अनुपलब्ध भूमिका यहां प्रस्तुत है. पाठक देखेंगे कि प्रेमचंद कितने तटस्थता एवं ईमानदारी से तालस्तोय एवं 'अन्ना' का मूल्यांकन करते हैं. प्रेमचंद रूसी साहित्य से प्रभावित ही नहीं थे, संसार के श्रेष्ठ साहित्य में भी उसकी गणना करते थे.

अद्भुत रचना-शक्ति के धनी : तालस्तोय

प्रेमचंद

तुर्गनेव ने एक बार काउंट तालस्तोय के विषय में अपनी स्वाभाविक उदारता के साथ कहा था, "मैं उनकी तुलना में क्या हूं? समकालीन योरोपियन साहित्य में उनका कोई जोड़ नहीं. उनकी कलम में यह जादू है कि वह जो लिखते हैं, वह जैसे जी उठता है. और उनकी रचना-शक्ति का क्षेत्र कितना विराट है. उसे देखकर आश्चर्य होता है."

और इस कथन में रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नहीं है. तालस्तोय की रचना-शक्ति अद्भुत थी, कल्पना-शक्ति अलौकिक थी, जीवन का ऐसा कोई विभाग, ऐसा कोई अंग नहीं है, जिस पर उसकी तेज आंखें न पड़ी हों. और उसके मस्तिष्क में जो चीज एक बार पहुंच जाती थी, वह आलौकिक हो जाती थी. ऊंची से ऊंची या निकृष्ट से निकृष्ट सोसाइटी का चित्रण वह समान बारीकी और सच्चाई के साथ करता है. आपको कहीं कोई अस्वाभाविकता, कहीं कोई अनाड़ीपन न मिलेगा. अमीरों के नाच और दावतों में, सैनिकों की छावनियों और गरीबों की झोपड़ियों में, ऐयाशों के विलास और विहार में, त्यागियों की साधना और संयम में कहीं भी बंद नहीं है. कभी भी वह अजनबी नहीं है, कहीं भी वह भटकता नहीं, और मानव चरित्र का ऐसा वैचित्र्य तो आपको साहित्य में कहीं मिल ही नहीं सकता. उस 'वार एंड पीस' को ही लीजिए. हजारों चरित्र आये हैं, सब अपने व्यक्तित्व के साथ. बड़े से बड़ा वीर, बड़े से बड़ा कायर, सज्जन, दुर्जन, लुच्चे, शोहदे. साधु, सज्जन सभी उसकी कलम के नीचे आकर सजीव हो जाते हैं, बोलने लगते हैं. आपको उनसे इतनी दिलचस्पी हो जाती है, मानो वे आपके घनिष्ठ हों, आप सम्मोहित हो जाते हैं. उनकी पहली पुस्तक 1852 में और आखिरी पुस्तक 1910 में छपी. इस साठ वर्ष के साहित्यिक जीवन में उन्होंने क्या कुछ नहीं लिखा? उपन्यास, गल्प, आलोचना, ड्रामे, राजनीति, जीवन चरित्र सभी लिखा और जो कुछ लिखा, उस पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगा दी. और हम उनकी रचनाओं में उनकी मनुष्यता का विकास स्पष्ट रूप से देखते हैं. क्रांति उनके रक्त में थी. वही क्रांति की भावना, उनकी रचनाओं की प्रेरक थी.

कुछ लोगों के संस्कार ऐसे होते हैं कि होश संभालते ही उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं. बुद्ध, शंकर, दयानंद, इसी श्रेणी के मनुष्यों में है. कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें साधना और तप से ज्ञान प्राप्त करना होता है. तालस्तोय इसी श्रेणी के मनुष्य थे. उनका ज्ञान, उनकी सेवा, उनका वैराग्य, संदेहों और विचारों और मानसिक द्वंद्व से होती है. तालस्तोय कभी इस द्वंद्व से खाली नहीं रहे. वह समय ही क्रांति का था. फ्रांस की क्रांति की ध्वनि उस वक्त तक हवा में गूंज रही थी. छात्रावस्था से ही तालस्तोय में नैतिक उत्थान की भावना प्रबल थी और इसके साथ ही नैतिक पतन का बीज अहंकार भी था. वह मान भी चाहता था, मनुष्यों पर अधिकार भी चाहता था. पर इसके साथ ही मानसिक निर्मलता और विनय की प्रबल आकांक्षा भी रखता था. और उसकी महत्ता का रहस्य यही मानसिक द्वंद्व था. जीवन के प्रलोभनों से वह सदैव भागना चाहता था. बार-बार प्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था कि भविष्य में सदाचार का पालन करूंगा. लेकिन इच्छा बार-बार प्रतिज्ञा को तोड़ने पर मजबूर कर देती थी और वह फिर नये सिरे से प्रतिज्ञा करता था. युवावस्था में ही उसकी आत्मा, धर्म और समाज और राष्ट्रीयता के मिथ्या, घातक, स्वार्थमय व्यापारों से विद्रोह करने लगी थी. धर्म में सेवा और त्याग और उपकार का भाव गायब होकर केवल अंध विश्वास और स्वार्थ-लिप्सा रह गयी थी. उसे मनुष्य के ऐहिक जीवन की परवाह न थी. वह केवल परलोक सुधारने का बीड़ा लिए हुए थे. मसीह ने जीवन का जो आदर्श सामने रखा था, उसका वह नये सिरे से उद्धार करना चाहता था. समाज में ऊंच-नीच का भेद, उस मातृभाव का अभाव, जो ईसा के उपदेशों का मूल तत्व था, और जिसने मुट्ठी भर धनियों और अधिकारियों को सारी जाति के भाग्य का विधाता बना दिया था, उसके लिए असह्य था. उसके विचार में उपजीवी वर्ग समाज का सबसे बड़ा शत्रु था. इस विषय में उनके विचार संपूर्णतः सोशलिस्ट थे. जो स्वयं शारीरिक शस्त्र से अपनी जीविका न प्राप्त कर सके, उसके लिये ताल्स्तोय की समाज-व्यवस्था में कोई स्थान न था. कलाकार और लेखक, वकील और डाक्टर, यह सब उनके विचार में समाज के अनावश्यक अंग थे. एक जुलाहे का, मोची का, लोहार का मूल्यक समाज में वकील या कलाकार से कहीं अधिक था. मोची या लोहार या जुलाहा मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं उनके न रहने से समाज को कष्ट होगा. चित्रकारों के मिट जाने से समाज को काई कष्ट होने की संभावना न थी. कला को भी वह सर्वग्राह्य बनाना चाहते थे. जिस कला का आनंद थोड़े-से शिक्षित लोग ही उठा सकें, यह उनके विचार में कला ही न थी. कला में मनुष्य-मात्र के हृदय पर असर, शक्ति न हो, तो वह समय और धन का अपव्यय है. इस दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्होंने स्वयं कई कहानियां लिखीं और उनकी जिन पुस्तकों में मानव हृदय का चित्रण मात्र था बाद में उनकी निंदा की.

आज भी संसार राष्ट्रों के संघर्ष की समस्या को हल करने का विफल प्रयत्न कर रहा है. आज भी इसी उद्देश्य से लड़ाइयों की भीषणता चित्रित की जा सकती है. उनका मनुष्य की मानसिक, बौद्धिक और चारित्रिक प्रवृत्तियों पर क्या

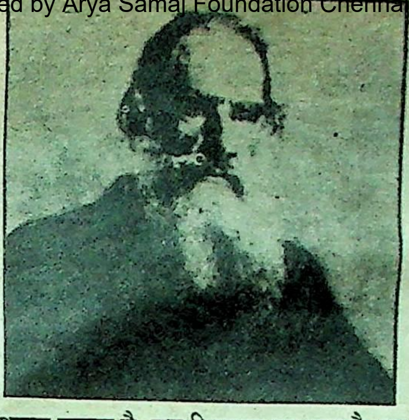

असर पड़ता है, यह दिखाया जा रहा है, पर इस विषय का जितना सुंदर, मार्मिक, यथार्थ चित्रण ताल्स्तोय ने किया है वह और किसी ने शायद ही किया हो. स्वयं पहले फौज में नौकर हुए और सेबास्टोपोल की लड़ाई में भी शरीक हुए, पर उन्हें बहुत जल्द इस हत्याकारी व्यापार से घृणा हो गयी. यहां उन्हें फौजी अफसरों के मनोभावों को अध्ययन करने का जो असवर मिला, वह शायद कहीं न मिलता. 'वार एंड पीस' के बाद ताल्स्तोय ने 'अन्ना करे निन' की रचना की और हमारे विचार में उनकी रचनाओं में इसका स्थान अगर कम है, तो 'वार एंड पीस' से हो. और वह भी केवल इस दृष्टि से कि इसका क्षेत्र उतना फैला हुआ नहीं है. लेकिन फैलाव में जो कमी है, वह उसकी गहराई ने पूरी कर दी है. 'अन्ना' ताल्स्तोय की सृष्टि में ही नहीं, संसार साहित्य की सृष्टि में बेजोड़ है, अद्वितीय है. इंग्लैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार मेरेडिथ का कथन है कि "अन्ना उपन्यास संसार का सबसे संपूर्ण और सजीव स्त्री पात्र है." इस रचना में ताल्स्तोय ने सामाजिक समस्याओं को ऐसा वास्तविक, ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, मन के गुप्त से गुप्त रहस्यों पर ऐसा प्रकाश डाला है कि उसे पढ़कर हम आश्चर्य चकित हो जाते हैं. पुस्तक का पहला ही वाक्य इतना गहरा और भावपूर्ण है कि हमारे ऊपर जादू का-सा असर हो जाता है. ऐसा जान पड़ता है, वह सारे दृश्य हमारी आंखों के सामने हो रहे हैं, मानो हम दूरबीन लगाये सब कुछ देख रहे हैं. ऐसा कोई स्थल नहीं है, जहां चतुर कलाकार को भ्रम या कठिनाई का सामना करना पड़ा हो. वह स्त्री का चित्रण पुरुष की आंखों नहीं, स्त्री की आंखों से करता है. एक स्त्री दूसरी स्त्री के विषय में कैसे भाव रखती है, स्त्री के मनोभाव में कैसे परिवर्तन होते हैं, वह पुरुष की किन बातों से दुखित होती है, और एक ही परिस्थिति, भिन्न-भिन्न स्त्रियों पर क्या भिन्न-भिन्न प्रभाव डालती है, इसका दिग्दर्शन ताल्स्तोय से उत्तम शायद ही किसी ने किया हो. ऐसा जान पड़ता है, उसके पास कोई ऐसा गुप्त साधन है, जिससे मन में उठने वाले भावों को खुली किताब की तरह पढ़ लेता है.

अन्ना विलासिनी स्त्री है जो पुरुष का संपूर्ण हृदय पाकर प्रसन्न हो सकती है. उसका पति शीतल प्रकृति का मनुष्य है, जिसके लिये स्त्री केवल गृह स्वामिनी है. वह राजनीति में इतना व्यस्त रहता है कि अन्ना समझती है, उसे उससे प्रेम नहीं है. वह रंकी की ओर आकर्षित हो जाती है, लेकिन वह माता हो चुकी है और बालक का प्यार उसे बेचैन करता रहता है और अंत में उसकी वही अधिकार लालसा उसकी आत्महत्या का कारण बन जाती है. रूसी साहित्य में अन्ना एक पहेली है और उसको समझने-समझाने की बहुतों ने कोशिश की है. कुछ लोगों का ख्याल है कि अन्ना का अंत ताल्स्तोय की दंड भावना का परिचायक है. उस का आदर्शवाद, ऐसी स्त्री का पश्चातापपूर्ण अंत दिखाये बगैर संतुष्ट न हो सकता था. कुछ लोगों का कहना है कि वह सामाजिक चित्रण है. पति-व्रता स्त्री भी मानसिक विफलता से आत्म हत्या कर सकती है. पुस्तक में 'डाली' का चरित्र बहुत ही सुंदर है, जो गृहस्थी के जंजाल, बच्चों के पालन-पोषण और पति के व्यभिचार से दुखी रह कर भी संतुष्ट है. पर ऐसी स्त्री के मन में भी कभी-कभी अन्ना के विलास और यौवन को देखकर एक प्रकार की लालसा आये बिना नहीं रहती. लेविन के चरित्र में कदाचित टाल्सटाय ने अपना ही चित्र खींचा है. इन्हीं दिनों देहात सुधार की ओर उनका झुकाव हो रहा था.

मैंने आज लगभग 20 साल हुए, जब यह पुस्तक पढ़ी थी. जो कुछ याद था, उसी के आधार पर मैंने ये दो शब्द लिखे हैं. पढ़ते समय मेरे मन में यह इच्छा हुई कि इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद हो सकता, तो बड़ी अच्छी बात होती. हर्ष की बात है कि आज श्री छविनाथ जी और विनोदशंकर जी व्यास के सहयोग से मेरी वह इच्छा पूर्ण हुई. □

(अन्ना : मूल लेखक तालस्तोय, अनुवादक—पं. छविनाथ पांडेय, प्रकाशक-पुस्तक मंदिर, काशी प्रथम संस्करण 1933)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन लेखन की एक बानगी

प्रभाकर श्रोत्रिय

तीन युवा कथाकारों—बलराम, राजकुमार गौतम और धीरेंद्र अस्थाना का समवेत संकलन 'सामना' समकालीन रचना-मानस की कुछ झलक देता है. यों, तीन कहानी के आधार पर किसी भी लेखक के बारे में, खासकर उस लेखक के बारे में जो अन्वेषण और संभावना के दौर से गुजर रहा हो, कुछ भी प्रामाणिक कह पाना संभव नहीं है, परंतु ये तीनों एक अर्से से परिचित हैं, इसलिए इन कहानियों के पीछे इन्हें व्यक्त करती अन्य कहानियां भी हैं.

बलराम की तीन कहानियां यहां हैं— 'सामना', 'निर्वासन' और 'अभिलाषा'. 'सामना' में सोमनाथ अपने जैसे खस्ताहाल दोस्त शंभू के द्वारा नौकरी दिलाने के लालच और सहज विश्वास में उसकी गिरफ्त में फंसता चला जाता है जो अंत में उसके एक हजार रुपए लेकर चंपत हो जाता है. सारे प्रसंग विवरण और प्रक्रिया यद्यपि बहुत सधी हुई और विश्वसनीय है— जैसे मशीन में फंसे एक पैर को निकालने के लिए कोई बाकी हिस्से भी उसमें फंसाता चले, इस कदर कि अंत में जीवन से ही हाथ धो बैठे! फिर भी यह कहानी, इसी तरह की पचासों कहानियों जैसी साधारण बनकर रह जाती, अगर उसमें एक अंतिम स्पर्श नहीं होता. शंभू से ठगे जाने के बाद सोमनाथ पराजित, संतप्त और अपराध-भावना से ग्रस्त होकर अपने गांव—घर पहुंचता है. वह साल भर खाने के लिए रखा अनाज, नौकरी के खातिर बिकवाकर पैसा देने और नौकरी पाने बाहर गया था. हताश स्थिति में वह कुछ कह भी नहीं पाता कि घर वाले अपने सहज विश्वास के कारण समझ लेते हैं कि वह नौकरी पाकर लौटा है. सारा घर उत्साह और आनंद से भर उठता है. मां असीसती है और बहन देवी मां को प्रसाद चढ़ाकर पूरे गांव में बांटने को दौड़ पड़ती है. पात्रों के लिए परस्पर अनखुले, मगर पाठक के सामने खुले पहलुओं के कारण त्रासदी और विश्वासघात की अमानवीयता घनीभूत हो उठती है. गांव और शहर के चरित्रों के बीच की खाई ज्यादा गहरी और और भयावह हो जाती है. प्रतिभा का यह स्पर्श पूरी कहानी की साधारणतया को विशिष्टता में बदल देता है.

एक तो यह अंत है जो कहानी को पचासों कहानियों से अलग खड़ा कर देता है; लेकिन एक अंत वह भी है जो पूरी कहानी की विशिष्टता को भोंथरा बना देता है. इसका उदाहरण भी यहीं, दूसरी कहानी 'निर्वासन' में मौजूद है, जो बलराम की विशिष्ट कहानी है— कथ्य, संरचना, चरित्रांकन, मनोविज्ञान, परिवेश सभी दृष्टियों से. परंतु अंत ने इस कहानी का कद छोटा कर दिया है. पूरे प्रसंग का बलराम ने अत्यंत रोमांचक और दारुण वर्णन किया है, वह अपूर्व है.

परंतु अंत में बलराम ने युवा सत्ती के साथ अजयप्रकाश का क्रूर बर्ताव, उसे विरासत से वंचित करने की घोषणा आदि का ब्यौरा देकर इस कहानी की धार को कुंठित कर दिया, और शिखर पर चढ़ी कहानी को बेवजह लुढ़का दिया. वह तो पूरी संरचना, एक सधा हुआ वर्णन, चरित्रांकन, कथ्य और मनोविज्ञान की जीवंतता, सार्थक बुनावट, मुर्री-का दारूण प्रसंग और सोद्देश्यता थी, जिसने कहानी को फिर भी लुढ़कने नहीं दिया. तीसरी कहानी 'अभिलाषा' लघुकथा है जो अक्सर वेदना और निराशा में बुझी बलराम की कहानियों से हटकर है. यहां नयी पीढ़ी की समझ, आत्म-निर्भरता और आत्म विश्वास को थोड़े में अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है. बलराम की सामान्य विशेषता यानी सहजता और अनलंकृतता में सर्जनात्मकता इन कहानियों में भी है.

राजकुमार गौतम की तीन कहानियां हैं— 'आक्रमण', 'आदमी आत्महत्या करेगा' और 'एक प्रयोगिक हत्या'. राजकुमार की कहानियों में पहले भी मैंने अनुभव किया था कि वे घटना या संवेदना से विचार निथारने की अपेक्षा विचार-केंद्र से घटना और संवेदना निचोड़ने की कोशिश करते हैं जो कथा के स्वभाव के प्रतिकूल है. नतीजे में या तो घटना औपचारिक हो जाती है या अनुपस्थित. (घटना यानी स्थूल घटना नहीं; चरित्र, बिंब, कार्यव्यापार, स्थिति आदि) मुझे लगता है (वह गलत भी हो सकता है, पर लगता है) कि राजकुमार का मूल व्यक्तित्व निबंधकार और आलोचक का है. इसीलिए कहानी लिखते हुए भी वे विचारपरक और संजीदा बने रहते हैं. इतनी संजीदगी कथा सर्जक के मन से ज्यादा ही है! लगता है गौतम के पास 'कथ्य' विचार के रूप में आता है घटना या बिंब के रूप में नहीं (इसलिए भाषा का वे रचना-भाषा में कम रूपांतरण कर पाते हैं). इसी का नतीजा है कि वे 'आदमी आत्महत्या करेगा' जैसी कथित कहानी लिखते हैं, जो आदमी के अकेलेपन को तरह-तरह से विचार की शक्ल में प्रस्तुत करती है; और जब अपने व्यक्तित्व-मूल से विचलित होने की कोशिश करते हैं तो 'एक प्रायोगिक हत्या' जैसी अतिरंजित कहानी लिखते हैं! जिसके नाम अस्पताल का बेड अलाट हो, एक्सरे और आपरेशन होने वाला हो, वह युवती 'भाई' के साथ अस्पताल के बाहर होटलों में ऐसे घूमती, खाना खाती है गोया ये लोग पिकनिक मना रहे हों! मूल कथ्य से भटक कर 'भाई'-'बहिन' का संदिग्ध मामला उठाना, या रात सोने के लिए भटकते हुए परिचितों की बखिया उधेड़ना वगैरह ऐसा है जो केंद्रीय समस्या से पाठक का ध्यान हटाता है. लेखक यह बात गले नहीं उतार पाया कि जब एक्सरे वगैरह में कुछ नहीं निकला था तो नाहक डॉक्टर ने ऑपरेशन की जिद क्यों की? वे लोग पैसे वाले भी नहीं थे, जिनसे इस बहाने कुछ झटका जा सकता था! अस्पताल में ऐसा हो सकता है, पर असल मुद्दा यह नहीं है; वह है लेखक द्वारा सच की प्रतीति कराना.

लेकिन जहां राजकुमार अपनी निबंधपरक आत्मा को कथाकार के स्वभाव में समोते हैं, वहां वे नवें दशक की प्रतिनिधि रचना-प्रवृत्ति के साथ खड़े होते हैं और कुल मिलाकर दोनों साथी कलाकारों के पीछे से निकल कर आगे पहुंच जाते हैं. 'आक्रमण' ऐसी ही कहानी है जिसकी प्रमुख-विशेषता है आवेगहीन, आत्म-परता के भीतर सर्जनात्मक धैर्य और संजीदगी से, सशक्त कथा रचना. नवें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशक का यह विशिष्ट कथा-चरित्र है जो पिछले दशक से उसे अलग करता है. परी कहानी लेखक ने इतने सलीके से, बिना कथ्यात्मक विचलन के, आत्म-निरपेक्ष शिल्प में रची है, गोया वह इस कथा का भोक्ता न होकर प्रेक्षक हो; या ऐसा समाचार वाचक जो एक ही स्वर और भाव से मौत, युद्ध और दीपावली के त्यौहार की खबरें पढ़ता है. लेकिन प्रभाव के स्तर पर पाठक व्याकुल हो उठता है, भाई सा. के प्रति उसमें हिकारत और गुस्सा तथा युवक के प्रति कोफ्त, झुंझलाहट पैदा होती है. बूर्ज्वा मानसिकता, काइयांपन, स्वार्थपरता, मसखरापन आदि के प्रति पाठक में गुस्सा और घृणा आपो-आप रिसती है. एक अच्छी कहानी को प्रभाव के स्तर पर और क्या पाना होता है?

काले चश्मे में से झांकती धीरेंद्र अस्थाना की अय्यार और जादूगर आंखें ही मानो उनकी कहानी रचती हैं. इस संग्रह में उनकी लंबी कहानी 'खुल जा सिमसिम' और दो छोटी कहानियां— 'और आदमी रोया' तथा 'किस्सा एक त्रासद फंतासी का'— यथानाम तथा रूप हैं. धीरेंद्र की कहानी के केंद्र में 'रोचकता' है, वही उनके कथ्य और शिल्प को संचालित करती है.

संपूर्ण सर्जना का रहस्य है रूप को छिपाकर कथ्य को प्रकट करना, तभी रूप भीं द्विपदिपाता है. जादूगरी और अय्यारी के सारे सरंजामों के साथ अभिव्यक्ति विस्मयकारी मार्ग क्यों चुना होगा धीरेंद्र ने? क्या इसलिए कि समाज परक, यथार्थ रचनाओं में ठहरा हुआ शिल्प उन्हें बेहद खफा कर गया? क्या इसलिए कि पारंपरिक अनुभव और संबंधों के बचे हुए संस्कार को वे किसी विस्फोट के जरिए उड़ा कर उसका जर्रा-जर्रा बिखेरना चाहते हैं? क्या यथार्थ की दुनिया को विस्मय की दुनिया में प्रतिस्थापित कर वे पाठक को एक अलग तरह का झटका देना चाहते हैं? या सिर्फ इसलिए कि अलग, चर्चित, लोकप्रिय या विवादास्पद बनें? मेरा ख्याल है कि एक प्रखर, संवेदनशील नए लेखक को जो रचना के मकसद को तरजीह देता हो, जिसके पास एक धारदार भाषा हो, रचने की क्षमता हो— ये उद्देश्य ज्यादा दिन तक जिंदा नहीं रख सकेंगे!

यहां संग्रहीत तीन कहानियों में दो तो छोटी कहानियां हैं— 'और आदमी रोया' तथा 'किस्सा एक त्रासद फंतासी का' शिल्प यहां भी बहुत आक्रामक है, परंतु इसके पीछे व्यक्तिगत और सामाजिक

प्राचीन भारतीय संस्कृति की पहचान

"सामाजिक परंपरा से प्राप्त संस्कार और व्यवहार. संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत और समृद्ध बनाती है, अथवा संस्कृति चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं हैं, जो मानव जीवन और मानव-व्यक्तित्व के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाती हैं." 'संस्कृति' पर यह टिप्पणी डा. हरदेव बाहरी ने हाल ही में प्रकाशित अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ—'प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश' में की है. अपनी तरह का यह पहला कोश है जिसमें वैदिक काल से 12 वीं शताब्दी तक की भारतीय संस्कृति के बिखेर पड़े मूल स्वरों का संचित करने का एक अद्भुत प्रयास किया गया है. कोशकार डा. हरदेव बाहरी वैदिक काल की संस्कृति को मूल (भारतीय) और बहुमूल्य धरोहर के रूप में देखते हैं. उनका कहना है कि रामायण काल से लेकर पौराणिक काल तक, विशेषतः गुप्त राजाओं के राज्यकाल में भारतीय संस्कृति पर गहरे प्रभाव पड़े. यह वह समय था जब वैदिक देवता बदले, पूजन-विधियां बदलीं... और न केवल विष्णु के, वरन् अनेक देवताओं, नागों और राक्षसों तक के अवतार माने जाने लगे. साहित्य और कला भी अप्रभावित न रहे. बाहर से आने वाली अनेक जातियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था. बावजूद इसके, भारतीय संस्कृति की मूल धारा का निजी प्रवाह बना रहा.

मुझे लगता है, इस दृष्टि से डा. बाहरी की इस बात से सभी सहमत होंगे कि भारतीय संस्कृति के इतिहास में बारहवीं शताब्दी तक का काल प्राचीन काल माना जाना चाहिए क्योंकि इसके बाद यह कहा जा सकना संभव नहीं है कि भारतीय संस्कृति अपने मौलिक स्वरूप को बनाये रख सकी. यह एक ऐतिहासिक सत्य है, जिसे इतिहास की जानकार आंखें सहज ही स्वीकार करेंगी... क्योंकि इस्लाम और पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते प्रभाव के आगे उक्त मौलिकता का बना रह सकना लगभग असंभव ही था. बहरहाल, यह कोश समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, पर्व, कला, संगीत, साहित्य और तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान पर लगभग बीस हजार प्रविष्टियों को हमारे सामने रखता है. विषय को आगे बढ़ाने की दृष्टि से भी इस कोश में किये गये कई प्रयोग उल्लेखनीय हैं. उदाहरण के लिए 'संस्कृति' पर की गयी टिप्पणी के बाद कोशकार को यह जरूरी लगता है कि संस्कृति के अंगों पर भी ध्यान दिया जाए. अतः वे स्पष्ट करते हैं कि संस्कृति के आठ अंग होते हैं—मानवी परिश्रम, शासन संस्था, नीति, धर्म, शास्त्र, तत्वज्ञान, वाङ्गमय और कला. इसके तुरंत बाद संस्कृति के प्रतीकों का विवरण आता है. संस्कृति को पांच प्रतीक, डा. बाहरी के अनुसार हैं—दीप—ज्ञान प्रतीक, कमल—जन्म स्थान प्रतीक, वटवृक्ष—औदार्य प्रतीक, स्वस्तिक—कल्याण प्रतीक, ॐ—ध्वनि उद्गम का प्रतीक. संस्कृति, संस्कृति के अंग और फिर संस्कृति के प्रतीकों के बाद कोशकार संस्कृति के प्राण—विचार, भावना, कल्पना, कला और नीति का संकेत देने के साथ-साथ पुरुषार्थ के अनुसार भारतीय संस्कृति के पांच—वेद, उपनिषद, श्रीमदभगवतगीता, रामायण और महाभारत को भी नहीं छोड़ता. यह उसकी वैज्ञानिक और ऐतिहासिक समझ का परिणाम है.

युद्ध से उत्पन्न क्षत्रिय वंश 'हैहय' हो या देवासुर संग्राम के समय समुद्रमंथन से निकले चौदह रत्नों में से एक रत्न—'हलाहल', मध्य प्रदेश की रियासत बिजावर में एक गांव 'सेंदप्पा' हो या पाणिनि द्वारा प्रयुक्त एक विकरण— 'शप' जो भ्वादिगण में प्रयुक्त होता है, यक्षप्रश्न की संदर्भकथा हो या राजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से एक — 'निमि', घोड़ों की वह जाति जो केवल देवताओं और गंधर्वों की सवारी रहती हैं— 'दानवज्र' हो या फलित ज्योतिष का शुभदायक योग— 'अमृत योग'... यह कोश पूरी गंभीरता से प्रायः समूचे प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों को प्रस्तुत करता है. □

—महेश दर्पण

प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश : डा हरदेव बाहरी, प्रकाशक : विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली-2 मूल्य : 225 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के तल्ख संकेत हैं— व्यंग्य तथा कथा की मिलीजुली शैली से रोचकता के बावजूद टूटे हुए, पराजित, मनुष्य की विस्थापित दुनिया का सपना और चाह है; छोटी विसंगति के भीतर से छूटी दूरगामी मिसाइलें-भी खोजी जा सकती हैं. परंतु लंबी (लगभग 35 पृष्ठों की) कहानी 'खुल जा सिमसिम' में तो तरह-तरह की चकाचौंध में पता ही नहीं चलता कि सिरा कहां है? (निर्मला जी से उधार जुमला) यह एक किस्म की प्रेम-कहानी है. कहां तो प्रेम का ऊंचा दर्शन, कहां आत्मा की गहराइयों में झांकने की बात; कहां अनुभूति को पर्त दर पर्त छील कर निकाले जाने वाले संकेत और कहां बाथरूम-संभोग में अंत! खतों ही खतों में कथा-प्रेमिका, कथाकार की प्रेमिका बन जाती है! और खत ऐसे जिनमें पंक्चुएशन नहीं. (जैसे इस कहानी और स्वयं 'प्रेमी' के जीवन में पंक्चुएशन हो) प्रेमिका लेखक से मिलने उसके शहर आती है, पांच सितारा होटल में ठहरती है और पति के साथ! पति से जैसा बर्ताव किया गया उसे देखते हुए उसे न लाना, क्या लाने से बुरा था? इधर प्रेमिका और पत्नी में पत्राचार! पत्नी जब अपने को समूचा बदलने को तैयार तब लेखक महोदय उसके प्रति अपने भावों तक में तब्दीली को तैयार नहीं! लेकिन जब प्रेमिका शादी को तैयार तो प्रेमी, पत्नी-बेटे को (खासकर बेटे को) छोड़ने को तैयार नहीं. प्रेमिका का सवाल कि क्या रखैल समझ रखा है? (कहानी की संरचना में वह रखैल से बेहतर है ही कहां? जब कहे तब हाजिर होगी) दोनों पति-पत्नी जारी, दोनों प्रेमी-प्रेमिका जारी! फ्री सेक्स! वहां संभोग में समाधि उतर आती है! मगर उसके साथ यह नतीजा भी निकालना था प्रेमी को, कि फाइव स्टार का खाना और वैसा बाथरूम अगर वह अपने घर में मुहैया कर सका होता तो— शायद प्रेम की ऐसी समाधि अवस्था पत्नी के साथ भी प्राप्त की जा सकती है!

हो सकता है कि कहानी के जरिए धीरेंद्र आधुनिक जीवन के रिश्तों के बारे में कुछ खास कहना चाहते हों (जो बीच बीच में दिखाई भी पड़ता है) परंतु तमाम तरह की मिलावटों, विसंगतियों और चकाचौंध के चलते (जिसमें बढ़िया जुमले, विचारपूर्ण उद्धरण, सात्विक आवेश वगैरह भी शामिल है) यह कहानी नए, तेज-तर्रार लेखक की कहानी की बजाए किसी सेठ की नवरस फिल्म बन गयी है. □

मराठी कवि कुसुमाग्रज को 23वां ज्ञानपीठ पुरस्कार

वर्ष 1987 के लिए डेढ़ लाख रुपये का 23वां पीठ पुरस्कार श्री पी.वी. नरसिंह राव की अध्यक्षता में हुई प्रवर परिषद की बैठक के उपरांत मराठी के सुप्रसिद्ध सहित्यकार वी.वी. शिखाडकर कुसुमाग्रज को देने की घोषणा पिछले दिनों की गयी.

ज्ञानपीठ पुरस्कार भारतीय साहित्यकार बी.वी. शिखाडकर ख्याति प्राप्त सम्मान है. यह पुरस्कार किसी भी भाषा में उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रतिवर्ष किसी भारतीय नागरिक को दिया जाता है. इस वर्ष यह पुरस्कार 1967-82 की अवधि में प्रकाशित साहित्य पर विचार करके दिया गया.

अन्य विधाओं में उल्लेखनीय उपलब्धियों के बावजूद कुसुमाग्रज मूलतः कवि और नाटककार हैं. स्वाधीनता संघर्ष के दौरान 1942 में प्रकाशित कविता संग्रह 'विशाखा' ने उन्हें रातोंरात प्रसिद्ध कर दिया. अनेक काव्य संग्रहों, नाटकों, कहानी संग्रहों, उपन्यासों, एकांकी संग्रहों, बालकहानी संग्रहों और आलोचनात्मक निबंधों के प्रणेता कुसुमाग्रज के इस अवधि में तीन महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए. इनके लेखन की विषय परिधि विस्तृत है. उनकी कविताएं समुद्र की लहरों के समान हैं जो धरती पर प्रवाहित होते हुए भी क्षितिज को छूती रहती हैं. उनकी रचनाओं में एक ओर आत्मकि निर्द्वंद्वता का संतोष है और दूसरी ओर अन्याय और विषमता के प्रति आक्रोश. लोक-मानस से अत्यंत निकटता उनके साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता है.

बी.वी. शिखाडकर 'कुसुमाग्रज' अपने उपनाम से अधिक लोकप्रिय हैं और आज के मराठी साहित्य जगत की सर्वाधिक प्रतिष्ठित हस्ती हैं. 1942 में प्रकाशित 'विशाखा' काव्य संग्रह की अनेक कविताओं में आपने स्वाधीनता संघर्ष की आत्मा को मुखरतापूर्वक अभिव्यक्त किया है. इस वर्ष ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (1967-82) में उनके तीन महत्वपूर्ण संग्रह प्रकाशित हुए हैं—वाडालवल, रशयात्रा और छंदोमयी.

कुसुमाग्रज की कविता आदर्शपरक आत्मा का उत्सव मनाती है जो जीवन में आलोक की खोज में रत है. वे सदैव अपने सहजनों के सामूहिक मस्तिष्क से एकाकार होने के लिए लालायित रहते हैं. उनका आदर्शवाद जीवन के अंधेरे और निराशापूर्ण पक्ष की अवहेलना नहीं करता, किंतु वह इस अंधकार पर विजय प्राप्त करनेवाली मानव शक्ति के प्रति आसक्ति पूर्वक सचेत हैं. इस प्रकार इनकी कविता गीतात्मक और चिंतनात्मक दोनों ही हैं.

कुसुमाग्रज के नाटक गडकरी की नाटकीय प्रस्तुतियों की काव्यात्मक शैली की परंपरा में हैं, तब भी ययाति, नटसम्राट आदि नाटक उनकी मौलिक प्रतिभा का प्रमाण हैं. वह वर्तमान में अतीत को ढूंढ निकालने या अतीत में वर्तमान को ढूंढ निकालने के लिए इतिहास अथवा पुराण का अन्वेषण नहीं करते. वरन् मनुष्य जीवन की शाश्वत विविधताओं को खोजने का प्रयास करते हैं. उनके नाटकों में भाषा का ओज और सौंदर्य एक महत्वपूर्ण तत्व है.

इस पुरस्कार की घोषणा के पूर्व यह पुरस्कार हिंदी और कन्नड को चार-चार बार, बांग्ला और मलयालम को तीन-तीन बार, गुजराती और उड़िया को दो-दो बार और असमिया, मराठी, तमिल, तेलुगु, पंजाबी तथा उर्दू को एक-एक बार प्राप्त हो चुका है. दो बार यह पुरस्कार दो-दो भाषाओं को एक साथ प्रदान किया गया है.

पुरस्कार के लिए लेखक चयन का दायित्व प्रवर परिषद का है. इस परिषद के सदस्य साहित्य जगत के ऐसे विद्वान व लेखक होते हैं जिनकी निष्ठा और निष्पक्षता निर्विवाद होती है. डा. राजेंद्र प्रसाद प्रवर परिषद के प्रथम अध्यक्ष थे.

इस पुरस्कार की प्रवर्तिका देश की अग्रणी साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठ है. स्व. साहू शांतिप्रसाद जैन और उनकी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती रमाजैन ने सन् 1944 में इस संस्था की स्थापना द्विमुखी उद्देश्यों से की थी. प्राचीन ज्ञान भंडार का प्रकाशन और आधुनिक भारतीय भाषाओं के समसामयिक महत्वपूर्ण साहित्य को प्रोत्साहन. □

बीथिका जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

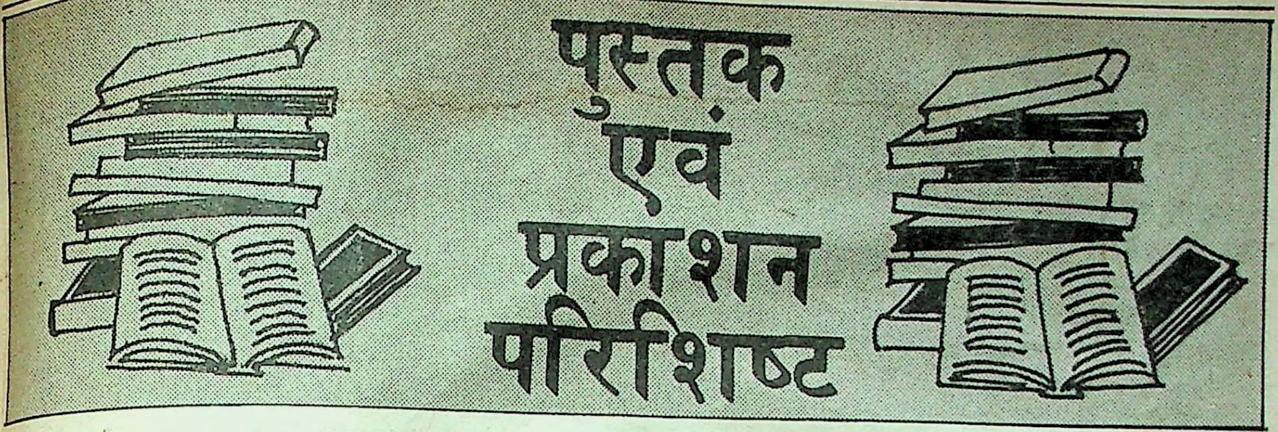

एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम देखें कि हमारा प्रकाशन-जगत किस दिशा की ओर अग्रसर है!

पुस्तकों से रिश्ता बढ़ रहा है

हिंदी प्रकाशन उद्योग एक अर्से से स्पष्टतः तीन खेमों में बंटा हुआ नजर आता है. साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक, पापुलर पुस्तकों के प्रकाशक और सरकारी प्रकाशन संस्थाएं. तीनों लगातार कई वर्षों से समानांतर काम कर रही हैं. आज जबकि जरूरत इन तीनों को एक करने की है, यह रहा है कि तीनों की दूरी निरंतर बढ़ रही है. सरकारी पुस्तकें या तो सरकारी लाइब्रेरियों की शोभा बढ़ा रही हैं, या गोदाम की.

इधर के कुछ वर्षों में डायमंड और अन्य प्रकाशकों ने जो महत्वपूर्ण साहित्य, वह भी किसी अन्य प्रकाशक से कम कीमत पर छाप कर जन-जन को सुलभ कराया है, उसने उनके विरोधियों के मुंह पर ताला जड़ दिया है!

हिंदी से जो लोकप्रिय उपन्यास लिखे जाते हैं उनमें भारत के स्वतंत्रता संग्राम और सशस्त्र क्रांतिकारियों पर दर्जनों मोटे-मोटे काल्पनिक उपन्यास लिखे गये हैं. ये उपन्यास कई सवाल उठाते हैं. जैसे कि इन उपन्यासों का तिरस्कार करके क्या हम सही काम कर रहे हैं? एक बहुत बड़े वर्ग की छपे हुए शब्द के प्रति जबरदस्त भूख का अनादर करना कहां तक उचित है? साफ जाहिर है कि लोग स्वतंत्रता संग्राम के बारे पढ़ना चाहते हैं और उन्हें लगातार गलत सूचनाएं दी जा रही हैं.

हमारे यहां रोमांटिक कहे जाने वाले लोकप्रिय उपन्यासों की भी परंपरा रही है. मगर ये भी सतही और फूहड़ जैसे विशेषणों के हकदार बने.

इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए क्या किया जा सकता है? साक्षरता में वृद्धि, पुस्तकालयों का जांल, सस्ती किताबें उपलब्ध कराना आदि [illegible] प्रस्ताव बहुत घिस गये हैं. छपे हुए शब्द को, यानी छपे हुए उपन्यासों, कहानियों और वैज्ञानिक जानकारियों को प्रसार देने के लिए और बिरादरी बाहर कर दी गयी अस्सी प्रतिशत जनसंख्या को भी इस अनुभव में शामिल कर लेने के लिए एक ऐसी तकनीक का सहारा लिया जा सकता है जिसे छपे हुए शब्द का शत्रु समझा जा रहा है.

हमें एक खास तरह की किताबों में सिकुड़ते जाने की बजाय, विस्तार देने और हर तरह के ज्ञान के द्वार खोलने का रास्ता अपनाना होगा. जो समाज विविध प्रकार की कथाओं से उत्साह और उर्जा नहीं पाता उसका जड़ और निष्क्रिय हो जाना स्वाभाविक है.

जहां तक पुस्तकों की प्रामाणिकता और मूल्य का सवाल है. प्रकाशन विभाग भारत सरकार, साहित्य अकादमी की पुस्तकें सबसे आगे हैं. प्रकाशन की दृष्टि से प्रकाशन विभाग देश का महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रकाशन संस्थान है.

इसने 6200 पुस्तकें प्रकाशित की हैं. यहां से न केवल हिंदी और अंग्रेजी में बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं. पुस्तकों की संख्या में तो नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करने और उनकी स्तरीयता भी बनाये रखने में साहित्य अकादमी भी अग्रणी संस्था गिनी जाती है. दिल्ली प्रशासन की संस्था हिंदी अकादमी पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में तो कोई दखल नहीं रखती मगर अपने अन्य क्रियाकलापों से विशेषकर इंद्रप्रस्थ भारती जैसी साहित्यिक पत्रिका के माध्यम से हिंदी प्रकाशन और मुख्यतः साहित्यकारों, पाठकों, नवोदितों की जो सेवा कर रही है वह प्रशंसनीय है. ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

संपादक : डा. नारायणदत्त पालीवाल

यदि आप चाहते हैं कि बेहतर पढ़ने को मिले तो आपकी इस जरूरत को

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिन्दी अकादमी की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका पूरा करती है, जो महज़ एक पत्रिका नहीं पूरी किताब है.

जिसमें वर्ष भर में छः सौ पृष्ठों की साहित्यिक सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी.

जिसमें देश के जिम्मेदार लेखक हिस्सेदारी करेंगे.

यह पत्रिका समकालीन साहित्य का रचनात्मक मूल्यांकन और गतिविधियों को प्रस्तुत करती है. एक सौ बावन से अधिक पृष्ठ की इस पत्रिका के एक अंक का मूल्य पांच रुपये, वार्षिक बीस रुपये. आपका सहयोग हमें बेहतर सेवा के लिए और अधिक प्रोत्साहित करेगा.

वार्षिक शुल्क मनीआर्डर/बैंक/ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर द्वारा इस पते पर भेजें :—

सचिव,
हिन्दी अकादमी, दिल्ली
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों की कहानियों की सुन्दर पुस्तकें

*मनभावन, कल्पनाशील, शिक्षाप्रद, आकर्षक, रंगीन सचित्र पुस्तकें। अब नई साज-सज्जा के साथ। हर उम्र के बच्चों का भरपूर मनोरंजन करती हैं।

रामायण

१२ पुस्तकों का सैट
बढ़िया डिजाइनिंग
वाला सैट ऐसा
पहले कभी नहीं छपा

ईसप की कहानियां

महान संत ईसप की शिक्षाप्रद
प्रेरणादायक कहानियों का संग्रह
१० पुस्तकों का सैट

विक्रम और बेताल

२५ कहानियाँ जो बेताल
राजा विक्रमादित्य को
सुनाता है शिक्षात्मक
और दिलचस्प ५ भागों
में प्रकाशित

सिंहासन बत्तीसी

३२ प्रसिद्ध कहानियाँ
जो राजा विक्रमादित्य
के सिंहासन की
पुतलियां राजा भोज
को सुनाती हैं। ६ पुस्तकों का सैट

पंचतत्र

पक्षियों और जानवरों की
मशहूर पौराणिक, शिक्षात्मक
कहानियाँ ६ भागों में प्रकाशित

बाईबल की कहानियाँ

१२ पुस्तकों का सैट

प्रभु ईसामसीह
की, शिक्षाप्रद
कहानियों का संग्रह

कृष्णलीला

भगवान कृष्ण के
बचपन की लीलाओं
का सजीव सचित्र वर्णन
आकर्षक रंगीन चित्र
४ पुस्तकों का सैट

९५ पुस्तकों का सैट उपलब्ध है।

मूल्य 6/- रुपये प्रत्येक

ड्रीमलैण्ड पब्लिकेशन्स

सूचीपत्र के लिये लिखें।

Rashtriya

अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता अथवा समाचार पत्र विक्रेता से खरीदें या लिखें:

ड्रीमलैंड पब्लिकेशन्स, 4425 नई सडक दिल्ली-6 फोन : 2915831

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास कीजिए यह
सत्य है

सौ रुपये में तीन ग्रंथावलियाँ

लगभग उन्नीस सौ रुपये की पुस्तकें मात्र सौ रुपये में तीन महान रचनाकारों की तीन ग्रंथावलियाँ असंक्षिप्त सम्पूर्ण आकर्षक साज-सज्जा के साथ डिमाई आकार में फोटो कंपोजिंग से आफसेट पर छपे करीब ३५०० पृष्ठ।

भारतेन्दु समग्र — सं० हेमन्त शर्मा
बंकिम समग्र (उपन्यास) — सं० निहालचन्द्र वर्मा
देवकीनन्दन खत्री समग्र — सं० डा० युगेश्वर

सौ रुपये अग्रिम भेजकर ग्राहक बनें। डाक से मंगाने वालों को रु. १३० देना होगा।

स्थानीय पुस्तक विक्रेता से सम्पर्क करें:–

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान पो० बा० नं० ११०६
पिशाच मोचन, वाराणसी-२२१००१ दूरभाष-६२११४, ६२८६७

adEnvoys

इच्छुक व्यक्ति अपने स्थानीय विक्रेता के यहां १३० रुपया जमा कर ग्राहक बन सकते हैं।

कुछ भी जो पढ़ने के लिए हो

कुछ भी पढ़ने की धुन थी उन्हें. रेलवे स्टेशनों से बहुत दूर की बस्तियों के लिए. छपे हुए पृष्ठ का कोई भी टुकड़ा. बसंत की हवा के झोंके के साथ बह आये पत्ते की तरह था. फाड़ा हुआ समाचार पत्र जिस में शहर से आया फेरीवाला साप्ताहिक बाजार में सामान बांधकर देता था, तेल लगा और मुचड़ा हुआ कागज, यूं ही जला नहीं दिया जाता. एक आधा पैराग्राफ, कोई रोचक सूचना, इन टुकड़ों को जोड़कर पढ़ ली जाती. हलवाहा उस अखबारी कागज को पढ़ता था जिसमें उसके लिए दोपहर का भोजन आता था. मर्द अखबार के उस टुकड़े को पढ़ते थे जिसमें तंबाकू लिपटा होता था. इस तरह एक पंक्ति यहां से, एक वहां से का जोड़ उनके लिये पुस्तक का काम करता था.

—द लाइफ ऑफ द फील्ड्स
रिचर्ड जैफरीस, प्रकाशन सन् 1884

हिंदी में पाठक

साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का अंतर पश्चिम में पुराना है, कम से कम सौ साल पुराना, लेकिन हिंदुस्तान में ही नहीं-- यह फर्क पिछले बीस पच्चीस सालों में ही ज्यादा उभरा है.

दिनमान के प्रतिनिधि को कुछ लोगों के बातचीत करने पर प्रश्नों के जो उत्तर मिले, वे यकीनन दिलचस्प थे, जो आश्चर्यजनक नहीं, उत्तर देने वाले थे छह शिक्षक (विश्व विद्यालय से लेकर प्राथमिक कक्षाओं तक के) सात छात्र-छात्राएं, एक किरानी, एक दूकानदार, एक मिस्त्री, एक पुस्तक विक्रेता, एक सार्वजनिक पुस्तकालय के अधिकारी, एक पत्रकार और एक ऐसे दूकानदार जो दस बारह पैसे प्रतिदिन किराये पर पुस्तकें देते हैं. इन में अठारह व्यक्ति ऐसे थे जो साल में चार पांच से लेकर चालीस-पचास तक पुस्तकें पढ़ते हैं............

इन उत्तरों से प्रकट होने वाले तथ्य हैं.---

हिंदी की पुस्तकों के अधिकतर पाठक सत्तरह-अठारह से लेकर चौबीस पच्चीस वर्ष तक की आयु के लोग होते हैं-- युवक और युवतियां दोनों ही.

इनमें से अधिकतर अविवाहित होते हैं. युवतियां अधिकतर छात्राएं या अध्यापिकाएं. युवकों में छात्रों के अतिरिक्त दफ्तरों के बाबू और छोटे-छोटे दूकानदार भी.

अधिकतर पाठक पुस्तकें खरीदते बहुत कम हैं. पुस्तकालयों से, दूकानों से किराये पर लेकर या मांगकर पढ़ते हैं.

अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ने के साथ वय और सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों जुड़े हैं. कुछ लोगों ने कहा कि अब उन्होंने हिंदी की पुस्तकें पढ़ना बंद कर दिया है. क्योंकि हिंदी के जासूसी उपन्यास अविश्वासनीय होते हैं, और सामाजिक सतही और बचकाने.

दिनमान 7, जनवरी, 1966

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद के प्रकाशन

रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. देश के प्रमुख प्रकाशकों में से एक है. इसके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग २८० शीर्षकों वाली कुल लगभग एक करोड़ ९० लाख प्रतियां तैयार की जाती हैं.

स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें, कार्य पुस्तकें शिक्षक गाइडें एवं अन्य निर्देशात्मक सामग्री इस प्रकाशन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण भाग है.

हालांकि सभी पाठ्य पुस्तकें, कार्य पुस्तकें इत्यादि प्रकाशित कर दी गई हैं तथा बिक्री के लिए जारी की दी गई है, फिर भी इन पुस्तकों की अन उपलब्धता के बारे में हमें कुछ शिकायतें प्राप्त हुई हैं.

हमारी पुस्तकों के लिए राष्ट्रीय वितरक हैं:

बिक्री एंपोरियम
प्रकाशन प्रभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार के

बंबई :
द्वितीय तल, कामर्स हाऊस
करीम भाई रोड
बेलार्ड पायर
बबंई-४०००३८

पटना :
विहार स्टेट कोआपरेटिव
बैंक बिल्डिंग,
अशोक राजपथ रोड,
पटना-८००००४

हैदराबाद :
राज्य पुरात्वत म्यूज़ियम
बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन
हैदराबाद-५००००४

कलकत्ता :
८ एस्प्लेनेड ईस्ट
कलकत्ता-७०००६९

मद्रास :
७३६, अन्ना सलई
मद्रास-६००००२

लखनऊ :
१०-बी, स्टेशन रोड़
लखनऊ-२२६००१

त्रिवेंद्रम :
प्रेस रोड़
त्रिवेंद्रम-६९५००१

नई दिल्ली :
सुपर बाजार
कनाट प्लेस
नई दिल्ली-११०००१

पुस्तकें दिल्ली के रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. कैंपस के बिक्री काउंटर पर भी उपलब्ध हैं तथा दिल्ली क्षेत्र के रा. शि. अनु. एवं प्र. परि. के थोक वितरकों के द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है. स्कूल/संस्थान, अपनी आवश्यकताओं को, पक्का आर्डर देकर तथा अग्रिम धन राशि भेजकर अथवा अपने बैंक का नाम तथा पता देकर पूरा कर सकते हैं जिससे कि प्रपत्रों को बैंक द्वारा भी भेजा जा सके.

व्यक्तिगत रूप से इन प्रकाशकों को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति वी.पी.पी. द्वारा मंगाने हेतु लिखें, इस पर भी यदि कोई कठिनाई हो तो कृपया निम्न से संपर्क करें.

एन सी ई आर टी
NCERT

मुख्य वाणिज्यिक प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान एवं
प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.)
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली-११००१६
दूरभाष : ६६२७०८
तार : ई.डी.यू.पी.आर.इंट
टेलेक्स-३१-६२८१४

डी.ए.वी.पी ८८/३८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन विभाग

नवीन संग्रहणीय प्रकाशन

क्रांतिकारी महिलाएं ले. आशा रानी व्होरा	४.५०
रोचक ऐतिहासिक कहानियां (भाग-१) ले. केदारनाथ कोमल	८.००
रोचक ऐतिहासिक कहानियां (भाग-२) ले. श्री नारायण	१५.००
सन सतावन के भूले-बिसरे शहीद ले. उषा चन्द्रा	२०.००
नये दशक में महिलाओं का स्थान ले. महादेवी शर्मा	४.५०
नहीं रुकती है नदी डा. हीरालाल बाछोतिया	८.००
देश विदेश के महापुरुष ले. अक्षय कुमार जैन	१५.००
भारतीय संस्कृति की समग्ररूपता ले. विश्वंभरनाथ पांडे	६.००
कविवर संत रज्जब ले. डा. ब्रजलाल वर्मा	१६.००
हमारे स्काउट गाइड ले. रमाशंकर मिश्र	७.००
श्राद्ध की दक्षिणा तथा अन्य हास्य कथाएं ले. वल्लभ डोभाल	१४.००
एकता की बोलती तस्वीरें ले. व्यथित हृदय	७.५०
भारत के लोक गाथा गीत ले. उर्मिला वार्ष्णेय	२५.००
भारतीय कला और कलाकार ले. ई. कुमारिल स्वामी	२१.००
बाल स्वास्थ्य और बाल शिक्षा ले. सत्यपाल रूहेला	१३.००
चुनौती भरे वर्ष साधारण	१५.००,
श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण (१९६६-६९) प्रगति की ओर (साजिल्द)	६५.००
श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण साधारण (१९६९-७२)	६०.००
जंगल में मोर नाचा ले. डा. श्याम सिंह शशि	८.००
भारतीय हरिण राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह	७.००
सचित्र रामचरित मानस कथा डा. रत्नाकर पाण्डेय	१२५.००
महिलायें और स्वराज्य आशारानी व्होरा	४०.००

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी भी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने प समस्त प्रकाशनों (५ रु. अथवा अधिक के मूल्य पर) की खरीद पर १० प्रतिशत की छूट. विभिन्न विषयों पर भारत कं सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं. नि:शुल्क सूची-पत्र मंगाइए. ४०/- रु. से कम आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फी) अतिरिक्त भेजना होगा. पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेता से लें अथवा सीधे लिखें :—

व्यापार व्यवस्थापक
विक्रय केंद्र
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-११० ००१

- ★ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस, नई दिल्ली-११० ००१
- ★ बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ-पटना-८०० ००४
- ★ कामर्स हाउस (दूसरी मंजिल) करीम भाई रोड बेलार्ड पियर, बंबई-४०० ०३८
- ★ एल. एल. ए. आडिटोरियम, अन्ना सलाई, मद्रास- ६०० ००२
- ★ १० बी स्टेशन रोड. लखनऊ-२२६ ०१९
- ★ ८ एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-७०० ०६९
- ★ स्टेट आर्कीआलाइजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-५०० ००४
- ★ प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-६९५ ००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

सस्पैंस, थ्रिल व इन्वेस्टीगेशन के जादूगर

राहुल का नया सामाजिक थ्रिलर

ट्रिपल क्रास

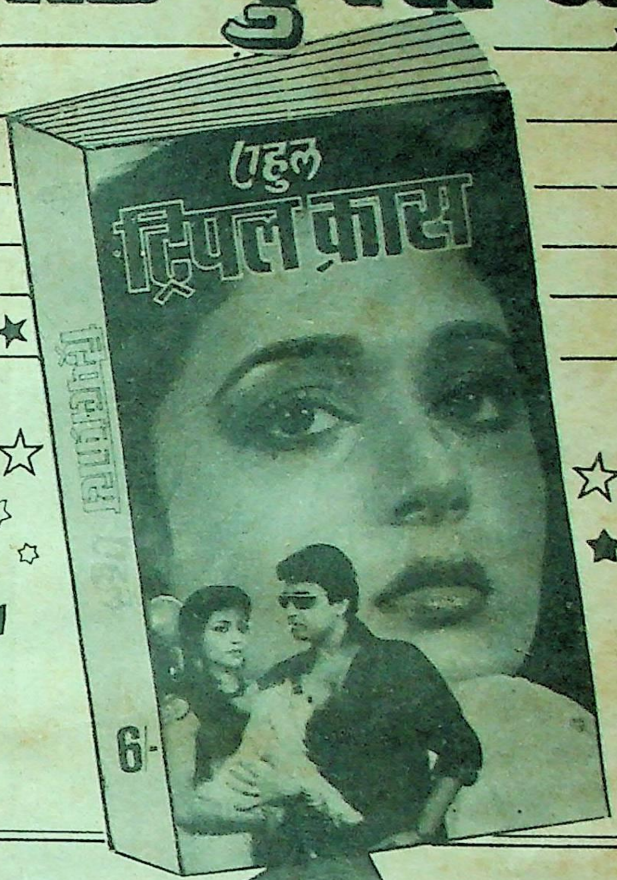

लाखों पाठकों के प्रिय उपन्यासकार

समीर का नया उपन्यास

दूर के राही

6/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

सच क्या वही होता है जो आंखों के आगे घट जाये ... या आंखों के परे भी कुछ घटता है जिसे हम झूठ नहीं कह सकते ...

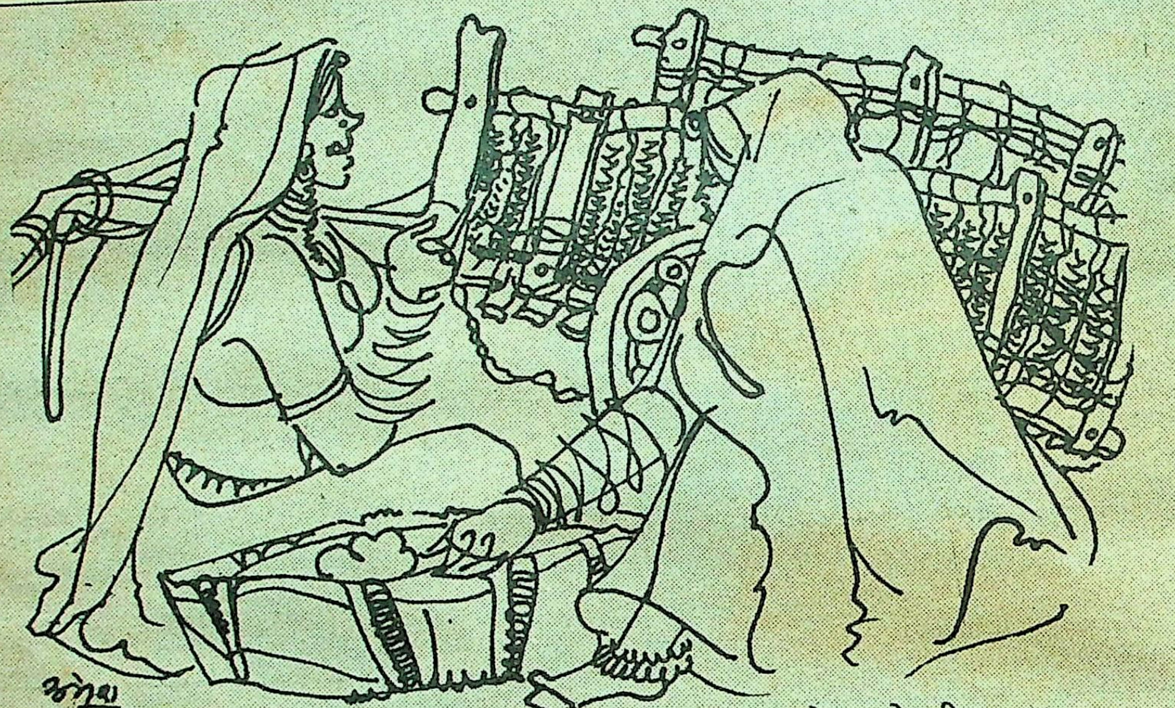

जिंदगी के अनुभव और अनुभव के सच को उकेरती ताजातरीन कहानियों के रचनाकार हैं—

हंसराज रहबर, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, मुद्राराक्षस, ममता कालिया, गोविंद मिश्र, से. रा. यात्री, रमेश गुप्त, सुभाष पंत, मिथिलेश्वर.

...और साथ में
लंबी कहानी, लघुकथाएं, अनजानी प्रेमकथाएं, ग़ज़लें, फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, कथादर्शन, धारा के विरुद्ध, कथा पहेली, नयी पौद, आपकी बात और चलते-चलते.

हर महीने एक बेहतर मुलाकात, सारिका जिंदगी की जरूरी किताब

सारिका

दिसंबर :1988

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ वाजिब दाम

इस श्रृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय जगत से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

उदाहरणार्थ *'रोमांचक कारनामे'* में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो *'खोजें'* में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। *'अनसुलझे रहस्य'* में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो *'खेल और खिलाड़ी'* व *'वैज्ञानिक'* क्रमशः जीवनी प्रधान पुस्तकें हैं। *'विनाश-लीलाएं'* में प्रकृति के प्रलयकारी रूप का चित्रण है तो *'दुर्घटनाएं'* में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। *'गुप्तचर संस्थाएं'* तथा *जासूस'* में मकड़ी के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो *'प्रेरक-प्रसंग'* किसी भी जहाज की तरह भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को पूर्ण रूप से उजागर करने वाला एक सचित्र **'मिनि एनसाइक्लोपीडिया'** *है।*

इस श्रृंखला में प्रकाशित पुस्तकें:

विश्व-प्रसिद्ध.... 1. खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल और खिलाड़ी 8. रिकार्ड्स-I 9. रिकार्ड्स-II 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग 16. चिकित्सा-पद्धतियां 17. जासूसी-कांड 18. बैंक डकैतियां एवं जालसाजियां 19. क्रूर हत्यारे 20. सभ्यताएं 21. अनमोल खजाने।

तैयारी में/प्रेस में

• रोमांस-कथाएं • भूत-प्रेत • दुस्साहसिक खोज यात्राएं • राजनैतिक हत्याएं • क्रांतियां

आमंत्रण:–

प्रोजेक्ट के लिए विद्वान लेखकों व अनुवादकों का सहयोग अपेक्षित है।

अपने निकट के बुकस्टॉल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुकस्टॉलों पर मांग करें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने का पता:–

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006.
शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
ब्रांच आफिस: 22-2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

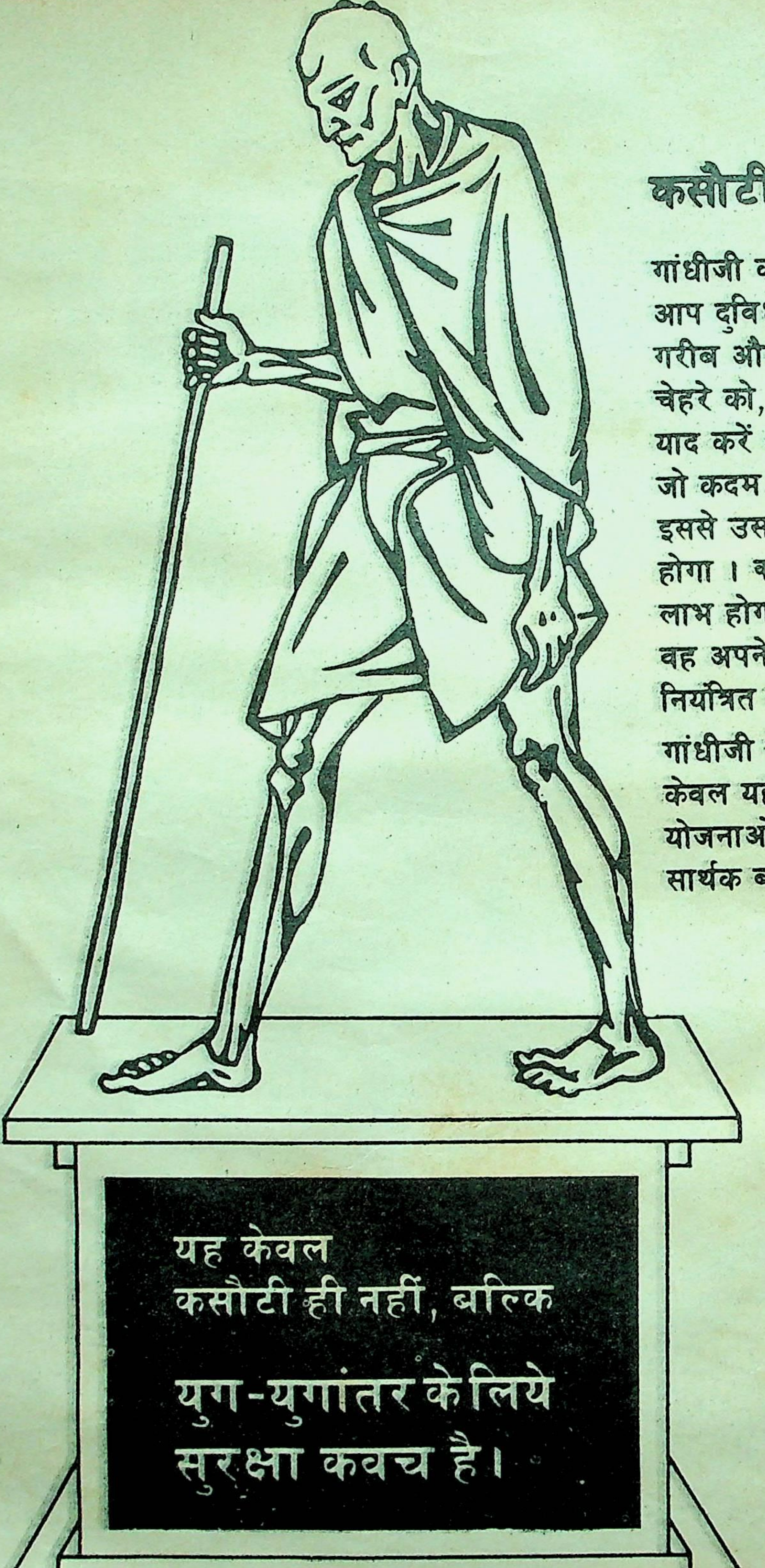

कसौटी

गांधीजी कहते थे : ''जब कभी आप दुविधा में हों..... सबसे गरीब और कमजोर आदमी के चेहरे को, जिसे आपने देखा हो, याद करें और स्वयं से पूछें कि जो कदम आप उठाने जा रहे हैं इससे उस आदमी का कुछ भला होगा । क्या इससे उसे कुछ लाभ होगा? क्या इस कार्य से वह अपने जीवन और भाग्य को नियंत्रित कर सकेगा?''

गांधीजी ने महसूस किया कि केवल यही कसौटी हमारी योजनाओं और कार्यक्रमों को सार्थक बना सकती है ।

davp 88/364

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar